Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वागर्थ

20 रुपये

अंक 139

फरवरी 2007

भारतीय भाषा परिषद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देश

कला दीखती तो यथार्थ है, पर यथार्थ होती नहीं। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो। उसका माप-दंड भी जीवन के माप-दंड से अलग है। जीवन में बहुधा हमारा अंत उस समय हो जाता है, जब यह वांछनीय नहीं होता। जीवन किसी का दायी नहीं है; उसके सुख-दुःख, हानि-लाभ, जीवन-मरण में कोई क्रम, कोई सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता,—कम से कम मनुष्य के लिए वह अज्ञेय है। लेकिन कथा-साहित्य मनुष्य का रचा हुआ जगत् है और परिमित होने के कारण सम्पूर्णतः हमारे सामने आ जाता है, और जहाँ वह हमारी मानवी न्याय-बुद्धि या अनुभूति का अतिक्रमण करता हुआ पाया जाता है, हम उसे दंड देने के लिए तैयार हो जाते हैं। कथा में अगर किसी को सुख प्राप्त होता है तो इसका कारण बताना होगा दुःख भी मिलता है तो उसका कारण बताना होगा। यहाँ कोई चरित्र मर नहीं सकता, जब तक कि मानव-न्याय-बुद्धि उसकी मौत न माँगे। स्त्रष्टा को जनता की अदालत में अपनी हर एक कृति के लिए जवाब देना पड़ेगा। कला का रहस्य भ्रांति है, पर वह भ्रांति, जिस पर यथार्थ का आवरण पड़ा हो।

–प्रेमचंद

सौजन्य

टांटिया ट्रस्ट

25/27, नेताजी सुभाष रोड

कोलकाता 700 001

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वागर्थ

एक व्यक्ति जिसे लम्बे समय तक लहरों पर उछाला गया हो, कभी अपने ठिकाने भी पहुँच जाता है। एक व्यक्ति जो किसी काम का नहीं है, बेरोजगार और नाकारा है, वह भी कभी ऐसा सही काम पा जाता है, जो अंततः उसके होने को अर्थ दे सके।

– विंसेन्ट वैन गॉग

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu
Acc No. 3821
Dated 7-12-2023

भारतीय भाषा परिषद की मासिक पत्रिका

संपादक

एकान्त श्रीवास्तव ❑ कुसुम खेमानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वागर्थ 139
साहित्य और संस्कृति की मासिक पत्रिका
फरवरी 2007

प्रकाशक : कुसुम खेमानी
संपादन : पूर्णतः अवैतनिक

संपादकीय और ग्राहकीय संपर्क :

वागर्थ
भारतीय भाषा परिषद
36ए शेक्सपियर सरणी
कोलकाता-700 017
फोन : 2287 9962
फैक्स नं. : 2281 7476
ई-मेल : bbparishad@yahoo.co.in

मूल्य : एक अंक : 20 रुपये

सदस्यता शुल्क :

वार्षिक : 200/- त्रैवार्षिक : 550/-
पंचवार्षिक : 900/- आजीवन : 3000/-

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 220/- त्रैवार्षिक : 600/-
पंचवार्षिक : 975/- आजीवन : 3000/-

विदेशों के लिए : एक अंक : 4 डालर, वार्षिक : 40 डॉलर

(सारे भुगतान मनीआर्डर/चेक/बैंक ड्राफ्ट से देय।
कोलकाता से बाहर के चेक में 35 रुपये अधिक जोड़ें।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक एवं भारतीय भाषा परिषद की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संरक्षक

डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी
डॉ. केदारनाथ सिंह
श्री द. जयकांतन
श्री सुनील गंगोपाध्याय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

अनुक्रम

संपादकीय

7

कथा साहित्य

9 विद्यासागर नौटियाल : भीम नहीं मरते (उपन्यास अंश)
21 संजीव : आकाश चम्पा (उपन्यास अंश)
30 राजी सेठ : यह कहानी नहीं
45 उदय प्रकाश : नेलकटर (पिछले पन्नों से)
48 महेश दर्पण : डोर
53 सुधा : संरक्षिता

व्याख्यान

70 महाश्वेता देवी : सपनों का गणतंत्र

संवाद

75 नागार्जुन से नीलम सिंह
78 अमृतलाल वेगड़ से अमृतलाल वेगड़

पर्यावरण

83 अनुपम मिश्र : अकाल : अच्छे कामों और विचारों का भी

विचार

85 क्रिस्टोफर काडवेल : कविता का जन्म
89 पुरुषोत्तम अग्रवाल : मजबूती का नाम महात्मा गांधी
97 मुहम्मद कमाल : सामयिक समाज के अंतर्द्वन्द्व और हमारी भूमिका

कविता

104 ज्ञानेन्द्र पति : तीन कविताएँ
107 राजेन्द्र उपाध्याय : दो कविताएं
109 अष्टभुजा शुक्ल : चार कविताएं
113 नीलेश रघुवंशी : तीन कविताएँ
115 सुधीर रंजन सिंह : तीन कविताएँ

आलेख

118 रेवती रमण : आलोचना की भाषा में सृजन
124 धर्मेन्द्र सिंह बघेल : इक्कीसवीं सदी का पराजित गांधी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक रचना

127 पलाश विश्वास : गौरीनाथ की कहानी 'अन्हें'

भाषांतर

56 हरजीत अटवाल : जिन्न (पंजाबी कहानी)

60 विक्तोरिवा ताकारेवा : ओवरकोट की आफत (रूसी कहानी)

129 टिमोथी वांगुसा : अफ्रीकी कविता

131 अनिल रामनाथ जोशी : गुजराती कविता

लोक

132 मणिपुरी लोककथा : बहू-लक्ष्मी

135 भोजपुरी लोकगीत : मटकोड़वा के गीत

चैत की लाल टहनी

137 अरविन्द कुमार अवस्थी : तीन कविताएँ

परख

142 रमेश मोहन झा : कालवृक्ष की छाया में - अग्निशेखर

144 मोहनकिशोर दीवान : नए घर में प्रवेश- नरेश अग्रवाल
सक्षम थीं लालटेनें - रंजना श्रीवास्तव

147 आशुतोष पार्थेश्वर : गुफा का आदमी - संजीव

लोकमत

149 चिट्ठियां

150 **पुस्तकें मिली**

आवरण : आकृति आर्ट गैलरी

वागर्थ अब वेबसाइट पर भी देखें : **www.vagarth.com**

सभी लेखकों, पाठकों एवं सहयोगियों को वसंत की शुभकामनाएँ
संपादक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुछ बातें...

अंत में 30 दिसम्बर को सद्दाम हुसैन को फाँसी दे दी गई। एक 'तानाशाह' से कितनी क्रूरता से व्यवहार किया जाए और फिर कैसे उसका वीभत्स एवं नग्न प्रचार-प्रसार किया जाए इसका बेमिसाल उदाहरण कायम किया है— सारे देशों के सिरमौर धन्नासेठ अमेरिका ने। इस परिप्रेक्ष्य में घटी कई दिन पहले की एक छोटी सी घटना— भारतीय भाषा परिषद के ठसाठस भरे सभागार के मंच पर देश के मूर्धन्य पत्रकार साहित्यकार और मीडिया के साहित्यिक प्रतिनिधि उपस्थित थे। संगोष्ठी में बहस चलनी थी— पत्रकारिता की भूमिका को लेकर। लेकिन उसी दिन सुबह अमेरिका ने बगदाद पर हमला कर दिया था और इससे दो दिनों की इस संगोष्ठी का रूप ही बदल गया।

यू.आर. अनन्तमूर्ति ने अपने वक्तव्य के बीच बौखलाकर कहा— 'मैंने आज अपने छः वर्षीय पोते से बात की। ...वह इस बात से बहुत दुखी था और जानना चाह रहा था कि वह अमेरिका से कैसे बदला ले। मैंने उससे कहा, 'पेप्सी और कोकाकोला मत पियो और किसी अमेरिकन वस्तु को काम में मत लो।' इस हवाले से एक और घटना स्मृति में कौंधती है मार्टिन लूथर किंग की लड़ाई की—

अपनी अहिंसक लड़ाई में इस गाँधी ने अमेरिकन यातायात तक का बहिष्कार करवा दिया था। ऐसे में एक 80 वर्षीया वृद्धा अपने गाँव से 30 दिनों तक पैदल चलकर उन्हें आशीर्वाद देने आई। मार्टिन लूथर किंग ने उन्हें बाहों में भरकर कहा, 'माँ! तुम्हारा यह आना इस बात का प्रतीक है कि हम अपने अधिकारों की लड़ाई में सवा सोलह आना जीतेंगे— बिना किसी समझौते के। क्योंकि जब तक तुम्हारी जैसी माँएं है कोई कैसे हार सकता है।' और हम सब उनकी विजय के साक्षी हैं।

प्रश्न है कि क्या हम सबके मन में भी उस छः वर्षीय बच्चे और 80 वर्षीय माँ जैसा ज़ज्बा है? क्या कभी हम उन शब्दों के अर्थ ढूंढते हैं (?) या उनकी सच्चाई जानना चाहते हैं जिन्हें हम अक्सर बोलते रहते हैं... लिखते रहते हैं... सुनते रहते हैं... या ये सारे शब्द सिर्फ हमारी ऊपरी सतह को छूते हुए आकाश में भीड़ बढ़ाते रहते हैं?

प्रत्येक साहित्यकार अपने विशेष युग और समाज की उत्पत्ति होता है पर इसके साथ ही वह क्रांतद्रष्टा भी होता है— जिसकी दृष्टि अतीत से ग्रहण करती वर्तमान में उसे खंगालती

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है और फिर भविष्य को भेदती हुई उन मूल्यों का सृजन करती है जो उसे सृष्टा के पद पर आसीन करते हैं।

आज शब्द जिन्हें ब्रह्म माना जाता था, नए अर्थों में परिभाषित हो रहे हैं। भूमण्डीकरण-भूमंडलीकरण, अनुदारता-उदारवाद, और दमन-आरक्षण कहला रहे हैं। ध्वंस और तोड़-फोड़ को अखंड राष्ट्र की स्थापना के लिए अनिवार्य माना जा रहा है। जनता को बरगलाया जा रहा है कि निकट भविष्य में भारत के अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक की संख्या पार कर जाएँगे जो कि पूर्णत: मिथ्या है। हमारे देश की जनगणना में इनका आंकड़ा बहुत कम है लेकिन किसी भी सरकारी नौकरी में इनकी संख्या नगण्य है। इसी वजह से बहुतों ने अपनी उपधि और नाम तक बदल डाले हैं। क्या यह किसी भी लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिए शर्म का विषय नहीं है कि समता और न्याय की हाँक लगाने वाले हम ऐसा भितरघात कर रहे हैं?

आज इस कठिन घड़ी में आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने चारों ओर प्रश्न पूछे जाने की सुगबुगाहट पैदा करें... और फिर सब मिल कर उनके उत्तर ढूंढे। ...यह शुभ कार्य साहित्यकार कर सकता है। अनेकानेक साहित्यकार ऐसे हैं जिन्होंने सही मायने में अपने लेखन से 'भू' को जोड़ा है— उसका 'मंडीकरण' नहीं किया है। ऐसा सृजन हमें आश्वस्त करता है कि हम इस घटाटोप में खोए नहीं हैं— हम केवल वाक् नहीं हैं— हम उसका अर्थ ढूंढने के प्रयास में भी निरत हैं...

- संपादक

हम सभी विधाओं की रचनाओं का स्वागत करते हैं।

रचनाकारों से अनुरोध है कि कृपया स्पष्ट अक्षरों में या फिर टंकित की हुई रचना ही प्रेषित करें।

रचना का मौलिक, अप्रकाशित एवं अप्रसारित होना आवश्यक है।

रचना के साथ छाया-चित्र एवं संक्षिप्त परिचय अवश्य भेजें।

हम अस्वीकृत रचना को नहीं लौटा पाएँगे, कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उपन्यास अंश

भीम नहीं मरते

विद्यासागर नौटियाल

(1994 में प्रकाशित 'भीम अकेला' को मैंने नए सिरे से लिखा है। अब इसे हिंदी प्रकाशन के क्षेत्र में प्रवेश कर आए पेंगुइन की ओर से प्रकाशित किया जा रहा है। उपन्यास का एक अंश 'वागर्थ' के पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

—लेखक)

जब हम स्यांरी गांव में अगस्त ऋषि के मंदिर में पहुँचे तो मैंने अपनी घड़ी पर नज़र डाली। इस समय पौने चार बज रहे हैं।

मंदिर में अनेक ब्राह्मण बैठ कर हवन कर रहे थे। मंदिर के पड़ोस के आंगन में कहीं से दो कुर्सियां लाई गईं। एक पर मैं बैठ गया। भेंट करने वाले घिर गए। चाय भी आई। मेरे बदन का पसीना धीरे-धीरे सूखने लगा। शीत-भरी शाम की पवन भी बहने लगी। आकाश के पश्चिमी छोर की ओर बढ़ता हुआ सूरज, डूबने से पहले अपनी ओर से जितनी गर्मी दे सकता था, दे रहा था। धारी की चढ़ाई पर चलते हुए उससे किया गया मेरा निवेदन शायद उसे अच्छी तरह याद था।

मिलने वालों की कथा-वार्ता समाप्त हुई। उस भीड़ के बीच मुझे एक जीवित शहीद मिल गया।

—ठाकुर साहब, तुम ज़रा मुझे अलग से मिल लेना। मुझे तुमसे कुछ बात करनी हैं। सन् 1948 ई. की जनवरी की 11 तारीख को टिहरी की राजाशाही का तख़्ता उखाड़ने के लिए अलकनंदा के तट पर कीर्तिनगर में जो लोग जमा हुए थे, यह व्यक्ति उनमें शामिल था और इससे भी बड़ी बात कि उस दिन शहीद नागेंद्र सकलानी और मोलाराम नौटियाल भरदारी के साथ इस व्यक्ति को भी गोली लगी थी। उनका देहांत हो गया, यह जीवित रह गया।

लोग मुझे प्रधान के घर ले गए। मंदिर में ठंड पड़ने लगी थी। मैं प्रधान के घर पहुँचा तो वहां आंगन में कुर्सियां डाल दी गईं। पर्वत के उच्चतम शिखर पर पहुंच गया सूरज अभी पूरी तरह नहीं डूबा था। प्रधान परिपूर्णानंद जोशी मुझसे मिल कर बहुत खुश हुए। चाय आई और वहीं आंगन में मेरे सामने मेज़ के ऊपर रख दी गई, जिस पर मैं अपनी डायरी खोले बैठा था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

-नाम?

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रश्न पूछते हुए मैं अपनी तुच्छता पर लज्जित हो गया। जिस जीवित शहीद का नाम मेरी जुबान पर होना चाहिए था, मैं उसी से यह प्रश्न कर रहा हूँ कि तुम्हारा नाम क्या है। अपना पेन हाथ में लिए मैं डायरी खोलकर लिखने के लिए तैयार बैठा हूँ।

उत्तरदाता खामोश था। प्रश्न पूछकर मैंने उसकी किसी दुखती रग को छेड़ दिया था। मैंने उसकी ओर देखा। वह बोलने की कोशिश कर रहा था पर बोल नहीं पा रहा था। उसके ऊपर-नीचे के होंठ खुल रहे थे और बंद हो रहे थे। पर उनसे कोई बोल नहीं निकल पा रहा था। आंसुओं की अविरल धारा उसके गालों के नीचे बहने लगी थी। उपस्थित जनसमुदाय खामोश था।

प्रश्न किसी ने नहीं दुहराया, लेकिन उसका उत्तर देने की जुर्रत भी कोई नहीं कर सका।

-मेरा नाम, मेरा नाम सा...ब, कहते-कहते वह फूट-फूट कर रोने लगा। फिर उसके आँसू रुक गए, जुबान स्थिर हो गई।

-मेरा नाम, कह कर वह फिर रुक गया और उसने डूबने को तैयार सूरज की ओर देखा। जैसे उससे कह रहा हो कि एक तू ही गवाह है। इस समय शाम के साढ़े पांच बजे हैं। मैं घड़ी देख रहा हूँ।

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी ने अपना बयान शुरू किया।

-मेरा नाम तेजसिंह है। मेरे पिता का नाम सुवासिंह, आयु अंदाजन, अंदाज से बता रहा हूँ साब, सही-सही बात ब्राह्मण बता सकते हैं। मेरी उम्र इस समय अंदाजन 64 साल की है। मेरा गांव बांसी है, बांसी भरदार।

वह रुका। मैंने अपने मन में कहा—सुवासिंह धन्य है। बांसी गांव धन्य है। शहीद मोलाराम और जीवित शहीद तेजसिंह की पट्टी भरदार भी धन्य है।

-चाय पी लीजिए विधायकजी, चाय ठंडी हो जाएगी।

तेजसिंह को भी एक प्याला थमा दिया गया है।

सूरज पश्चिमी पर्वत श्रृंग पर खड़ा था और निस्तेज हो उठी उसकी किरणें बता रही थीं कि वह डूबने की अंतिम तैयारी में है। ठंडी हवा चलने लगी थी और खुले में बैठना ज़रा मुश्किल-सा लग रहा था। लेकिन मैंने अपना स्थान छोड़ना ठीक नहीं समझा। तेजसिंह बोलता रहा और मैं लिखता रहा।

-आपकी चाय ठंडी हो गई है। फिर किसी ने टोका।

चाय ठंडी हो गई तो अच्छा हुआ, मैंने सोचा और प्याले को उठाकर उसमें रखी चाय एक सांस में गले से नीचे उंड़ेल दी।

अपनी पैंतीस साल पुरानी खोई स्मृतियों को कुरेदते हुए तेजसिंह ने अपना बयान जारी रखा।

-हम बहुत लोग थे। बेशुमार लोग थे हम। सबने कहा कि तुम भी चलो और मैं भी चल दिया। पूस का महीना था। छब्बीस गते पूस की बात। भरदार के लोग कीर्तिनगर गए थे। हम सब लोग किलकिलेश्वर के ढूल में इकट्ठा हुए थे। मेरे साथ मेरे गांव के बहुत से लोग थे। गोविंदसिंह, छीलू धनाई (अब मृत) भी गए थे। घर हम लोग करीब दस-ग्यारह बजे सुबह चले थे। रात ढूल में रहे। ढूल में गांव-गांव के लोग आकर जमा हो गए थे। ढूल में सौंरा का हुकम मास्टर, सेरा का [illegible] भी थे। हमारे हाथों में झंडे थे। हमसे कहा गया था नरेन्द्रनगर चलो। हम राजा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के पास मांगे मानने जा रहे थे।

-लोग नारे लगा रहे थे। धरती और आसमान एक हो रहे थे। पर मेरा शऊर नारे लगाने का नहीं था। मुझे याद नहीं है क्या नारे लगाए जा रहे थे। दूसरे दिन सुबह हम लोग द्यूल से भोजन करने के बाद करीब दस-ग्यारह बजे कीर्तिनगर के लिए चले।

-हमारा जुलूस नारे लगाता हुआ कीर्तिनगर एस.डी.एम कोर्ट में पहुँचा। वहां पहले से ही लोग जमा थे। वहां पैण्डुला वाले दौलतराम भाषण दे रहे थे। वे कह रहे थे कि हमारी चौदह मांगें मान ली जाएं तो हम घर चले जाएंगे। उस जगह देवीदत्त तिवाड़ी ने भी भाषण दिया था। नागेंद्र सकलानी भी बोले। देवीदत्त तिवाड़ी ने हम लोगों को कहा था-डरना मत, हम जीतने वाले लोग हैं। हम डरते नहीं हैं। डरना मत।

और वहां क्वीडांग के किडू का लड़का सतेसिंह एस.डी.एम. था। मैंने सुना था कि आज़ादी के बाद उसे हटा दिया गया था। वहां फौज़ के कुल नब्बे सिपाही थे। जगदीश प्रसाद, ललता प्रसाद, बलदेवसिंह रौतेला वहां थे। ये सब लोग राजा के अफसर थे।

-दौलतराम अफसरों के पास गए। उन्होंने कहा हम मांगे मंजूर नहीं करेंगे, शूट करेंगे।

-तब आंसू गैस चली।

तेजसिंह का बयान लिखते-लिखते मेरी नज़रों के सामने वह पूरा दृश्य उपस्थित हो गया। कामरेड देवीदत्त तिवाड़ी ने टिहरी पहुँचकर उसके बारे में विस्तार से मुझे बताया था। तेजसिंह का बयान मेरी पुरानी यादों को कुरेदने लगा है।

देवीदत्त तिवाड़ी कौन था?

देवीदत्त तिवाड़ी एक कुमांउनी कम्युनिस्ट था। रंग सांवला। मुझे उसके चेहरे का रंग नागेंद्र सकलानी के रंग से मिलता-जुलता लगता था। नागेंद्र सकलानी के अलावा जिन कम्युनिस्ट साथियों के जीवन और कर्म से मैं आजीवन प्रेरणा लेता रहा हूँ, उनमें देवीदत्त तिवाड़ी भी था। उसका घर अल्मोड़ा ज़िले में रानीखेत सदर से कुछ दूरी पर था। साधारण किसान परिवार में पला एक अनुशासनबद्ध नौजवान बोल्शेविक। कुमाऊं से टिहरी रियासत में आकर नागेंद्र सकलानी के साथ वह भी टिहरी रियासत के मुक्ति आंदोलन में सर पर कफ़न बांध कर कूद गया था। कीर्तिनगर में उस दिन तिवाड़ी के सर पर लाठी की चोटें आई थीं। मैंने उसके टिहरी पहुँचने पर देखा उसके सर पर पट्टियां बंधी थीं। नागेंद्र-मोलू के शवों को लेकर टिहरी की तरफ बढ़ने वाले जनसमूह के तूफानी दस्ते का नेतृत्व कामरेड चंद्रसिंह गढ़वाली, देवीदत्त तिवाड़ी और त्रेपनसिंह नेगी कर रहे थे।

11 जनवरी को हाकिमान के द्वारा पहचान कर पिस्तौल से चलाई गई गोलियों से नागेंद्र-मोलू के शहीद होते ही प्रजामंडल के बाग़ी कार्यकर्ता गोलियां चलाने वाले राजाशाही के तीनों हाकिमान बलदेवसिंह रौतेला, जगदीश प्रसाद डोभाल और ललिता प्रसाद पाण्डे पर टूट पड़े थे। वे उनको पीट-पीट कर वहीं पर खत्म कर देना चाहते थे। लेकिन दादा दौलतराम ने बीच में पड़कर क्रुद्ध कार्यकर्ताओं के घेरे में आ गए हाकिमान को किसी तरह बचा लिया। बुजुर्ग दादा की बात सुनने को वहां कोई तैयार नहीं लग रहा था। लेकिन दादा के मुख से निकली इस बात ने कि इनको इस तरह मत मारो, इनको टिहरी ले चलते हैं, वहां इन पर देशद्रोह का मुकदमा चला कर फांसी दी जाएगी, लोगों को कुछ शांत कर दिया। नेताओं ने यह भी निर्णय किया कि शवदाह कीर्तिनगर में करने के बजाय शहीदों को टिहरी ले जाया जाएगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नेताओं ने इस बात का आकलन कर लिया था कि इस वक़्त शहीदों के शव राजा की फौज-पुलिस की गोलियों का खुद ही मुकाबला करने लगेंगे। रियासत की जनता के दिलों में पहले से ही आग जल रही थी। इन शवों को देखकर वह आग दावानल का रूप धारण कर लेगी। जिन राहों से होकर ये शहीद टिहरी की ओर प्रस्थान करेंगे उस इलाके के किसान खुद ही बाग़ी बन कर उनके साथ चलने लगेंगे।

कीर्तिनगर से टिहरी जाने के लिए दो रास्ते थे। एक रास्ता दो मील दूर बाद मलेथा से टिहरी की ओर जाता था। उसकी लंबाई कम थी और उस पर चलते हुए दूसरे दिन शाम तक टिहरी पहुंचा जा सकता था। दूसरा रास्ता कुछ लंबा था और वह देवप्रयाग से होकर जाता था। देवप्रयाग की जनता ने अपने को पहले ही आज़ाद घोषित कर दिया था। प्रजामंडल कार्यकर्ताओं-नेताओं ने तय किया कि देवप्रयाग होकर चला जाय। उस जमाने में खासपट्टी का इलाका टिहरी से देवप्रयाग तक फैला था। देवप्रयाग के बाद भागीरथी के किनारे-किनारे टिहरी तक जाने वाले यात्रा मार्ग के बजाय बाग़ी किसानों का वह जुलूस आमणीखाल, हिंडोलाखाल, जामणीखाल, अंजनीसैण और कोस्यार के डांडे वाले रास्ते पर निकल गया। आकाश को बेंधने वाले नारे लगाते हुए सैकड़ों-हज़ारों लोग। उनकी संख्या रास्ते भर बढ़ती जा रही थी। लग रहा था कि अपने शहीदों के शवों को कंधों पर उठाए टिहरी रियासत की पूरी प्रजा टिहरी की ओर बढ़ती जा रही है। वे सामंती हुकूमत को पलट कर अपनी आज़ाद सरकार कायम करने का पक्का इरादा लिए हुए बढ़ते जा रहे थे। उसे पहले, उस हुकूमत को बदले बग़ैर वे अपने घरों को लौटने वाले लोग नहीं थे। उन्हें भरोसा था कि वे टिहरी में सरकारी कार्यालयों पर प्रजामंडल का झंडा फहराने में कामयाब हो जाएंगे। टिहरी से फतह हासिल कर लौटेंगे।

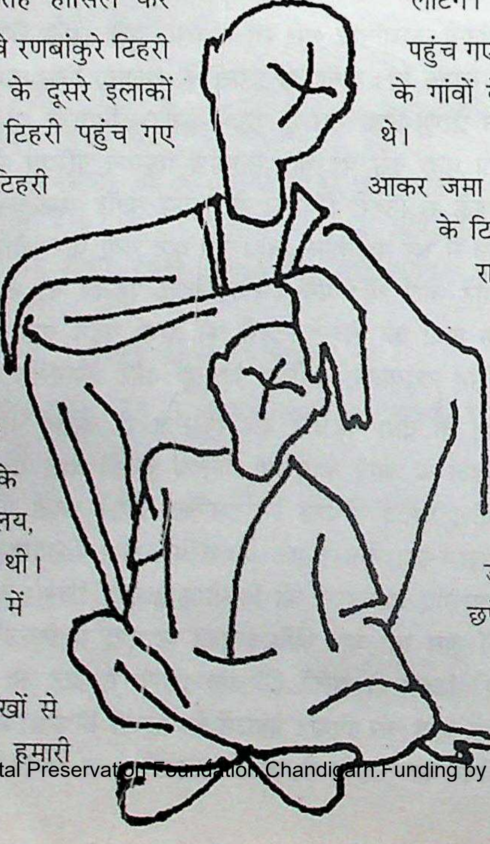

14 जनवरी की सुबह को वे रणबांकुरे टिहरी पहुंच गए। उनको यह जानकर बेहद प्रसन्नता हुई कि रियासत के दूसरे इलाकों के गांवों के प्रजाजन कल शाम को ही हज़ारों की संख्या में टिहरी पहुंच गए थे।

और सैकड़ों गांव से टिहरी आकर जमा हो गए उन हज़ारों लोगों ने अपने शहीदों के शवों के टिहरी पहुंचने से पेश्तर तेरह और चौदह जनवरी की रात को सामंतशाही का तख़्ता उलट कर, शासनसत्ता अपने हाथों में लेकर एक नया इतिहास कायम कर दिया था। देवीदत्त तिवाड़ी ने टिहरी पहुंचकर मेरे पास शहीद नागेंद्र सकलानी की खून में सनी डायरी सौंपी थी। मैंने वह डायरी रजिस्ट्री करके रमेश सिनहा के पास कम्युनिस्ट पार्टी मुख्यालय, राजभवन, सेण्डहर्स्ट रोड बम्बई के पते पर भेज दी थी। उस डायरी के कुछ अंश पार्टी के मुखपत्र 'जनयुग' में छपे थे।

बयान तेजसिंह।

-आंसू गैस से हमारी आंखों से पानी छूटने लगा। हमें ऐसा लग रहा था जैसे हमारी आंखों में मिर्च पीसकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डाल दी गई हो। तिवाड़ी ने कहा—एक ओर चलो। हम लोग तिवाड़ी के कहने पर वहां से हटकर एक तरफ को चल दिए।

-तीन बार आंसू गैस छोड़ी गई। फिर उन्होंने ऊपर की मंजिल से गोलियां चलाईं। एक गोली मेरी दाहिनी जांघ में लगी।

तेजसिंह ने पैजामें की दाहिनी बांह उलट कर अपना घाव दिखाया। गोली कमर के पास जांघ पर लगी थी।

-मैं गिर गया। मेरे घाव से खून निकलने लगा। बडियारगढ़ के लोग मुझे उठाकर कीर्तिनगर के बाज़ार में ले गए। गोली मेरी जांघ के अंदर घूमती हुई मेरे घुटने के पास से बाहर निकली।

तेजसिंह ने अपना दूसरा घाव दिखाया। घुटने के ऊपर जांघ पर एक दूसरा खोट था। तेजसिंह को लगी गोली उस स्थान से उसके शरीर से बाहर निकली थी। उसने अपना बयान जारी रखा।

—दो-तीन छर्रे भी लगे थे। छर्रे श्रीनगर अस्पताल में डा. चिंतामणि ने निकाले थे। (श्रीनगर, कीर्तिनगर से तीन मील दूर उस समय आज़ाद भारत के पौड़ी-गढ़वाल ज़िले का एक मुख्य नगर था।)

—श्रीनगर अस्पताल में उस समय जो डाक्टर थे, वे डांग के थे। कोई कहता था वे भक्तियाणा के थे। श्रीनगर अस्पताल में मैं करीब एक महीने तक भर्ती रहा। नागेंद्र सकलानी को गोली मेरे बाद लगी। मोलाराम नौटियाल को भी गोली बाद में लगी। मैंने सुना था कि पाव के सतेसिंह को भी दाहिने हाथ में गोली लगी थी। उसकी पिछले साल मृत्यु हो गई है। मैंने सुना था मोलाराम को बलदेवसिंह रौतेला ने गोली मारी थी। मैंने सुना था कि डांगचौंरा के पातीराम को भी गोली लगी थी।

—मेरे सात बेटे और दो बेटियां हैं। बेटियों का विवाह कर लिया है। बेटों में कोई नौकरी पर नहीं है। आठ-आठ, दस-दस दर्जे तक पढ़े हैं। सबसे छोटा बेटा तेरह-चौदह साल का है। वह सौंरा स्कूल में पढ़ रहा है।

तेजसिंह फिर फूट-फूट कर रोने लगा। आर्थिक स्थिति ने उसे पस्त कर दिया है। स्वतंत्रता सेनानियों के नाम पर शोहदों ने क्या-क्या फायदे नहीं उठाए? लेकिन तेजसिंह जैसा का तैसा है। आज़ाद हिंदुस्तान पर शासन कर रहे राजनेताओं ने उसके एक भी बेटे को नौकरी पर लगाना तक ज़रूरी नहीं समझा।

—मुझे कुछ साल तक पंद्रह रुपये माहवार सहायता मिलती थी। कुछ समय से एक सौ रुपये मिलने लगे हैं। लेकिन पेंशन लेने के लिए मुझे हर बार देवप्रयाग जाना पड़ता है। मुझे लुंज-वायु हो गयी है। इन उल्टे-सीधे रास्तों से देवप्रयाग आने-जाने में मुझे बेहद तकलीफ होती है। आधा से ज़्यादा पैसा आने-जाने में खर्च हो जाता है। मैंने इंदिरा गांधी के लिए भी पत्र भेजा है। मैं कई बार प्रार्थनापत्र भेज चुका हूं। मैंने मोरारजी भाई को भी लिखा था। जिलाधिकारी को भी कई अर्जियां भेजीं। मेरी अर्जियों पर कोई ध्यान नहीं देता। मेरी कहीं सुनवाई नहीं होती। मैं अपनी पेंशन श्रीनगर बैंक से लेना चाहता हूँ। नहीं तो मनीआर्डर से भेज दी जाय।

सूर्य पश्चिमी पहाड़ की चोटी से पीछे डूब कर दूर, कहीं दूर, बहुत दूर चला गया है। तेजसिंह ने अपने पजामे की बांह फिर ऊपर उठा ली है। उसके दोनों घाव मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। मेरी रग-रग दुखती लग रही है। तेजसिंह कह रहा है मैंने ये घाव नरेंद्रनगर में जिलाधिकारी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को भी दिखाए थे। मेरे सामने एक भीम खड़ा है। तेजसिंह साक्षात् भीम है। जीवित भीम। वह राक्षस का वध करके लौटा है। और हम लोग उसे पहचान नहीं रहे हैं। बांसी भरदार का तेजसिंह जीवित भीम है। पांडवों का भाई। दुष्टों का संहारक। पीड़ितों का मुक्तिदाता।

पंडितजी बोले:

—और विधायकजी! पांडव हिमालय की ओर चले। धारी गांव से कुछ दूर पहुंचे तो उन्हें पता चला कि धारी गांव से पहले एक राक्षस रहता है। वहां उसका राज है। वह राक्षस यात्रियों के प्रत्येक दल में से एक आदमी को अपने भोजन के लिए मांगता है। यात्रियों का दल तब तक आगे नहीं बढ़ सकता जब तक राक्षस को बलि के लिए एक आदमी न सौंप दिया जाय। यह उसका नियम है, जिसका उल्लंघन करने की कोई हिम्मत नहीं कर सकता। बलवान राक्षस। पांडवों के सामने भी समस्या उठी। क्या किया जाय? महाभारत के विजेता पांडव एक राक्षस के कठोर नियम के सामने किंकर्तव्य विमूढ़ हो गए। क्या उपाय करें? कैलाश यात्रा स्थगित कर दी जाय? नहीं! तो राक्षस के हवाले किसे किया जाय?

—तब विधायक जी, चार पांडवों ने आपस में गुपचुप सलाह की। उन्होंने भीम से कोई सलाह नहीं ली। भीम को पता भी नहीं लगने दिया कि वे आपस में कोई राय-मशविरा कर रहे हैं। उन्हें भीम की असीम शक्ति पर भरोसा था। उन्होंने तय किया कि वे भीम को राक्षस के हवाले कर देंगे। विश्वास था कि भीम उस राक्षस का सफाया कर देगा। लेकिन यह बात उन्होंने भीम को नहीं बताई। पांच पांडवों की टोली चलते-चलते जब धारी गांव से कुछ पहले राक्षस के क्षेत्र में पहुंची तो उसने उन्हें रोका।

—एक आदमी मुझे दे दो।

—पांडवों ने भीम को राक्षस के हवाले कर दिया। राक्षस ने शेष चारों पांडवों सहित उनके साथ चल रहे अन्य यात्रियों को आगे जाने की अनुमति दे दी।

चारों पांडव भीम को वहीं छोड़ कर आगे बढ़ गए। वे धारी गांव पहुंचे और उन्होंने वहां डेरा डाल दिया।

तेजसिंह मेरे पास है। मैं कह रहा हूँ बैठ जाओ। वह बैठ नहीं रहा है। खड़ा है। लगता है जैसे वह एक टांग पर खड़ा हो। पंडित जी अपने एक-एक बात कहते जा रहे हैं। तेजसिंह बहुत ध्यान से सुन रहा है। पंडितों की बात। ज्ञान की बात।

—और विधायकजी! रात बीती। भीम धारी नहीं पहुंचा। फिर दूसरा दिन बीता। भीम नहीं आया। तीसरा दिन बीता, चौथा, पांचवां और छठा दिन भी बीत गया। पर भीम नहीं आया। तब महाभारत के विजेता पांडवों में प्रत्येक के मन में संदेह होने लगा कि राक्षस ने भीम की देह का भक्षण कर दिया है। लेकिन अपना संदेह वे अपने-अपने मन में दबाए बैठे रहे। अपने मन का भेद उन्होंने आपस में भी एक-दूसरे पर प्रकट नहीं होने दिया। गुमसुम पांडव अपने भाई भीम के विछोह का मन ही मन पश्चाताप करने लगे।

—बैठ जाओ तेजसिंह।

तेजसिंह हिल नहीं रहा है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

—इस तरह विधायकजी, पूरे बारह दिन बीत गए। पर भीम नहीं लौटा। तब बारहवें दिन की

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रात को युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा कि अब जो होना था, सो हो गया। अब ऐसा करो कल भीम की तेरहवीं की तैयारी करो।

—पांडवों को अपने-अपने मन में यह बात ज़्यादा बुरी लग रही थी कि उन्होंने अकेले भीम को राक्षस के हवाले क्यों किया? उसके नियम के आगे हमने अपने सर क्यों झुका लिए? हम सभी भाई राक्षस से मिल कर क्यों नहीं लड़े। हमारी अक्ल मारी गई! पांडवों ने बारंबार अफसोस किया।

—तेरहवें दिन युधिष्ठिर ने कहा-आज हमें तेरहवीं करनी होगी। भीम का संस्कार करना है। जाओ, गांव से चावल मांगकर लाओ। तेरहवीं का भोज करना है।

—उदास अर्जुन, नकुल और सहदेव धारी गांव में घूमे। घर-घर घूमे। उन्होंने चावलों की भीख मांगी। गांव में कहीं चावलों का दाना नहीं मिला। उन तीन पांडवों ने परिवार के श्रेष्ठ, अपने जेष्ठ भ्राता को आकर बताया कि धारी गांव में कहीं चावल का दाना नहीं मिल रहा है। तब विधायकजी, युधिष्ठिर ने उनसे कहा कि गांव वालों से ऐसा कहो कि हमारा भाई भीम था। हम उसे राक्षस के हवाले कर आए हैं। आज उसकी तेरहवीं है। चावल इसलिए मांग रहे हैं। अर्जुन, नकुल और सहदेव एक बार फिर घर-घर घूमने लगे। गांव वालों ने बताया, हम आपको पहचान रहे हैं। आप लोग महाभारत के विजेता योद्धा हैं, पर हमारे गांव में चावल पैदा ही नहीं होता। यहां के सूखे, असिंचित खेतों में झंगोरा पैदा होता है। वह हमारे घरों में है। झंगोरा चाहिए तो जितना चाहिए, ले जाओ। हम सहर्ष देने को तैयार हैं।

—और विधायकजी! यह खबर सुनकर युधिष्ठिर रोने लगे। भीम के विछोह का पश्चाताप तो था ही, उस पर उसकी तेरहवीं तक ठीक से न कर पाने का संताप। पांडव हताश हो गए। वे धारी से आगे बढ़ गए। वहां रहकर क्या करते? वहां तो वे भीम की प्रतीक्षा में डेरा डाले बैठे थे।

—बैठ जाओ तेजसिंह ।

तेजसिंह खड़ा है। फसल-भरे खेत में जंगली पशु-पक्षियों को धोखा देकर डराने, भगाने के लिए बनाए गए पुतले की तरह एक बिडारा।

जनक बिडारा।

—धारी छोड़कर पांडव स्यांरी की ओर बढ़े। कहीं से एक जोगी भी पिछले कुछ दिनों से उनके साथ हो लिया था। रास्ता चढ़ाई का था। जोगी मौनी बाबा था। वह चुपचाप चला जा रहा था। चलते-चलते उनके तालू सूख गए। लगा कि बदन में चढ़ाई चढ़ने की शक्ति नहीं रह गई है। थकान से चकनाचूर बेबस पांडव अलसा कर एक जगह पर बैठ गए। प्यास के मारे उनकी हालत खराब हो गई थी। कुंती माता से प्यास बर्दाश्त नहीं हो रही थी। बैठ कर सुस्ताने लगे तो पानी की ज़रूरत और ज़्यादा महसूस होने लगी।

—आफत की घड़ी में विधायकजी, कुंती को फिर अपना भीम याद आया। पांडवों का उसका दर्द-भरा स्वर सुनाई दिया।

—इस वक़्त मेरा भीम होता तो यहीं पर पानी पैदा कर देता।

—कुंती की व्यथा से आहत सहवर्ती जोगी ने पहाड़ के सीने पर अपना चिमटा दे मारा। पहाड़ से पानी की धारा फूट गई। इसे उपणधारी कहते हैं विधायकजी। आपको रास्ते में मिला होगा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह पानी। आपने भी पिया होगा वहां पर पानी। बारहों महीने एक जैसा रहता है। न घटता है, न बढ़ता है।

—उपणधारी से चलकर पांडव स्यांरी पहुंचे। यह गांव उनको अच्छा लगा। उन्होंने यहाँ डेरा डाल दिया।

—तब विधायकजी, एक दिन एक घटना हुई।

—रात थी। सब लोग सो रहे थे। कुंती माता को एक सपना हुआ। सपने में कुंती माता ने भीम की आवाज़ सुनी। कुंती माता चौंकी। जाग गई। अंधेरे में अपने भीम की आवाज़ पहचानी। धीर-गंभीर आवाज़। कुंती मां ने अपनी दोनों हथेलियों को अपने चेहरे पर फेरा। आँखें खोलीं और बंद कीं। बंद कीं और खोलीं। कुंती मां आश्वस्त होना चाहती थी कि वह सो नहीं रही है। निद्रा—लोक में नहीं है। कोई सपना नहीं देख रही है। वह उठी। बिस्तर पर तन कर खड़ी हो गई। फिर वहीं पर बैठ गई। फिर उठी, फिर बैठी। भीम का स्वर फिर-फिर सुनाई दे रहा था। महाभारत के योद्धाओं की जिया सोच नहीं पा रही थी कि वह सो रही है या सो नहीं रही है। भीम के स्वर में जोगी के बोल निकलते जा रहे थे।

—तेरे मुंह से बदबू आ रही है बे! तू तो बहुत गंदा है।

—अंत में विधायकजी, कुंती माता को पूर्ण विश्वास हो गया कि वह सपने में नहीं है और कि वह जाग रही है। कुंती माता ने फिर-फिर सुना। घने अंधकार में गौर से सुना। नीरवता को भंग करती हुई आवाज़ निश्चित तौर पर भीम की थी।

—और तब उसे याद आया कि भीम को भी सपने में बड़बड़ाते रहने की आदत थी। उसे विश्वास हो गया कि सपना वह खुद नहीं देख रही है बल्कि वह जोगी देख रहा है, जो दिन भर मौन रहता है। कुंती माता की आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। बहुत चुपके से, दबे पांव, वह जोगी के पास गई, जो अपने सपने में बड़बड़ाता जा रहा था।

—भीम, मेरे भीम!

कुंती मां का आर्तनाद सुन कर पांडव घबराकर जाग उठे। जोगी भी जागा।

—और विधायकजी, कुंती माता ने उसी अंधेरे में जोगी को कसकर जकड़ लिया और रोने लगी।

—तू भीम है।

—मां का विलाप सुनकर अचानक जोगी का मौन टूट गया। आदमी दुनिया के परम पराक्रमी व्यक्ति से जीत सकता है, मां से नहीं जीत सकता। योद्धाओं का योद्धा भीम मां की जकड़ में बेबस हो गया।

—बेटा, तू किसे डांट रहा था?

—मैं उस राक्षस से लड़ रहा था मां, जिसके हवाले मुझे कर दिया गया था।

—और विधायकजी, यहां स्यांरी गांव में भीम ने जोगी का वेश, उतार लिया और वह फिर से भीम बन गया। भीम ने अपने कानों के वे कुंडल, जो उसने जोग-वेश धारण करने पर पहने थे, उतार लिए। वे कुंडल आज भी हमारे मंदिर में सुरक्षित हैं। यह अगस्त्य ऋषि का मंदिर है। यहां जो छोटी-सी मिट्टी की मूर्ति बनी है, वह अगस्त्य ऋषि की मूर्ति है। करीब डेढ़ फुट ऊंची मूर्ति, जिसके चेहरे पर दाढ़ी भी बनी है।

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

—पांडवों से बिछुड़े अकेले भीम के साथ जो हुआ था, वह सुनिए।

—राक्षस भीम को मारने के लिए आगे बढ़ा तो भीम ने उससे कहा- तेरे मुंह से बदबू आ रही है बे, तू तो बहुत गंदा है।

—बदबू आ रही है तो मैं क्या कर सकता हूँ?

—ऐसा कर, तू दांतौन कर ले।

—दांतौन मैं किस चीज़ से करूँ?

—भीम ने एक चीड़ का दरख़्त उखाड़ लिया और उसे उठा कर राक्षस को देते हुए कहा-ले इससे कर ले अपने दांत साफ।

—राक्षस चीड़ के पेड़ को नहीं थाम सका। भागने लगा। भीम उसके पीछे भागा। पनसौड़ पहुँचे। पनसौड़ आपने देखा है विधायकजी? मरगांव स्कूल गए हैं आप कभी? मरगांव के पास धारी गांव की खेती है। खूब लंबे-लंबे खेत हैं। इन्हीं लंबे खेतों में भीम और राक्षस लड़े थे। भीम जीता था। राक्षस हारा था। उसी तलहटी में भीम जीवन की ओर बढ़ा था, राक्षस मृत्यु की ओर। चीड़ का पेड़, जिससे भीम ने राक्षस को कहा था, दांतौन कर ले, वही चीड़ का पेड़ भीम की गदा बना। उससे प्रहार कर भीम ने राक्षस की जान ले ली और यात्रियों की राह का कांटा हमेशा-हमेशा के लिए साफ कर दिया। लोगों ने इस मैदान का नाम पनसौड़ रखा। पांडवों का मैदान।

—राक्षस को मार लिया तो भीम फिर पहाड़ पर जा पहुँचा, जहाँ से उसने वह चीड़ का पेड़ उखाड़ा था। भीम ने उस स्थान पर पानी पैदा कर दिया। उसे भिऊंपाणी कहते हैं-भीम का पानी। भिऊंपाणी गांव आपने मरगांव के ऊपर देखा होगा। पहाड़ की चोटी पर है।

मेरे स्मृति पटल पर अनेक क्षेत्र फैलने लगे हैं। भिऊंपाणी, पनसौड़, उपणधारी।

—राक्षस को मार गिराने के बाद उस वीराने में भीम ने अपने चारों ओर देखा। वह अकेला था। उसके भाई उसे छोड़कर कैलाश यात्रा पर आगे बढ़ गए थे। वे मोक्ष प्राप्ति के फेर में थे। तब विधायकजी, भीम को हंकार चढ़ गया। उसे इस बात का दु:ख नहीं था कि उसके भाइयों ने उसे दैत्य से क्यों लड़ाया। उसे गुस्सा इस बात का था कि उसे राक्षस को सौंपे जाने के बारे में उसके भाइयों ने आपस में सलाह-मशविरा किया, उसमें उसको भी क्यों शामिल नहीं किया गया। उससे पूछा क्यों नहीं गया।

—वहीं पर, भिऊंपाणी में, पानी उपजाने के बाद भीम ने स्नान किया और विधायकजी, उसने जोग-वेश धारण कर लिया। उसने अपने जो कपड़े उतारे थे स्नान के बाद फिर उन्हें नहीं पहना। अपने नंगे बदन पर भीम ने भभूत रमा ली, कानों में कुंडल पहन लिए और एक हाथ में कमंडल और दूसरे में चिमटा उठा लिया। जोग वेश धारण कर लिया। जोगी धारी पहुंचा तो उसने देखा कि उसके भाई उसकी तेरहवीं की तैयारी कर रहे हैं। वह अपनी तेरहवीं में भी शामिल हुआ। पांडव उस जोगी बाबा को नहीं पहचान पा रहे थे। जोगी मौनी बाबा बना था।

—जोगी भीम चुपचाप पांडवों का साथी बन गया। उपणधारी में जब कुंती माता ने अपने भीम की याद की और भीम ने पहाड़ के सीने पर चिमटे मार कर वहां से पानी की धारा उपजा दी, तब भी पांडवों को यह अहसास नहीं हो पाया कि यह काम तो सिर्फ भीम ही कर सकता था। कोई कुछ नहीं बोला। सबने पानी पीकर अपनी-अपनी प्यास बुझाई और आगे बढ़ गए। चार पांडव, कुंती मां, एक कुत्ता, एक जोगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

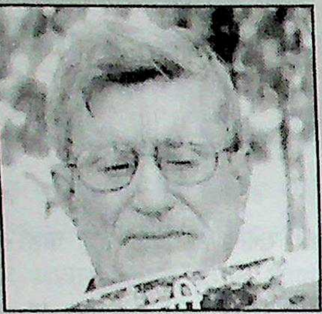

14 जनवरी की सुबह को वे रणबांकुरे टिहरी पहुंच गए। उनको यह जानकर बेहद प्रसन्नता हुई कि रियासत के दूसरे इलाकों के गांवों के प्रजाजन कल शाम को ही हज़ारों की संख्या में टिहरी पहुंच गए थे। और सैकड़ों गांव से टिहरी आकर जमा हो गए उन हज़ारों लोगों ने अपने शहीदों के शवों के टिहरी पहुंचने से पेश्तर तेरह और चौदह जनवरी की रात को सामंतशाही का तख़्ता उलट कर, शासनसत्ता अपने हाथों में लेकर एक नया इतिहास कायम कर दिया था।

जोशी ने पूछा- आप चलेंगे यज्ञ में इस वक़्त?

—नहीं, मैं कल सुबह चला जाऊँगा वहां पर।

जोशी चले गये। मैं लेट गया। और लेटते ही मुझे नींद ने आ घेरा।

सोए में मैंने ऐसा देखा कि मेरे जीवन की कुछ घटनाएं फिर से घटित हो रही हैं।

ऐसा होता नहीं है कि जीवन में घटित वास्तविक घटनाएं सपने में हू-ब-हू दिखायी दें। पर मेरे साथ ऐसा भी हुआ।

—शास्त्री की मां! तुम अपने जाए बच्चे को भी नहीं पहचान सकीं। गांव की औरतों ने कहा।

—मेरा बेटा होता तो कहता मैं तेरा बेटा हूं। वह मेरा बेटा नहीं था।

मेरी ताई अपनी बात पर अडिग थीं।

—और तुम्हारा बेटा होता भी तो तुम क्या कर लेतीं? जब उसने जोग धारण कर लिया है तो उसे गृहस्थी में तो लौटाया नहीं जा सकता था?

ऐसा कहते हैं कि जोगी के लिए अपने जन्म के घर से भीख मांगना ज़रूरी होता है। ऐसी भीख मांगे बिना उसकी साधना पूरी नहीं होती।

—हां दीदी, ठीक कहती हो। तभी तो वह भीख मांगने सीधे अपने घर चला आया। सन् 1941 में मेरे बड़े भाई फौज में भर्ती हो गए। जर्मनी, जापान के साथ अंग्रेज की लड़ाई लगी है। शास्त्री ने भारतीय सेना में अपना नाम लिखा लिया है। यह समाचार मैं अपने पिता के मुंह से सुन रहा हूँ। मेरे पिता किसी से ऐसा कह रहे हैं। शास्त्री की चिट्ठी आई है। उसने पढ़ाई छोड़ दी है। वह काशी में संस्कृत का अध्ययन कर रहा था। इस साल परीक्षा दे देता तो उसे आचार्य की डिग्री मिल जाती। फौज में बहुत से लोग भर्ती हो रहे हैं।

यह बात जिस जगह कही जा रही है उस जगह का नाम कसेडी है। हमारा परिवार आजकल कसेडी में रहता है। हिमाचल की रियासतें जुब्बल, क्योंठल, बुशहर हमारे पड़ोस में हैं। पिता वन विभाग की सेवा में हैं। शास्त्री इंदुभूषण नौटियाल मेरे तयेरे भाई का नाम है। हम सभी भाई-बहनों में सबसे बड़े।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

चारों दिशाओं में घने देवदार वनों से घिरा कसेडी का रेंज क्वार्टर्स एक छोटे, सुंदर मैदान में फैला

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। इस मैदान के बीचोंबीच पूर्वी भाग में रेंज दफ्तर है। दफ्तर के दरवाजे उत्तर की ओर खुलते हैं। पश्चिमी भाग में वह भवन है, जिसमें हम रहते हैं। उसका पूरब बंद है। दरवाज़े पश्चिम की ओर खुलते हैं। इस भवन के कमरे मैदान की पूरी चौड़ाई को करीब-करीब ढंक लेते हैं। सब कमरों के दरवाज़े पश्चिम की ओर खुलते हैं। आने-जाने के लिए एक संकरा गलियारा बचा है सिर्फ। सब कमरे एक-दूसरे के अगल-बगल बने हैं। इस भवन के पश्चिम की ओर एक बड़ा आंगन है, जिसमें हम खेलते रहते हैं। रेंज दफ्तर के कमरे मैदान के दक्षिणी भाग पर बने हैं। उनके दरवाज़े उत्तर की ओर खुलते हैं। रेंज दफ्तर के सामने उत्तरी दिशा में एक आंगन है। हम बच्चे इसमें भी खेलते हैं। इस वक़्त कलीच गांव से कुछ बच्चे आए हैं और हम उस मैदान में खेल रहे हैं। आंगन से नीचे ढलान है। लगातार ढलान। ढलान बीच में खंडित होकर कहीं समतल भूमि में नहीं बदलता। उसका सिलसिला नीचे घाटी तक फैला पड़ा है। कोई बर्तन अगर ऊपर से, इस आंगन की ओर से गिर जाय तो वह लुढ़कता ही चला जाएगा। पता नहीं कहां तक।

लंबाथाच की ओर से देवता की डोली आई है। पौबासू देवता की डोली आई है। कुछ लोग डोली को कंधे पर उठाए लिए जा रहे हैं। रेंज क्वाटर के नीचे, उससे काफी करीब, आम रास्ते पर चलती हुई डोली छोटे पाजूधार की ओर चली गई है। डोली काफी दूर चली गई है। यहां से छोटे पाजूधार का रास्ता चढ़ाई का रास्ता है। रेंज दफ्तर से नीचे के ढलान पर वन विभाग की ओर से आग-लाइन बनने के लिए घास काटने वाली एक युवती बार-बार उसी दिशा की ओर देखती जा रही है, जिधर देवता की डोली गई है। और वह हाथ जोड़े बार-बार, ज़ोर-ज़ोर से उच्चारित करती जा रही है।

—पौबासू देवता माराज! तेरि बलि ढेऊं माराज।

पौबासू देवता माराज! तेरि बलि ढेऊं माराज।

पिता एक आदमी से बात कर रहे हैं। वह आदमी बड़े गठीले बदन का है। बूढ़ा नहीं हुआ है, लेकिन बुढ़ापे की ओर बढ़ रहा है।

—हमारा शास्त्री फौज में नाम कमाएगा।

वह आदमी बुधसिंह है। बुधसिंह जमादार। कलीच का बुधसिंह।

बूढ़ा बुधसिंह फिर वही कहानी सुनाने लगा है, जिसे वह रोज़ हमारे परिवार को सुनाता रहता है।

—मैं शिमला में था। कुछ गोरे आए। वे फौजी थे। एक गोरे ने मेरा बैग छीन लिया। उसने समझा मैं उसे पहचान नहीं पाऊँगा। पर मैंने उसके...

—टोप का नंबर नोट कर लिया। मैं बोल उठा।

—और तुम्हें कैसे मालूम?

बुधसिंह ने हैरत में पूछा। आज मेरा कथा के बीच में बोल जाना एक नई घटना है। अपने प्रश्न का उत्तर भी उसने खुद ही दे दिया।

—अंग्रेजी पढ़ने वाला लड़का है, सब बात जानता है।

यह बात बुधसिंह ने ऐसे कही मानो उस गोरे सिपाही के टोप का नंबर बुधसिंह ने नहीं, खुद मैंने ही शिमला की माल रोड पर नोट किया हो।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बुधसिंह रोज़ यही कहानी सुनाता है। और अब कहानी हमें कंठस्थ हो गई है। यद्यपि इससे उसके कथ्य से उपजने वाले आश्चर्य में कोई कमी नहीं आने पाती। हम श्रोतागण रोज़-ब-रोज़ उसी तरह ध्यानमग्न होकर, उसी उत्सुकता के साथ बुधसिंह के बैग के टपाए जाने की कहानी सुनते हैं। जैसे हम उसकी वह कहानी जीवन में पहली बार सुन रहे हों। जैसे कि हमें यह मालूम न हो कि बुधसिंह अब किस रहस्य का उद्‌घाटन करने वाला है।

लेकिन आज मैंने उस रहस्य से पर्दा खुद ही उठा लिया है।

और बुधसिंह ने मेरी आश्चर्यजनक सूझ के लिए कि मैं यह कैसे भाँप गया कि उसने गोरे सैनिक की सबसे मजबूत चीज़ को पकड़कर उसके लिए अपने को बचा पाना मुश्किल कर दिया था— मेरी तारीफ़ यह कह कर की कि अंग्रेजी पढ़ने वाला लड़का है। जहाँ तक उनको सूरत से पहचानने का सवाल है, उन्हें तो कोई पहचान ही नहीं सकता है। वे तो सबके सब एक जैसे दिखायी देते हैं। न कोई लंबा है, न कोई नाटा है, न मोटा है, न छोटा है। एक जैसे गोरे।

और एक जैसे दिखने वाले अनेक गोरों के बीच एक अपराधी गोरे की सबसे मजबूत चीज़ को बुधसिंह ने अपनी नज़रों से पकड़ लिया था। कहानी उस दिन भी वैसे ही ख़त्म हुई थी, जैसे वह रोज़ खत्म होती थी।

—मैं उनके दफ्तर में जा घुसा और वहां बैठे साहब को मैंने जोर का सलूट मारा। धरती कांप उठी। गोरों का साहब घबरा गया।

—टुम क्या मांगटा?

—अपना बैग मांगता।

—किसके पास?

—और जब मैंने उस गोरे के टोप का नंबर साहब को बताया तो साहब की आंखें खुली की खुली रह गईं।

बहुत सारे गोरों के बीच से एक गोरे को पकड़ लिया गया था। बुधसिंह उसे सूरत से नहीं पहचान सकता था पर बुधसिंह ने उसके टोप का नंबर पकड़ लिया था।

बुधसिंह अपनी शिमला के माल रोड की शेखचिल्ली सुना रहा है।

बुधसिंह का बड़ा भाई भी जंगलात विभाग का जमादार था। अंग्रेज सरकार का पतरोल। उसे अब पेंशन मिलती है। उसे जितनी पेंशन मिलती है, बुधसिंह को रियासती सरकार की ओर से करीब-करीब उतनी ही तनख्वाह मिलती हैं। बुधसिंह की भावज अक्सर हमारे घर आती रहती है। वह मेरी मां से चाकू की मांग कर रही है। मैं देख रहा हूँ। मां रसोई में गईं। वे चाकू लेकर लौटीं। बुधसिंह की भावज ने चाकू हाथ में लिया। फिर पास में पड़े आलू के ढेर से एक आलू उठा कर उसे छीला। आलू छिल गया तो बुधसिंह की जमादारनी ने उसकी फांकें काट लीं। हम बच्चे उसे आश्चर्यजनक नज़रों से ताकने लगे हैं। जमादारनी आलू की फांकें इस अंदाज से खाने लगी है जैसे वे सेब के टुकड़े हों।

(अगले अंक में जारी...)

डी-8, नेहरू कॉलोनी, देहरादून (उत्तराखंड)
फोन : 0135-2668417/3204417

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उपन्यास अंश

आकाश चम्पा

संजीव

गतांक से आगे...

'हियाँ न कोई स्कूल, न कोई चेंगा-चेंगी कहीं पढ़ने जाता है।' इस जवाब पर मास्टर साहब भहरा-से गये।

थोड़ी देर बाद सखौती के राजपूत टोला के तिरलोकी सिंह और बभन टोला के परियाग मिसिर हाजिर हुए। तिरलोकी सिंह ने हाथ जोड़कर परनाम किया, 'महाराज हमसे कौनो चूक हो गई कि महतो लोगन का टोला में पड़ाव डाल दिये?' मास्टर साहब अवाक्। मिसिर जी ने ठिठोली की, 'गान्ही बाबा के चेला लगते हैं।'

'आप लोगों ने नाहक कष्ट किये। मैं तो सिर्फ...।'मोती लाल ने सफाई देनी चाही।

'कष्ट तो आपने किया है महाराज। लौटने समय हम कष्ट नहीं होने देंगे। डोली-खटोली से भेज देंगे। कहिये, कैसे आना हुआ?'

फिर वही यक्ष प्रश्न 'क्या सखौती में कोई प्राइमरी स्कूल भी नहीं है?'

जवाब था, 'नैं।'

'कहीं कोई दूसरा सखौती तो नहीं है?'

जवाब था, 'आस-पास में तो नैं है।'

खाट आयी, मोतीलाल बैठे। गुड़-पानी आया, मोतीलाल ने पिया। बच्चे आये तो उन्होंने पूछा, 'क्या करते हो?'

लड़का भकुआया-सा खड़ा रहा।

'यहाँ के मुख्यमन्त्री का नाम जानते हो?' लड़का चुप।

'प्रधानमन्त्री का नाम?'

'...   ...'

'राष्ट्रपति का नाम?'

'लड़का साँसत में पड़ गया।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

'अच्छा देश का नाम बताओ...।'

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'... ...'

'तुम कहाँ रहते हो, ये तुम्हें नहीं पता...?'

'अरे पण्डितजी, ई सब इसको क्या, इसके बाप को भी नैं पता होगा। जिनको पता है, ऊ सब टीसन गये हैं।'

'अभी किसी को पता हो तो बता दें?'

'जो रो, बढ़न ठाकुर को पकड़ ला।' तिरलोकी सिंह ने एक लड़के को दौड़ाया।

बढ़न ठाकुर सामने आये। मय कलकत्ता घूमे हुए हैं ठाकुर। उन्होंने सिर्फ एक नाम सुना है, 'जवाहिर लाल'। इसे बताकर जैसे खासा अनुग्रह किया और कहा, 'अभी इसी से काम चलाइये, बाकी का जुगाड़ करते हैं, आद-ए नै न पड़ रहा है। दिमाग के तहखाने से दो एक नाम उछले' महतमा गान्ही...? न-न ऊ तो...,

राजेन्दर बाबू...? नैं। ऊ भी नैं। कहा न आद-ए नै पड़ रहा है।'

तो ऐसे सखौती; जहाँ कागजात में प्राइमरी स्कूल था और उस प्राइमरी स्कूल में उनके अपने टीचर थे, में बैठा हुआ उनका अपना वजूद भी सन्दिग्ध लगने लगा।

जैसे-तैसे रात काटी और लौट गये पटना डिप्टी साहब के दरबार में।

डिप्टी साहब दो घंटे इन्तजार कराने के बाद सिर्फ आधे घण्टे के लिये आये तो उनकी पेशी हुई।

'सर हम सखौती प्राइमरी स्कूल...।' मोतीलाल ने अरज किया।

'हाँ, हाँ कहिये' साहब ने अरज सुन ली।

'सर ई-ठो कौन चीज है।'

'आप ही न बता रहें है प्राइमरी स्कूल है।'

'सर ई ठो कहाँ हैं?'

'आप क्लर्क के पास जाइये, वो आपको समझा देगा।'

क्लर्क को पाँच रुपये की दक्षिणा देनी पड़ी तब उसने रजिस्टर और नक्शा निकाला।

'सर ई ठो पहाड़ है?' मोतीलाल ने विनीत स्वर में पूछा।

'का मालूम होगा।' क्लर्क ने कान की मैल निकालते हुये, दिव्य आनन्द की अनुभूति की प्रश्न से ज्यादा रुचि इस समय उसके अपने कान के खूँट में थी।

'और ई ठो नदी?'

'हा भाई।'

'और ई स्कूल?'

'हाँ। और कुछ पूछना है?'

'सिर्फ एक बात और...।'

'पूछिये।'

'कहीं कोई दूसरा सखौती तो नहीं है जहाँ प्राइमरी स्कूल हो।'

'जी न, यही है।' और क्लर्क ने रजिस्टर और नक्शे को बन्द कर दिया।

लौटकर बुद्धू घर को आये।

मास्टराइन ने पूछा, 'बिन बताये कहाँ चल देते हैं?'

'पाहुन जी के यहाँ गये थे।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'मगर पाहुन तो हियाँई आये हैं। ये लीजिये आ गये।'
उदय ने आते ही पाँव छूकर प्रणाम किया।
'खुश रहिये, खुश रहिये... और स्कूल कैसा चल रहा है दामाद जी?'
'मोतीलाल ने उन्हें जैसे कठघरे में खड़ा किया हो।'
'जी बहुत अच्छा।'
'लेकिन पाहुन ई सखौती है कहाँ?'
'वहीं, नवादा-गया के बीच...।' मस्टराइन ने जवाब दिया।
'मेरा सवाल अपने आदरणीय दामाद जी से है।' व्यंग्य की डंक पर उदय ने तिलमिलाकर चुप्पी साध ली। मन सशंकित हो उठा।
'बता दीजिये न।' मस्टराइन ने कहा।
... चुप्पी विछलती रही।
'मैं बताऊँ... ?' मास्टर साहब ने श्लोकवत पाठ करना शुरु किया, 'तीन नदी, चार पहाड़ पार करने पर इस जम्मू द्वीप के रेवा खण्ड में कोई गम्भीर अरण्य है जहाँ इतिहास के कुछ छूटे हुए लोग रहते हैं, जिन्हें न यह पता है कि उनका मुख्यमन्त्री कौन है, प्रधानमन्त्री कौन है, राष्ट्रपति कौन है, न यह कि वे किस देश में रहते हैं, वहीं है सखौती...। जहाँ गाँव है, स्कूल नहीं; नदियाँ हैं, पुल नहीं; जिसके बारे में न इन्हें पता है, न बजट पास करने वालों को, क्योंकि कोई गया ही नहीं वहाँ। मैं गया हूँ, सो बता रहा हूँ।'
अब दामाद की नजर झुकी हुई थी, श्वसुर की चढ़ी हुई, 'यह सरासर गलत है आप मानते हैं कि नहीं...? जान लीजिये एक बार एनक्वायरी हुई नहीं कि जिन्दगी भर के लिये जेल चले जाओगे पाहुन।' पाहुन पर घड़ों पानी पड़ गया।
'मैं आपको लजवाना नहीं चाहता, मुझे मालूम है यह सारा प्रपंच झाजी का बुना हुआ है मगर अफसोस यह है आप भी उस प्रपंच के बराबर के हिस्सेदार हैं।'
'हाँ। बाबूजी जैसा कि आप बता रहे थे स्कूल तो होना ही चाहिये।' उदय को जैसे फाँस से मुक्ति मिली हो।
'देखो बर्खुदार इतिहास में भूलें होती रहतीं है।'
'जी।'
'और इतिहास पुरुष उन भूलों का संशोधन भी करते चलते हैं।'
'जी।' चिहुँक गया उदय।
'तो यह 'जी-जी' करना छोड़कर सुखौती जाइये और वहाँ स्कूल बनवाइये न! इसी बहाने कुछ लोगों का कल्याण हो जायेगा।'
'जी।'
'स्कूल बनवाइये, बच्चे ढूँढ़िये, स्कूल चालू कीजिए, इतिहास की एक भूल को शुद्ध करने के लिये अगर छोटी-सी कुर्बानी भी देनी पड़े तो पीछे मत हटिये। क्योंकि उसी का खाते हैं।'
'लेकिन बाबूजी...।'
'अभी 'लेकिन' लगा ही हुआ है? तो कफन बाँध कर तैयार रहिये, कभी भी एनक्वायरी हो सकती है।'
मस्टराइन सारा कुछ सुनकर अवाक रह गयी। धीरे-धीरे किसी कोने से कलकल-ध्वनि-सी उनकी रूलाई फूट निकली। पहले अस्फुट, फिर तेज होते-होते विलाप! विलाप में उन्होंने झाजी के सात

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुस्तों का उद्धार कर डाला फिर उदय से पूछा, 'पाहुन तुमने यह सब तो हमें कभी नहीं बताया?' पाहुन क्या बोलते!

मस्टराइन को लगा, झाजी से बात करनी चाहिए। जहर ही जहर का काट है। चबूतरे पर बहुत दिनों के बाद जा रही हैं, सुग्गे पण्डित जी कहाँ गये, पता नहीं। वहाँ एक औघड़ ने अपना डेरा जमा लिया है। यह श्मशान भूमि है। यहाँ कोई पण्डित नहीं, औघड़ ही रह सकता है। सामने से ज्ञान आता हुआ दिखा, 'बेटा, जरा झाजी को बुला लाओ तो।'

'वो आ रहे हैं झाजी।' ज्ञान ने बताया। लौट पड़ी घर की ओर। सहमते-सहमते उन्होंने पीछे मुड़कर ताका तो देखा झाजी इत्मीनान से चूना चाटते हुए आ रहे हैं। पान की प्यारी पीक कहीं कपड़े को न सुशोभित कर बैठे, सो मुँह ऊपर करते हुए ऊँट सा गलगलाए, 'परनाम भौजी।' मस्टराइन ने उन्हें खा जानेवाली नजरों से घूरा और कपाल ठोकते हुए, अपने भाग्य को कोसा। कुछ कहना चाहा पर न कह पायीं। सामने मोतीलाल खड़े थे।

झाजी ने पहले वाले अन्दाज में ही मोतीलाल का प्रणाम सलटाया, पान थूका, फिर कहा, 'बहुत करोध है सर। मनु महराज रमैन का एक ठो चौपाई बोलते हैं,

'जो लरिका कछु अचगर करहीं
गुरू पितु मातु मोद मन हरहीं।'

पहले हंमर बत ठो सुन लीजिये, फिर जो दण्ड देंगे सो कबूल।'

वे उनका हाथ पकड़कर अन्दर ले गये जहाँ उदय मुँह लटकाए बैठा था और सावित्री मुँह घुमा कर सिसक रही थी।

'तो का हुआ, कौन-सा महाभारत अशुद्ध हो गया।' झाजी ने हैरानी जतायी।

उदय बुदबुदाए'एनक्वायरी, ससपेन्शन?'

'दूर महाराज आप का भी कलेजा भैया की तरह चिरई जैसा है।' उन्होंने तर्जनी और अँगूठे से चिरई का कद बनाया, 'अरे हम पूछते हैं कि अकेले सखौती ही नहीं है न, न ही पाहुन अकेले टीचर हैं। सैकड़ों स्कूल है, जहाँ टीचर नहीं है... अस्पताल है, जहाँ कोई डाक्टर नहीं, सैकड़ों दूसरे दफ्तर हैं जहाँ प्यून तक नहीं। पचासों पुल हैं जो सिर्फ कागजों पर हैं।'

'अरे बाप।' मोतीलाल को लगा वे गश खाकर गिर जाएँगे। 'लेकिन भवन भी नहीं होगा?'

'जरूरी नहीं। लेकिन डॉक्टर, अफसर, टीचर से लेकर चपरासी और दूसरे कर्मचारी जरूर होते हैं।'

मोतीलाल की बोलती बन्द! झाजी ने कहा, 'मगर वे तो अशरीरी, अदृश्य, अलौकिक नहीं है। हन्ड्रेड परसेन्ट सत्य हैं, जैसे अपने पाहुन जी।'

'हाँकने को जितना चाहे हाँक लीजिये, सस्पेन्ड हुए तो पता चलेगा।'

'कौन साला ससपेन्ड करेगा? बड़े-बड़ों के गले फँसे हैं। कोई ससपेन्ड नहीं होगा, पाहुन अकेले हो जाएँगे?' यहाँ उन्होंने एक और क्षेपक कथा जोड़ी कि गाँव के लड़कों ने खेल-खेल में एक गदहा मार डाला था। प्रायश्चित के लिये वे पण्डितजी के पास गये। पण्डितजी ने शुद्धि के लिये हजारों रुपये के विधि-विधान बताये। तब लड़कों में से एक ने कहा, 'आपका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सन्तोष भी गदहा मारने में हमारे साथ शामिल था। इस पर पण्डितजी भभाकर हँसे, 'दस-पाँच लईका एक सन्तोष, गदहा मारलो पे कौनो न दोष।' अरे हमरा एक साला राँची में है-ई.ओ., एक पटना में है मन्त्री का पी.ए., एक भाई दिल्ली में है...'

'माने कि सारे झा लोगों की आपस में रिश्तेदारी होती है सिर्फ हमी जैसे दो-चार अपवाद हैं।' मोतीलाल का चेहरा 'झा-झा' करने लगा और मस्टराइन ने सन्तोष की साँस ली, 'ई तो नाहक कब से फूल-पचक रहे थे। साचो, चिरई जैसा करेज हैं।' एक स्वर से मोतीलाल जी पर लानत-मलानत बरसने लगे और झाजी विजेता की तरह उठ खड़े हुए।

झाजी तेरी महिमा अपरंपार!

'नहीं नहीं, प्रायश्चित तो करना ही पड़ेगा।' मोतीलाल अभी भी अपनी बात पर अडिग थे, 'झाजी से पल्ला झाड़ लेने में ही भलाई है।'

अब मामला पेश हुआ ओझाजी के दरबार में।

'हमरा बस चले तो सारे स्कूल तोड़ दें।' ओझाजी का अपना ही षटराग था।

'मास्टर होकर आप ऐसी बात कह रहे हैं?'

आप तो सिर्फ सखौती गये हैं मास्टर साहब, दुनिया में स्कूल के नाम पे क्या-क्या हो रहा है, आपको पता है? एक तरह से देखिये तो ज्ञान की गंगोत्री ही कलुषित है। उदाहरण के लिये यू.पी. में कोई स्कूल हैं, 'पब्लिक स्कूल, जहाँ बड़े-बड़ों के लड़के ही पढ़ते हैं। एक अरबपति सेठ का लड़का वहीं पढ़ता था। उसने चार टीचर्स को भोगा है।'

'भोगा है, माने...? हाय बाप, उ क्या रंडी-वंडी है?' मोतीलाल का मुँह खुला रह गया।

'रंडी-उंडी क्या चीज हैं। उससे भी गयी-बीती और गये बीते। एक तरह से देखा जाये तो ठीक-ए है। विदेश में सेक्स एजुकेशन पर हल्ला है। देर-सबरे यहाँ भी सुनायी पड़ेगा। एडभान्स स्कूल न है...।'

मास्टर साहब को फेंकू सिंह और महाराजिन के अतिरिक्त ऐसे दूसरे प्रकरण की प्रत्यक्ष जानकारी न थी। बाकी राजा-रानी और दूसरे प्रेम-प्रसंगों की बात उन्होंने किताबों में पढ़ी थी। भन्नाकर बोले, 'नाहक ही मैंने अपनी जिन्दगी इतिहास निर्माताओं के अध्ययन में जाया की।'

'इतिहास तो वही बन रहे हैं भैया। उस स्कूल के प्रोडक्ट एडमिनिस्ट्रेटर, फौजी अफसर, एम.एल.ए., एम.पी. होते हैं।' इतिहास सच पूछिये तो किसने बनाया, सेठों ने, गुण्डों ने, चाहे वो राजकीय पोशाक में हो, चाहे हूणों की शक्ल में। जिसके पास भी चार-ठो आदमी जुटाने का बेंवत था, उनको मोबिलाइज करने का ब्रेन था, उसी ने चार कुत्ते पोश कर जिस-तिस पर हुलका दिये। आप तो इतिहास पढ़ाते हैं, जरा बताइये तो ये चंगेज खाँ, तैमूर लंग, नादिर शाह या दूसरे जो भी राजा या सरदार हुए हैं उनके पास लाख-लाख की सेनायें कहाँ से जुटती थीं। आप पाँच आदमी का परिवार नहीं चला पाते और वहाँ लाख-लाख...।'

'सारे के सारे लुटेरे नहीं थे। इनमें से कइयों की अपनी रसद व्यवस्था थी जो टैक्स आदि के जरिये वसूली पर निर्भर करती थी।' मोतीलाल ने कहा।

'मैं आपका छात्र नहीं हूँ मान्यवर मास्टर साहब कि आप मुझे पट्टी पढ़ा देंगे। क्या यह सच नहीं ये सेनायें इसीलिये जुटती रहीं कि इन्हें लूटने का पूरी छूट थी?' लूटो और उसका एक अंश सरदार को दो। सीधा-सादा आदमी भी तभी तक भेंड़, बकरी या चूहा बना बैठा है, जब तक उसके पास स्कोप नहीं है। मौका मिला नहीं कि दोनों हाथों से बटोरेगा, भैंस की तरह आँख, कान, नाक तक डूबो देगा नाद में।' ओझाजी के बातों में दम था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'तो आप क्या चाहते हैं, कि सखौती में स्कूल न खोला जाये? ओझाजी कुछ शान्त हुए, मामला पैसे का है। स्कूल का भवन बनाने के लिये पैसे चाहिए। ये पैसा सखौती के गरीब-गुरबा लोग दें, सरकार दे या कोई धर्मदाता सेठ। चलिये किसी सेठ को टटोल कर देखा जाये।'

यह भिक्षाटन जैसा भटकाव था। सेठ पूरनमल से थोड़ी उम्मीद इसीलिये थी कि अपनी रखैल के नाम पर कोई ट्रस्ट चलाना चाह रहे थे। उन्होंने सखौती का पूरा हाल सुना और गम्भीर हो गये, 'देखिए मास्टरजी, पैसा तो है हमारे पास। खर्च भी करना चाहते हैं पर कहाँ, जहाँ दो-चार जन देखें। सखौती में कौन जायेगा देखने?'

'आपकी 'वो'... उनकी आत्मा को तो शान्ति मिलेगी।'

'वो किसने देखा है? आपके आरा में सरमन और हरमन चौक है कि नहीं?'

'हमें ठीक-ठीक पता नहीं ।'

'कौन चीज के मास्टर है आप लोग, इतना भी नहीं पता कि हर राजा, बादशाह और बड़े आदमी रखनी रखता था, बड़े-बड़े हरम होते थे?' सेठ ने महान लोगों की परम्परा से खुद को जोड़ते हुए उन्हें लताड़ा।

'जी।' मोतीलाल ने थूक घोंटा।

'आपको नहीं मालूम है, तो जान लीजिये कि ये दोनों बाबू कुँवर सिंह की रखैलें थी? आज न कुँवर सिंह है, न हरमन, न सरमन लेकिन उनका नाम अमर है।'

'जी। मैं समझ गया।' ओझाजी उठकर खड़े हो गये।

'आये हैं तो हजार रुपया दे देंगे।'

सेठ ने दस की एक गड्डी चूतड़ के नीचे से निकालकर फेंक दी।

'आपके नाम का संगमरमर का प्लेट लगवा दें?' क्या नाम हुआ आपकी प्रेमिका जी का? मोतीलाल ने श्रद्धा से विगलित होते हुए कागज-कलम निकाल लिये। पूरनमल ने हाथ से उन्हें ऐसे हड़काया जैसे मक्खियाँ हों। शिक्षक द्वय वहाँ से ऐसे निकले मानो प्रेत की गुफा से निकल रहे हों। चौक पर आकर दोनों ने एक-दूसरे के चेहरे की राख को झाड़ा।

'मेरे चलते आपकी इतनी हतक हुई है न?' मोतीलालजी ने अनुतप्त स्वर में कहा।

'उसकी फिकर मत कीजिये। प्रेमचन्द ने कहा है न, गन्दा पानी भी गन्दगी को साफ करता है। सो पैसे लीजिये और अपना काम कीजिए।'

'अगर आपको सखौती लिवा चलें तो...?'

'अब मुझे क्यों खामखा घसीटने लगे। हम दोनों ही स्कूल से एक साथ चले जाएँगे तो कल को कुत्तों को मनमानी करने और हमारे बीच षड्यन्त्र रचने की छूट मिल जायेगी।' ओझाजी ने प्रणाम किया और विदा ली!

जेब में हजार रुपये साँप की केंचुल की तरह खसखसा रहे थे। अपनी जरा भी औकात रहती तो हजार रुपये उसके मुँह पर मारकर आ गये होते। समाज की जोंकें! इस हजार रुपयों की एवज में इतने उपदेश पी गये, 'सुनिये मास्टरजी। ईमानदारी का कदर आगर कहीं रह गया है तो इसी चोरी के धन्धे में ही। यहाँ सबकुछ विश्वास पर चलता है। आप गरीब हैं और आपके पास कुछ देने को है चाहे वो रूप हो, चाहे वो विद्या और हम अमीर हैं तो हम सौदा कर सकते हैं।' मानों उस गरीब रखैल के पास रूप था और हमारे पास विद्या तो सेठ पूरनमल उसे खरीद सकता है। और कहाँ तक हतक सहोगे मोतीलाल?

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

सखौती की दूसरी यात्रा पर मोतीलालजी ने साथ में शौकत मियाँ को रख लिया था। जो चना-

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चबैना और पानी लेकर चल रहा था।

तीन नदी, चार पहाड़ और दोनों ओर फैले जंगल को पारकर जब वे दोबारा सखौंती पहुँचे तो वे विजूके नहीं थे। शाम को बाकायदा राजपूत टोला, बभन टोला और दूसरे टोलों से लोग आये और एक स्कूल की योजना बनाई गयी। दूसरे दिन गाँव की सबसे बुजुर्ग महिला दुखनी देवी ने स्कूल भवन का शिलान्यास किया। फौरी तौर पर थूमी, बाँस, फूँस के छप्पर से स्कूल की एक कुटिया तैयार की गयी। मास्टर साहब ने अपने हाथों में एक नाम पट्टिका लिखी 'सखौंती प्राथमिक पाठशाला' और दूसरी पट्टिका पर गाँव के दाताओं की सूची और दान की राशि का ब्यौरा था। वह सब तो हुआ पर ज्यादातर गाँववालों की समझ में यही नहीं आ रहा था कि पढ़-लिखकर आखिर होगा क्या? बच्चों को मिठाई का प्रलोभन देकर उन्हें स्कूल में बुलाया गया। स्कूल का श्री गणेश सम्पन्न हुआ। दूसरे दिन से पढ़ाई विधिवत शुरू हो गयी। श्रम-दान से ईंटें पथवायी गयीं। जंगल काटकर जलावन तैयार हुआ। ईंटें, जैसी पकनी चाहिये थीं वैसी नहीं पकीं, मगर काम लायक कुछ ईंटें निकल आयीं। राजमिस्त्री बुलाए गये। कच्चे गारे से कच्ची ईंटें जोड़ी गयीं। तीन कमरे। सामने मैदान। आधा ही बना था कि बारिश शुरू हो गयी। बाकी काम गाँव की कमीटी के हवाले करके लौट आये मोतीलाल। तय हुआ कि गर्मियों की छुट्टियों के बाद स्कूल विधिवत चल निकलेगा।

उदय ने कितने दिन पढ़ाया, कितने दिन नहीं, सो वे ही जाने पर मस्टराइन को लगा, मोतीलालजी की जिद ने उनके बेटी-दामाद को भीषण असुरक्षा में धकेल दिया है। बरसात में तीन-तीन नदियों को पार कर पाना ही मुश्किल है। पार कर भी गये तो उस झोपड़े के स्कूल में साँप-बिच्छू, जंगली जानवर ऊपर से...हाय। इस सनकी की सनक ने उन्हें कहीं का न रखा। चुपके से एक दिन फिर जा पहुँची झाजी के पास। नहाकर अपनी त्रिकुटी पर चन्दन-रोली सजा रहे थे, 'का करें भौजी, आपका दुःख हम समझते हैं। पर ई जो आपके 'पती महोदय' सत्यवादी हरिश्चन्द्र की औलाद है न, यही चाल रही तो एक दिन सबको बेंच देंगे। अपनी जिद में।'

'तुम्हीं कोई उपाय करो बबुआ। जिन्दगी भर एहसान मानेंगे।'

'इस बार क्या गिरवी रखने आयीं है भौजी?' झाजी ने दूसरा पैंतरा लिया।

असहाय भाव से आँचल पसार दिया मस्टराइन ने 'अपने पास क्या है बबुआ? मैं तो खुद भिखारिन बनकर तुम्हारे दरवज्जे पर हाजिर हुई हूँ।'

'हैं, भौजी, है। आपसे बढ़कर दाता भला कौन है?'

मस्टराइन के चेहरे पर मूढ़ता के भाव थे।

'का कह रहे हैं बबुआ, मेरे पास कुछ हो और आपको न देवें।'

'पहले आप 'हाँ' तो कहें।'

'पहले आप बताओं तो सही।'

'ज्ञान को हमरी झोली में डाल दें। आप जो भी दहेज चाहेंगी, हम देने से पीछे नहीं हटेंगे।'

'क्या कहा गेयान, माने कि...।'

'हाँ भौजी आपका बेटा। आप तो देख ही रही हैं, तीन-तीन बेटियों का मुझे बियाह करना है। बस एक का उद्धार आप कर दीजिए।'

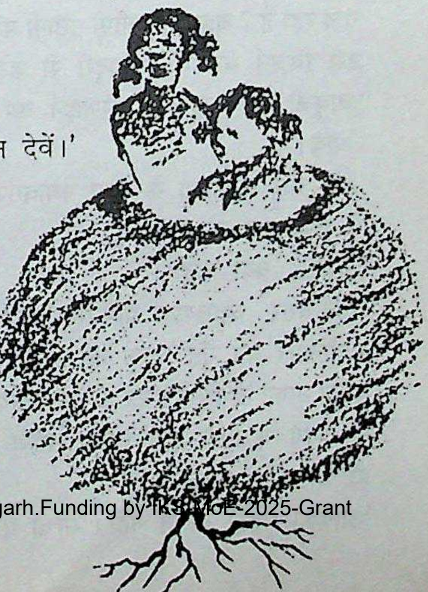

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

'पर बबुआ, गेयान तो अभी बच्चा है।'

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'उतना बच्चा भी नहीं। हम उसके बड़े होने का इन्तजार कर लेंगे।'

'इतने दिन का उधार...?' सोच में पड़ गयी मस्टराइन, 'हमें मास्टर साहब से पूछना पड़ेगा।'

'पहले आप तो 'हाँ' कर दीजिये फिर देखिये मेरा कमाल। आप की समिस्सा हमरा समिस्सा हुआ।'

'यही बात है तो जाओ, हमरा 'हाँ' रहा।'

'बस भौजी, बस', झाजी उनके कदमों पर गिर पड़े। बारी-बारी से उनकी पत्नी और बेटियाँ भी आ-आकर पाँव छूने लगीं। मस्टराइन का दिमाग ठीक-ठीक काम नहीं कर रहा था, 'पता नहीं झाजी ने किस बेटी के लिये बर्धन का हाथ माँगा है। तीनों लड़कियों को उन्होंने देखा। बुरी नहीं है तो अच्छी भी कहाँ है? क्या झाजी से पूछें...? न, यह भद्दा लगेगा। दोहाई हो बाबा बैजनाथ की, मुँह से 'हाँ' तो निकल गया है, अब तुमहीं सम्भालना।'

'बबुआ जी।'

'जी?'

'हमको अउ एक ठो बात का डर है', मस्टराइन ने इधर देखा, फिर उधर, फिर फुसफुसा उठीं, 'हुआँ सखौती में, सुना है, एक दू-ठो छौंड़ी बड़ी छिनार है। हमेशा ताक-झाँक करती है। अब पाहुन ठहरे जवान आदमी। जंगल पहाड़ का बात, कहीं वशीकरण मन्तर न मार दे कोई।'

'आप निफिकर होकर जाइये भौजी।' आपने 'हाँ' कर दिया तो आपकी समिस्सा हमारी समिस्सा हो गयी। मन्तर का काट भई मन्तर ही है। ऐसा मन्तर मारेंगे कि न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।'

और वाकई हुआ भी कुछ वैसा ही।

वह मार्च की सुहानी शाम थी। जब उदय और सावित्री ने आकर माँ-बाप के पाँव छुए।

'अरे तुमलोग, इस वक्त? सब खैरियत तो है।'

मोतीलाल जी ने अप्रस्तुत से हो उठे।

'जी, सब आपका आशीर्वाद्व है।'

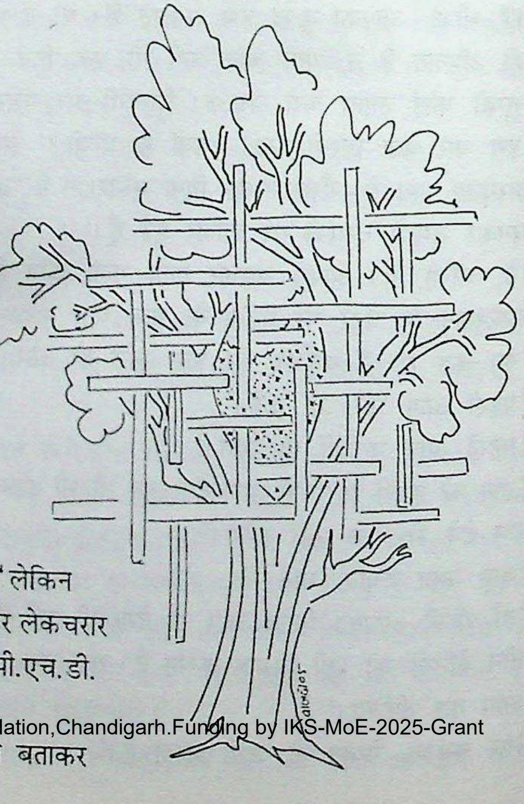

'और बताइए पाहुन जी, आपका स्कूल कैसा चल रहा है? बहुत तकलीफ उठानी पड़ती होगी उस विजन वन में। बहादुरी से डटे रहिए।'

'बाबूजी मैंने स्कूल से रिजाइन कर दिया।'

'ऑय।'

'हाँ, और कोडरमा के पास नबावगंज कॉलेज में लेकचरार हो गया हूँ।'

'चरार... क्या कहा?'

'लेकचरार, व्याख्याता प्रोफेसर-हिन्दी का।'

मोतीलाल का मुँह खुला का खुला रह गया, 'लेकिन पाहुन अपने तो सिर्फ इन्टर ही पास किया था न और लेकचरार के लिये कम-से-कम एम.ए. होना चाहिए। पी.एच.डी. हो तो और अच्छा।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

'आपको पहले बताये नहीं। सोचा एक बार ही बताकर

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चौका देंगे।'

'लेकिन रिजल्ट कब निकला?'

'पिछले साल'

'और बी.ए.?'

'ऊ तो पहले हीं।'

'इहो सब झाजी की माया है? हे पाहुन, हाथ-जोड़ते हैं, सच-सच बताइए। ये सब क्या है?'

'वही जो आप सुन रहे हैं। बाबूजी मैं झूठ नहीं बोल रहा। हमारे पास एम.ए. की डिग्री है।'

'अच्छा ई तो बताइये कि, क्या तो....', उन्हें सहसा हिन्दी का कोई माकूल प्रश्न नहीं सूझा, जो सामने दिखा वही पूछ डाला, 'हाँ, ई बताइये कबीरदास ने कौन सी पुस्तक लिखी।'

'बीजक, रमैनी। उ तो दूसरे से लिखवाते थे। खुद कोई पुस्तक नहीं लिखी है।'

'अरे। तो आपने पढ़ा भी है? चमत्कार। झाजी तुम्हारी महिमा अपरम्पार!'

और ठीक चमत्कार की तरह प्रकट हो गये झाजी भी। बहुत व्यस्त थे सो जल्दी-जल्दी बताने लगे, 'कौलेज अभी प्राइवेट है। बाद में एप्रूभल आ जाएगा। तनखाह भी पक्की होगी। अभी सिर्फ दू सौ रुपया मिलेगा। प्राइमरी में तो ई हो नैं भेटाना था। सो लौसनैं है।' मस्टराइन ने बाकायदा आरती उतारी झाजी समेत बेटी-दामाद की और मुहल्ले भर में लड्डू बँटवाया।

'लौस, लौस तो है ही।' मोतीलालजी खुश नहीं हैं; दामाद प्राइमरी स्कूल की लीचड़ अध्यापकी से कॉलेज का लेकचरार बन जाये यह तो सबसे अच्छी खबर होती पर क्या यह डबल प्रोमोशन उनके कैरियर के लिये ठीक होगा? थोड़ी देर के लिये मान भी लें कि यह चमत्कार हो चुका है फिर भी एक समस्या तो खड़ी ही हो गई - सखौती के उस खंडहर का क्या होगा!

'उस खंडहर में आपकी आत्मा वास करेगी। कुछ दिन नीम के पेड़ पर बादुर की तरह लटकल रहेगी और कुछ दिन सुखौती के खंडहर में परेत की तरह मंडराया करेगी।'

मस्टराइन ने इस बार उनके लद्धड़पन को कसकर आड़े हाथों लिया, 'तुम कैसे बाप हो जी, जिस खबर से एक बाप का सीना चौड़ा हो जाता है, उसी खबर से आप दुःखी हो गये। हम बहुत आदमी देखे, लेकिन तुम्हारे जैसा एक भी नहीं।'

बी.डी.ओ.पाड़ा, कुल्टी, बर्द्धवान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

यह कहानी नहीं

राजी सेठ

कमरे में पसरी ठिठुरन से घबरायी कि बाहर टहल आयी। कोने में गुलदाउदी के दो नये गमले। तीन भरावदार मोटे फूल जैसे गरदन उठाकर मेरा मुँह ताक रहे हों।

कल रात तक तो गमले यहाँ नहीं थे, मुझे ठीक याद है। कहाँ से आये होंगे रातों-रात। समझते देर नहीं लगी।

तो यह आण्टी हैं। अब इस तरह उपस्थित। कोंचती हुई। अपनी माँग को जताती हुई। अपनी बात को कहने का यह भी एक ढंग है।

लगा, किसी ने अधबीच टोक दिया है। कमरे में लौट आयी। भीतर दीवारों से ठिठुरन चू रही है। पोर-पोर में दाखिल हो रही है। पश्चिम के मुखड़े का मकान न खुद गरमाता है, न दूसरों को गरमायश देता है। छत एक आसरा है, पर छत? छत पर बैठने का मतलब है अपनी एकाग्रता में कितने अनेकानेक का प्रवेश!

आज कहानी खत्म कर डालने की ठानी थी। कब से टप-टप टपका करती है भीतर। पकड़ी न गयी तो बिखर जाएगी या पककर ठोस हो जाएगी। तब फिर हुआ अनहुआ नहीं हो पाएगा। अनहुआ किये बिना कैसे कोई अनुभव हाथ लग सकता है रचना के।

अन्दर भी चित्त नहीं लगा। बिथुरी-बिथुरी-सी मानसिकता। आँखें बन्द कीं और आरामकुरसी पर पसर गयी। ऐसे शैथिल्य का सर्वांग स्वीकार। काम के अतिरिक्त दूसरी इच्छित मुद्रा।

आँखें बन्द क्या कीं कि घर के नीचे के हिस्से की खटपट सुनाई देने लगी। इस समय आण्टी शायद बरतन माँज रही हैं, फिर झाड़ू लगाएँगी, धूल झाड़ेंगी, नहाएँगी। पूजा में अब वह नहीं बैठतीं। वह जरूरत उन्होंने कब से हथेलियों में मसलकर फेंक दी। निवृत हुईं नहीं कि ऊपर आने का उपक्रम करेंगी। आज तो बहाना भी है—'कैसी लगी गुलदाउदी?'

बरसाती में पिछले ढाई साल से रहती किसी किरायेदार को कभी गुलदाउदी दी जाए, कभी केसरी चावल, कभी पका-पकाया भोजन तो अनचाहे भी एक भाषा निर्मित होती जाती है जो मुझे नहीं सुहाती। व्यवहार का उल्लंघन दुखदायी होने लगा है, क्योंकि माँग करने लगा है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं आण्टी को समझा नहीं पाती कि मेरे संसार में आदेशों के लिए कोई जगह नहीं है। दुर्घटनाएँ जीवन में घटती हैं। गूँगा-बहरा तक कर दे सकती हैं, पर जरूरी नहीं रचना की पकड़ में आ ही जाएँ। उनका अपना तर्क और तापमान है।

आण्टी के लिए यह एक अकल्पनीय बात है। उनके हिसाब से तो लेखक होने का अर्थ है कभी भी लिखने बैठ सकना। विषय सामने हो तो पिल पड़ना। विषय दारुण हो तो लहूलुहान भाषा को जुटाने का दम रखना। अमरता पानेवालों की श्रेणी में लेखक का बड़ा नाम हैं।

नीचे बाथरूम का दरवाजा बजा। लगा आण्टी नहाकर आ चुकी हैं। एक सनसनाहट-सी पैरों में दौड़ गयी। एक तीखा क्षोभ कि कैसे कोई मेरे एकान्त में भी इस तरह जमकर बैठ गया है। बाँट गया है मुझे वहाँ, जहाँ सब-कुछ अखण्ड एकाग्र चाहिए; नहीं तो कुछ भी नहीं सधता। जल्दी से एक चलताऊ-सी साड़ी पहनी। शाल ओढ़ा और घर से बाहर जाने को तत्पर हुई। पर इस समय कहाँ? क्यों न त्रिवेणी में? जगदीश स्वामीनाथन की प्रदर्शनी कब से चल रही है। प्रदर्शनी में चित्त नहीं लगा। मन में जगह नहीं थी। पहले से भीतर कुछ साँस ले रहा था। उसे पृष्ठों पर छोड़कर आना था। इस साँस का सुनाई देना बन्द हुआ तो मन बंजर हो जाएगा। कलम को नहीं धकेल पाएगा और यह स्थिति किस रचनाकार को स्वीकार होगी।

चित्र देखती रही। मात्र देखना। रंगों की पिघलन के जादू को दृष्टि से सहलाना। रंगों की भाषा में उतरने से इन्कार करना। अपनी ऊर्जा को घर लौटाकर ले जाना जरूरी है।

उसके बाद सब-कुछ आसान हो गया। श्रीधराणी कैफे में एक कप चाय। भास्कर से चलताऊ-सी भेंट। सामने दिखाई देती भावनृत्य की रिहर्सल और वापसी।

दुबके-से घर के भीतर हो लेने का इरादा था। जानती थी लैच खुलने की आवाज एक बुलावा है, पर घर के गेट पर ही अंकल मिल गए। एक नन्हा-सा स्मित और संक्षिप्त-सा न्योता— ''आओ, बैठो न थोड़ी देर।''

'न' नहीं कह सकी। उनके साथ ही घर में दाखिल हुई। उनकी उपस्थिति के चलते एक निरापद उष्णता।

जाड़े के बावजूद अंकल का माथा कितना पसीजता-सा। शान्त मुद्रा। आँखें अपने आकार से आधी सिकुड़ी हुई। वह किसी जमीन का सौदा करके आये थे।

उन्हें आया देखकर आण्टी ने उठने का उपक्रम किया तो उन्होंने टोक दिया, ''बैठी रहो, मैं खुद लूँगा जो मुझे लेना होगा।''

वह फिसफिसा गयीं—'खुद ही लेना होगा। कौन यहाँ बैठा है हमारी सेवा करने वाला?'

आगे चलते अंकल अचानक ठिठक गये। शरीर को घुमाए बिना ही मुँह घुमाकर बोले—''यह भी तो अपने ही मन का भ्रम है। बनी हुई बातें हैं। असलियत तो यह है कि माँ-बाप की सारी उम्र बच्चों की सेवा करते गुजरती है। जब बड़े हो जाते हैं तो अपने कामकाज पर चल देते हैं। कौन घुटनों से लगकर बैठे रहते हैं कि सेवा का रोना रोया जाए।''

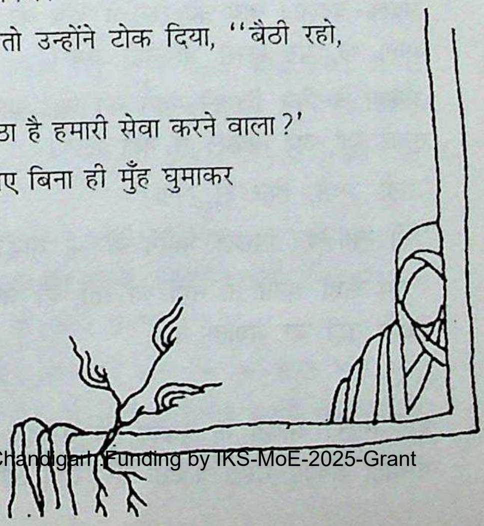

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

सुनकर मैं दहल गयी। अंकल ने किसको समझाया

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

था? अपने को? या आण्टी को ढाढ़स का झुनझुना थमाया था। कितनी कच्ची भुरभुरी जमीन वह उनको दे रहे थे; चाहें तो उस पर पैर रखकर खड़ी हो लें। जीने के लिए एक दार्शनिक-जैसे दिलासे का इस्तेमाल कर लें।

अंकल की बात आण्टी को चुभी थी। खुद आहत हुईं तो चोट की—''असल में बच्चों के जाने से तुम्हारा दिमाग फिर गया है। ऊल-जलूल बकते रहते हो। बच्चों के नौकरी पर जाने और दुनिया से जाने में क्या कोई फर्क नहीं हैं?''

अंकल ने उत्तर नहीं दिया। मेरी ओर मुड़कर कहा, ''क्या लिख रही हो आजकल? पिछला जो चल रहा था, खत्म हो गया क्या?''

पिछला या अगला जो कुछ भी था, अंकल को कहाँ पता था! उन्होंने बात के लिए बात छेड़ी थी। पटरी बदल देनी चाही थी।

''इसका पिछला तो कभी खत्म ही नहीं होता। आगे का क्या शुरू होगा।'' उत्तर आण्टी ने दिया था। आवाज में निचुड़ती तीखी कड़ुवाहट।

यह कड़ुवाहट कहाँ से आयी? व्यवहार में तो बिल्कुल उलटा था। आण्टी जरूरत से ज्यादा आत्मीयता से पेश आती थीं जैसे मुझे सहेजकर रखना जरूरी हो—उनके परिवार की त्रासदियों की गवाह इतिहासकार को।

''लिखना-पढ़ना अपनी अन्दरूनी तर्ज पर चलता है'', अंकल ने छोटी-सी दलील दी। आण्टी ने नहीं सुनी। पल्लू नाक पर रखकर फिसकते बोली—''मैं जानती हूँ कोई मेरा पक्ष लेने वाला नहीं। किसी और पर ऐसी गुजरी होती तो जानती।''

अंकल सकपका गए। गिलास में पानी उँड़ेलकर आण्टी के सिरहाने खड़े हो गये—''लो पियो। मुँह धोकर आओ। चाय बनाते हैं फिर पीते हैं सब।''

''मैं बनाती हूँ'', मैंने मुक्ति दी या ली। चाय बनाते मन में एक ही भुनभुनाहट कि क्या आण्टी पर ही ऐसी गुजरी है? या उनके पास स्त्री होने की खण्डनीयता का एक युगों पुराना लबादा है।

चायपान ऐसा जैसा अधोलोक में बैठे किसी औपचारिकता का समापन। खनखनाहट, बरतनों की अदला-बदली। चाय की रस्म ने बोझ को नहीं धकेला। वातावरण को चहकाऊँ, दायित्व मुझ पर आता था, पर मुझसे भी नहीं सधा।

अंकल ने फिर लिखने-पढ़ने की कोई बात नहीं की। चलते समय मैं किराये के पैसे देने को तत्पर हुई, पर अंकल ने नहीं लिये।

'रखो अभी, फिर ले लूँगा।'

''ले लीजिए। पिछले महीने के भी बाकी हैं। मुझे साथ-साथ देने में सुविधा होती है।''

''तुम कहीं भागी तो नहीं जा रहीं, हो जाएगा।'' अंकल की मुद्रा में कुछ ऐसा था कि आग्रह किया नहीं जा सकता था।

ढाई साल। आण्टी के मकान की बरसाती में सुखद आवास। पिछले मकान की तरह नहीं कि गन्धाती शंकाएँ रास्ता काटती रहें। क्यों अखिल, असद और सौरभ जैसे गैर परिवारी लौण्डे यहाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आते-जाते हैं? क्यों ज्योति अपना घर रहते हुए भी यहाँ सो जाती है? क्यों दिन की बजाय रातों को जागने का चलन है? क्यों महरी को आधे दिन लौटा दिया जाता है, झाड़ने-बुहारने की इज़ाजत नहीं मिलती।

यहाँ आण्टी को सब-कुछ स्वीकार रहा। मेरी उखड़ी-पुखड़ी दिनचर्या। निजता के नियम। अपरिभाषित रागबन्ध। आण्टी हर स्थिति में भागेदारी की तुला पर तुल आना चाहती रहीं, चाहे चेष्टा फूहड़ ही क्यों न हो जाए। अच्छा लगता था उनका उत्साह। उम्र की चौखट लाँघकर फुलफुलाना। जिन्दगी को हथेलियों में भरे रहने के ओज से खिलखिलाना।

यह परिदृश्य एकाएक बदल गया था। लोगों की भाषा में कहूँ तो भाग्य का लिखा घट गया था। ऐसा कुछ कहाँ लिखा होता है, मैं नहीं जानती पर सामने थी—एक कुरूप अकाट्य वास्तविकता। शाम का झुटपुटा। सड़क पर दौड़ती एक मारुति। मारुति में सवार आण्टी का परिवार—बेटा, बहू, पोता, पोती। दायीं ओर से आकर मोड़ लेते सलाखों से भरे ट्रक से टक्कर। सलाखें मारुति के पेट में धँसती चली गयी थीं। जहाँ लोहा छेदा जा सकता हो वहाँ कच्चे कोमल इन्सान...

चिताएँ तो दो दिन में ही ठण्डी हो गयी थीं, पर मृत्यु की गन्ध इतनी परिव्याप्त, इतनी टिकाऊ, आतंककारी। अनुपस्थिति की स्थूलता-इतनी महीन, विप्लवकारी। अन्दर जितने भी बाँध थे सब खुल गए थे।

घर के नीचे के हिस्से में चहकती दिनचर्चाएँ ठप्प हो गयी थीं। बच रहे सन्नाटों और जरूरतों के बीच ठहरे हुए समय के साँवले भुतैले खेप। आण्टी अवसन्न बैठी रहतीं। पता नहीं किस-किस की राह देखतीं। मैं पहुँच जाती तो मेरे बैठने को किसी-न-किसी कारण लम्बाये रहतीं। वहाँ बैठे रहने का अर्थ था घायल होना। अपने को भीतर तक दे देना। उतना दिये बिना तो किसी के घाव पर फाहा तक नहीं लगता। फिर किसी एक दिन। कई श्रेणियोंवाले हिमालय-जैसे दुःख के नीचे पिचकती बचती आण्टी कुछ होश में आयीं तो अचानक ही मेरे कमरे में टहल आयीं। उनकी मुद्रा में एक तड़फड़ाती क्षिप्रता। जल्दी-जल्दी पलक झपकाते वह खुद ही दूसरी कुरसी खींचकर मेरे निकट दुबककर बैठ गयी थीं।

''सुनो, तुमसे एक बात कहनी थी। जब से ध्यान में आयी मन में चैन-सी पड़ गयी।''

फिर जो कुछ भी उन्होंने कहा था कितनी अजीब तरह से मार्मिक लगा था। कहते-कहते उनका चेहरा थरथरा जाता रहा, जैसे जान ही न पा रही हों कि हँसे या रोएँ।

चाह रही थीं आण्टी—मुझसे। एक कलमखोर से। अब आगे जब भी मैं कुछ लिखूँ उनके बच्चों के बारे में लिखूँ। ऐसी दारुणता के नीचे पिस जानेवालों को शब्दों का अर्घ्य देकर आभूषित करूँ। ''जिन्दगी के न्याय ने तो उन अभागों को कुछ नहीं दिया। तुम ही कुछ करो। तुम्हें भी क्या पूरी-पूरी रात उनकी चीखें सुनाई नहीं देतीं?''

उनका चेहरा मटमैला होने लगा था। एक अवरुद्ध साँस जितनी छोटी-सी घिग्घी। उन्होंने पूरा मुँह खोलकर ढेर सारी हवा भीतर भरी थी—''जानती हूँ, तुम भी इतनी हृदयहीन नहीं हो। दुनिया-जहान की झूठी-सच्ची बातें लिखती रहती हो, इतना भी नहीं करोगी?''

कराहती-सी उत्तेजना से उन्होंने मेरे हाथ थाम लिये थे। मेरे हाथ काँपे थे, पर बोल नहीं फूटे थे। उनके हाथों को मैंने अपनी हथेलियों में पूरा भर लिया था। वह छलछला आयी थीं। अपनी आँखें उन्होंने मुझ पर गाड़ दी थीं। आँखें क्या थीं, कीचड़ के नन्हें-नन्हें [illegible]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बोलीं-''सोचो जरा, यह जहाँ तुम रह रही हो, यह सब-कुछ भी तो उन्हीं का था। तुम पर भी तो उनका कुछ ऋण है। ''

मैं हिल गयी थी। मन-प्राण को आसरा दे सकें ऐसे शब्दों को, मैं टटोलती रह गयी थी। अन्ततः मैंने अपनी देह से काम लिया था। उन्हें अपने साथ सटा लिया था—''जैसा आप चाहेंगी वैसा ही होगा।'' ऐसा कुछ कहना मेरे कंधे से सटे-सटे उन्होंने जरूर सुना होगा।

सब सुन लिया था। कुछ भी असम्भव नहीं लगा था। कितनी छोटी -सी माँग। अपने ही कर्म का विस्तार। अक्षरों वाक्यों का समायोजन। केन्द्र में एक धमाकेदार घटना। केन्द्र के बाहर इतनी बड़ी परिधि। जीवन से मृत्यु तक। नियति से नियामक तक। परिधि पर पसरे झीने मोटे दुःख। हताशाएँ। रीता भविष्य। पीढ़ियों से इस तरह अधबीच कुतर दिए गए रिश्ते। एक अधेड़ दम्पती। एक आवृत आदमी। एक सन्तप्त स्त्री किसी अनजाने-से शब्दों की भीख माँगती हुई।

सब-कुछ बना-बनाया पारदर्शी साफ। मन में नन्ही-सी सांत्वना भी। आण्टी उबर रही हैं। तभी न कुछ माँग रही हैं। सोच रही हैं अपने बाहर-मेरे बारे में , कथा के बारे में, अमरता को लेकर।

लिख जाने से शायद उन्हें लगेगा कि कहीं कुछ बच गया है। उनके जीवन की दारुणता इतिहास की दीवार पर दरज हो गयी है, जैसे जेल की पथरीली दीवारों पर कैदियों की चीकट हथेलियों और नाखूनों की व्यग्र खरोंचों के निशान छूट जाते हैं।

इतिहास में दर्ज होने से किसी सन्तप्त को चैन पड़ती हो तो जरूर पड़े। मेरे माध्यम से पड़ती हो तो मेरा अहोभाग्य।

एक उत्तानता मेरे अन्तर्मन को चहका गयी।

आगे फिर। उठते और बैठते। हर नये दिन-एक संकल्प। अक्षर-संरचना का एक नया खेप। स्मरणों की उसी सुरंग के भीतर से अकेले चल निकलने की रचनात्मक तैयारी। अपने पर उछाले जाते कितने ही प्रश्न। कौन-सा स्थल होगा जो आण्टी की अपेक्षाओं का उत्तर बन सकता होगा? पीड़ा का कौन-सा मुख उन्हें अधिक सान्त्वनीय लगेगा? आण्टी अपने दुःख की चरण-चरण प्रतिध्वनियाँ सुनना चाहती होंगी। कौन-सा बिन्दु ढूँढ़ना होगा जो उनके मन के निकटतम होगा? दुर्घटना?...आघात?...पीड़ा?...प्रभाव?... निरन्तरता की उखड़ी चूलें? ...भविष्य? ... अवाक् अकेलापन? कौन-सा रूपबन्ध जो दारुणता को उभारकर ला सकता होगा और उनके मर्म को आत्मीय लगेगा?

शब्द नहीं बोलते। उत्तर भी नहीं जागते। कोई कौंध जड़ता को चीरती छितराती नहीं आती। मैं तरह-तरह से चेष्टा करती हूँ। व्यथा-कथा को कभी दुर्घटना के दुर्वह धमाके से शुरू करती हूँ। कभी आधी रात में सुनाई देती किसी स्त्री की चीखों से। कभी किसी अजनबी द्वारा पीटे जाते सदर दरवाजे के कोलाहल से। बार-बार सारे दृश्य को अपने पर घटाकर देखती हूँ, पर कुछ नहीं बनता।

कभी कुछ बन भी जाता है तो आण्टी की आँख से देखते उसे निरस्त कर दिया जाता है। मैं अपने को फिर प्रश्नाहत करती हूँ—क्या ऐसा है कि मैं स्थिति को नहीं लिखती, आण्टी की अपेक्षा को सम्बोधित करती हूँ। ढूँढ़ती हूँ—करुण, दर्दीले, सोख्ता-से शब्द कि लगे आण्टी के सिर पर संसार की सबसे बड़ी चट्टान आन गिरी है।

और चट्टान के नीचे पर चट्टान सी एक ही है मेरे हाथ में—नश्वरता। मरने का, मिटने का, पिटा-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पिटाया नियम। वही एक तर्क जो जन्मा है वह मरेगा ही। यह सच अटल है। परिचित। प्रकृति की दिनचर्या-जैसा। साधारण।

तो क्या रचना किसी असाधारण की खोज है? असाधारण ही चाहिए तो वह भी सामने परोसा रखा है। ऐसा कुछ हुआ कि पल-भर में सृष्टि का क्रम ही उलट गया। जो कच्चे थे, कोमल थे, ताजातर थे, झर गए। जो पके हैं, प्रौढ़ हैं, अग्रज हैं, बचे रह गये। माँ-बाप के कन्धों पर बच्चों की अर्थियाँ। बाद की पीढ़ी पहली पर लदी हुई।

आण्टी के विलाप के चिथड़े कानों की लवों को फटकारने लगते हैं। दालान। चार कतारबद्ध लाशें। हूकें। चीखें। पछाड़ खाती आण्टी के प्रलाप में दोहराया जाता वही एक अशमित हिस्सा—'यह कहाँ का लोकन्याय है बचवा?... अब हम यह भी करें...अग्नि दें। तुम सबको फूँककर आएँ...जो कुछ तुम लोगों को करना था, वह तुम हमसे करवा रहे हो...''

फिर वही सम्पुट में भरा जाता मृतक बेटे का मुख। छाती छीलते दोहत्थड़। मूर्छाएँ। एक विकराल असान्त्वनीय अनन्तता।

अर्थियाँ उठने से पहले अंकल ने आण्टी को डबल सिडेटिव देकर अन्दर कमरे में भेज देने का यत्न किया था। किसी सयाने ने टोका था—''यह ठीक नहीं। देख लेने दो। बाद में पछताएँगी।''

''पछताने को सारी उमर पड़ी है।'' अंकल ने छोटा निर्भाव-सा उत्तर दिया था। माथे के बीचों बीच इकट्ठी होतीं दोनों भवें। चेहरे पर चट्टानी स्थिरता। गुँगुआती कोमलता से उन्होंने चारों बच्चों के मुँह ढँके थे; फिर खड़े हो गये थे। आकाश की ओर देखते हथेलियाँ फैलायी थीं। अँगुलियों को ऊपर को मोड़ा था जैसे वज़ू करते हैं—''वापस माँग रहे...हो? ... वह भी तुम? जाओ, ले जाओ।''

अपने होठ उन्होंने भींचे और अर्थी उठाने झुके। मैं थर्रा गयी। मन ऐसा जैसे कबूतर के अभी-अभी जन्मे बच्चे को किसी ने पत्थर से कूच दिया हो।

अन्त्येष्टि के हर सोपान से गुजरते अंकल को देखकर लगा—रचना की क्या बिसात कि जीने के दर्दों को समेट पायें समूचा। झेल लें। क्षरित करे। वह तो खुद ही दर्द के बयान के लिए जीवन की मोहताज है। जीवन पर रची गयी अक्षरों की एक इबारत। मारने और सहलाने के ढंग तो जीवन के अपने ईजाद किये हुए हैं। समय से उसकी गहरी साँठ-गाँठ है। वहीं, कहीं मरहमी आलेप की तैयारी भी है। ऐसा न होता तो इन दस महीनों में आण्टी का दर्द अमरत्व की इच्छा तक आने की यात्रा कैसे तय करता?

मुझे लगता है रचना को आत्ममुग्धता से बरी हो जाना चाहिए। रचना का अर्थ हुआ—एक मुखविहीन लाचारी। अँधेरे में इन्तजार। शब्द टटोलते गूँगे दर्द के हाथ। रोशनी की कतरन के लिए असफल तप। हर बार नयी लड़ाई के लिए धीरज की माँग।

इस दलदल में आण्टी कहाँ अटेंगी। मैं व्यर्थ उनके पहले से दारुण दुःख को और अधिक दारुण और विरूपित करने के रास्ते ढूँढ़ रही हूँ। लिखते लगता है पैरों में कीचड़ हुई जा रही है। जीवन को ठेलनेवाले पैर कीच में छप-छप करते हैं, आगे नहीं बढ़ते।

आगे के दिन। एक असुविधाजनक स्थिति। आण्टी से एकाएक ही रिश्ता बदल गया था। यह नहीं कि आएँ, बुलाएँ, दुखड़ा रोएँ और हल्की होकर चली जाएँ। वह मुझे समय देने लग गयी थीं। मेरे निकट अपनी उपस्थिति को प्रतिबिम्बित करने लगी थीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह अनुग्रह अखरने लगा था। जवाबदेही का तनाव पैदा करने लगा था। क्या वह इस दलदली पारस्परिकता को देख पा रही थीं?

उस शाम मैं टहलकर आयी तो बाहर बरामदे में ही आण्टी बैठी मिल गयीं। उनका प्रश्न था—"कुछ लिखा?" उनकी आँखें चमकने लगी थीं। क्या किसी पूरी होती अपेक्षा की आँच से?

"कुछ भी तो नहीं लिखा।" एक सरसरा-सा उत्तर उन्हें थमाकर मैं निकल आना चाहती थी—सारा दिन लिखने में उलझने की बात उनसे कहने की इच्छा नहीं थी।

"क्यों, कल तो तुम तड़के उठ गयी थीं। चाय भी जल्दी पी ली थी।"

"आपको कैसे पता?"

"मुझे?... मुझे सब पता रहता है।" चेहरे पर एक विजित-सी मुस्कान, जिसने मुझे क्षुब्ध ही किया। मेरी गतिविधियों पर इस तरह उनकी जासूसी आँख मुझे अप्रिय लगी।

"चलो कोई बात नहीं।" उन्होंने माफ़ी जैसी दी—"आज रात को लिख लेना।"

मैं कुढ़ गयी। लपककर सीढ़ियाँ चढ़ गयी।

किसी-न-किसी सन्दर्भ से मुझे ठेलने के लिए आण्टी कोई-न-कोई पुल तलाश ही लेती रहीं। सुबह के कामों से अभी निवृत्त भी नहीं हुई थी कि आण्टी हाथ में ट्रे लिये अवतरित हुईं।

"लो, यह कढ़ी चावल हैं। लाने की जल्दी थी कि कहीं तुम खाना बनाने बैठ ही न जाओ। पकाने का समय बच जाएगा। पर देखती हूँ तुम तो अभी से रसोई में घुसी बैठी हो।"

बताया कि शाम को चारों मित्र आएँगे, यहीं खाएँगे तो अप्रसन्न-जैसी दिखी थीं, फिर संयत होते राय दी थी—"मित्रों का आना अच्छा तो लगता है पर समय कितना निकल जाता है। जाड़ों में रात को अच्छा-खासा काम निपट सकता है।"

उत्तर देने की इच्छा मेरे भीतर नहीं जन्मी। शाम को ज्योति, अनिल, असद और सौरभ आये थे। खाना-पीना, गप्प-सड़ाका चला। जब तक वे गये, साढ़े बारह बज चुके थे। सोने की कितनी ही कोशिश की, निष्फल गयी। किसी रसीले उपन्यास की शरण ली। पढ़ते-पढ़ते आँख लग गयी। बत्ती खुली छूट गयी।

सुबह सरसराते आते आलस्य से निपट ही रही थी कि आधी सीढ़ियाँ चढ़कर आवाज को बुलन्द करते आण्टी ने मेरा फोन आने की सूचना दी।

नीचे आण्टी खाने की टेबल पर बच्चों के कई फोटो फैलाये बैठी थीं। मैं सहम गयी थी। अतीत की गुफा में उनका इतना दबंग पाँव।

आण्टी पराजेयता से मुक्त लगीं। सँभली हुई। दो फोटो उन्होंने निकालकर मुझे दूर से दिखाए—"यह दोनों तुम्हारे कमरे के लिए। आज फ्रेम करवाऊँगी।"

"क्यों?" मुँह से निकलता-निकलता बच गया था।

"सामने देखती रहोगी तो नैन-नक्श खींचने में आसानी रहेगी। वैसे भी तुमने कमरा बड़ा सूना और बदरंग-जैसा कर रखा है।"

सिर पीट लेने की इच्छा हुई। यह अज्ञानता है या अधीरता? ऐसी निरीह आकान्ता के समक्ष हथियार डाल देने के सिवा रास्ता क्या है?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

"कितनी तो चीजें मेरे कमरे में सजी हैं।" मैंने उन्हें याद दिलाया। शरद की कविता का चित्रांकन,

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो ऐन मेरी मेज के ऊपर लगा था। दायीं दीवार पर दान्ते का एक अलभ्य प्रिण्ट और टैगोर का बस्ट।

''इसका मतलब है तुम्हें नहीं चाहिए।'' वह बुझ गयीं।

''इसका कोई मतलब नहीं। आप जो चाहें करवा लीजिए।''

फोन पर भैया थे। मद्रास से सब लोगों के लौट आने की सूचना दी थी। व्यस्त न होऊँ तो मिल जाऊँ उन्होंने कहा था।

चाय नाश्ते के लिए फिर आण्टी का आग्रह। मैंने रुकने से इनकार ही किया। 'काम की जल्दी होगी', उन्होंने इनकार का यह अर्थ लगाया।

मैं भीतर से चिढ़ गयी। बैठ गयी। अच्छा है अपनी आँखों देख लें कि समय का मैं क्या उपयोग कर रही हूँ।

चाय का कप। फिर चुटकी से नमक की तरह बुरक दिया गया वही प्रसंग।—''कल सारी रात तुम्हारी बत्ती जलती रही थी। इतना काम नहीं करना चाहिए। सेहत खराब हो जाएगी।''

जानती हूँ सेहत की चिन्ता खोखली है। असल बात सारी रात काम करने और फल का जायजा लेने की है। उनकी आँखों में एक उत्सुक चमक झिलमिलाया करती है जैसे मैं उन्हें लपककर कह ही दूँगी। उनकी फल कामना का उत्तर दे ही दूँगी।

भीतर एक गुम-सा क्षोभ। नसों में तपिश-जैसी रेंगने लगती है। जानबूझ कर ही चलने की तत्परता मैंने अपनी मुद्रा में पैदा की।

उन्होंने एक और वाक्य उछाला था—''यह भी एक संयोग है कि हम इतना पास-पास रहते हैं। एक-दूसरे को इतना देखते-सुनते रहते हैं। आसान नहीं हो जाता लिखना।''

''नहीं, कोई जरूरी नहीं।''

उनके चेहरे पर एक अचम्भा-जैसा लिख गया था, पर आगे और पूछकर उन्होंने किसी संदिग्ध जगह पर पैर रखना ठीक नहीं समझा होगा। शायद अचेत ही ऐसा रहा होगा।

फिर अचेत ही उनकी गति दर्दीले क्षेत्रों की ओर चल निकली थी। मैं उस पगडण्डी को सामने बैठे देख पायी थी। वही लहूलुहान स्मृतियाँ। अनुपस्थिति की दाह। भौंचक्का भविष्य। मुँह पर पल्लू रखकर वह सुबकने लगी थी। देखते-ही-देखते उनका चेहरा पिघलने लगा था। छल-छल दृष्टि। बाल रँगना छोड़ देने से सिर पर कच्चे नारंगी रंग की लटें उलझी हुईं थीं। इतने आवेगों के बीच कटी-पिटी वह मुझे बेहद दयनीय लगी थीं।

मैंने संकल्प की रस्सी से फिर से अपने को कसा।

लिखने बैठती हूँ। उठ जाती हूँ। टहलती हूँ। सो जाती हूँ। पन्ने फाड़ती हूँ। नया पन्ना लगाती हूँ। काले की जगह नीला, नीले की जगह हरा, हरे की जगह लाल पेन उठाती हूँ, कुछ नहीं फलता। कितने ही आरम्भ, मध्य और अन्त सिसकते हुए। डस्टबिन के हवाले होते हुए।

मन में क्यों कोई टेर नहीं। जड़ता है परम, पथरीली। कोई संवेदन नहीं, क्या इसीलिए पीड़ा भी नहीं। ज़हन में सूचना है एक-क्षति की। चेहरा है एक —मृत्यु का, सर्वग्रासी, विकराल। आगे जाकर एक लम्बा रेगिस्तान आ जाता है—किसी दूसरे की नहीं अपनी [illegible] छोरहीन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शून्यता का कहीं मैं भी हिस्सा तो नहीं—निस्सम्बन्ध, निस्संवेदन, निपूती।

मैं आण्टी से नहीं अपने से जूझ रही थी। आण्टी तो मेरे कर्म पर लगाया एक प्रश्नचिह्न थीं; या फिर आरोप के गड़ासे की धार कि इतनी बड़ी घटना और इतनी असंवेदनशील तुम। कब से लिखती आ रही हो, इतना भी नहीं सधता।

एक अजीब खड़खड़ाता-सा रिश्ता उनसे बन चला था जिसने बीच के लहराते पारावार को सोख लिया था। मैं जितना ही उनसे बचना चाहती थी, वह उतनी ही तरल होकर मेरे चारों ओर के हर सुराख़ में घुस आना चाहती थीं। उनकी देखी-अनदेखी चेष्टाएँ जारी रहतीं। किसी-न-किसी बहाने से पीछा करते रहना। पल-पल का हिसाब रखना। इस बार के उनके प्रश्न ने तो मुझे लगभग बदहवास ही कर दिया था। बोलीं, ''इधर तो तुम कई दिनों से लम्बा-लम्बा बैठी रही हो। वैसे तो मैं समझ गयी हूँ। यह भी जानती हूँ तुम मुझे अभी बताना नहीं चाहती। अब शायद तुम उपन्यास ही लिखना चाह रही हो बच्चों पर...ठीक भी है, हम लोगों-जैसे अभागे तुम्हें और कौन मिलेंगे?''

''देखिए, क्या बन पाता है?'' मेरे कथन का अनिश्चय उन्होंने नहीं देखा। उत्सुक-सी बोलीं—''थोड़ा-बहुत सुनाओ तो सही, क्या लिख रही हो? आगे-पीछे का, हम लोगों के बारे में कुछ पूछा भी नहीं तुमने?''

मन में आया था कह दूँ। सच का उद्घाटन कर दूँ...पर वह सच था क्या?

''ज्योति के घर से आऊँगी तो सुनाऊँगी।'' मैंने उन्हें अपने फैसले की एकाएक सूचना दे दी थी।

वह उखड़ गयीं। ''ज्योति के घर जा रही हो? वहाँ तुम्हारा काम क्या खाक होगा?'' तुम दोनों मिलती हो तो सारी-सारी रात बातें करती रहती हो।''

''करना होगा तो हो जाएगा।'' मैंने उन्हें तसल्ली दी थी। ''सूचना भी दी थी कि दो-एक दिन ज्योति के घर रहकर मैं भैया के घर जाऊँगी। थोड़े दिन रहूँगी। क्या आप अखबारवाले को मना कर देंगी कि तीन सप्ताह तक अखबार न डाले।''

''इतना लम्बा?'' फिर उन्होंने सकारात्मक सिर हिलाया और चलने को तत्पर हुईं। कुछ कहने के लिए ही मैंने उनसे कहा था—'अपना ध्यान रखिएगा।' कहना गलत हो गया था। उनके चेहरे पर दर्द खिंच आया था।

जान रही थी—जाना पलायन है। अपराध-भाव की, आत्म-साक्षात्कार की जकड़ीली कारागार। जो कैद आण्टी की दी हुई थी उससे बचना आसान था। जगह-भर बदल देने से बचा जा सकता था, पर अपने सामने?...वहाँ तो सभी गवाक्ष खुले थे। ...सब-कुछ रोशनी से भरा हुआ स्पष्ट फिर भी कोई आरंभ नहीं। मैं सिर झुकाए खड़ी थी, लाचार। एक माँग की बन्दिनी।

बीस दिन तो जरूर बीते होंगे। भैया के घर आण्टी का फोन आया था कि मैं जो-कुछ भी कर रही होऊँ, छोड़कर वापस चली आऊँ। घर में कुछ जरूरी काम है।

उनके स्वर की उपालम्भविहीन आत्मीयता मुझे भिगो गयी। भीतर से निरापद-सा कर गयी।

काम था—एक स्कूल खोलने की उनकी योजना का छोटा-सा उद्घाटन। बच्चों की बरसी पर अंकल शिलान्यास जैसी कुछ छोटी सी बात कर देना चाहते थे, और अब तो मन्त्री जी से तिथि भी CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant मिल गयी थी—''जानती हो, दोनों चीजों में जोड़ बिठाने में दम ही निकल गया। सब-कुछ कितना

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जल्दी-जल्दी करना पड़ा।'' आण्टी ने खुलासा किया था।

किसी मालदार खाँ साहब की बहुत बड़ी बिकाऊ हवेली को अंकल ने खरीद लिया था और उसमें बच्चों का स्कूल खोल देने का निर्णय लिया था। मैंने देखा, फिलहाल तो बाग-बगीचे बाहर का मैदान, बड़े गोलाकार दालान और आउट हाउस सब-कुछ वैसे-का-वैसा ही खड़ा था। सिर्फ बीच के बड़े हॉल से जुड़े कमरों के बीच की दीवारें तुड़वा दी गयी हैं और उसे खूब बड़े कक्ष में तब्दील कर दिया गया है।

''स्कूल के नक्शे के मुताबिक बाद में यही लायब्रेरी हॉल रहेगा।'' देवेन ने बताया था। देवेन अंकल का छब्बीस वर्षीय भाँजा है।

कैसे ऐसे? इतने चुपचाप। अंकल ने इतना कुछ व्यवस्थित कर लिया। ऐसा कोई संकल्प उनके मन में अरसे से रहा होगा।

क्यों कभी आज तक अंकल पर ध्यान नहीं गया। वह भी तो इन त्रासदियों के इतने ही सन्तप्त हिस्सेदार हैं।

शायद वह अपने को बचा लेने में पूरी तरह माहिर हैं। अचानक मिल जाएँ तो चेहरे पर एक अधखिली-सी मुस्कान जड़ लेते हैं जिसके चलते सामने वाला वहीं-का-वहीं रुक जाता है, पीड़ित प्रदेशों में पैर नहीं रखता। कौन-जाने यह मुस्कान निजी प्रदेशों में प्रवेश की निषेधाज्ञा है या नियति ने जो दिया उसकी खुली अवमानना।

आण्टी से मिलीं तो लगा, भीतर से ओतप्रोत हैं, पिछले प्रसंग को भूली हुई। सँभली-सी। तनाव शांत हुआ था जैसे परीक्षाओं के एकाएक स्थगित हो जाने पर होता है। उनका सामना करने की झिझक विलीन होती लगी थी। दोनों को बीच में कोई दूसरी वस्तु धरी मिल गयी हो जैसे। मुझे देखते ही अंकल उत्फुल्ल हुए। कपड़े बदलने की क्रिया को स्थगित करके, मेरे निकट की कुरसी का हत्था पकड़कर खड़े हो गये थे।

''ठीक लगा?'' उन्होंने बिना किसी भूमिका के पूछा।

''बहुत-बहुत ठीक...बहुत अच्छा।'' मैं अपने कथन को वजनदार बनाने की इच्छा में केवल शब्दों की आवृत्ति करती रह गयी थी।

अंकल ने मेरा कहना नहीं सुना। वह एकाएक किसी दूसरे अन्तरिक्ष में चले गए थे। फिर सोचते से बोले—''इससे अच्छा कुछ और मेरी समझ में नहीं आया। मैं ही क्यों अपनी मुट्ठी में इतना कुछ भरकर जीने के लालच में पड़ा रहूँ? मुक्त क्यों न हो लूँ! क्यों न ले लेने दूँ सबको सब-कुछ।'' अपने कथन के समर्थन में अचेत ही उन्होंने अपनी हथेलियाँ खोल दी थीं।

कुछ कहने की जरूरत है मुझे ऐसा नहीं लगा। वैसे भी अब वह कुरसी का हत्था छोड़कर पीठ के पीछे दोनों हाथ बाँधे टहलने लग गए थे।

''...और एक बात तुम्हें बताना चाहता हूँ—विशेष। इस सारे संकल्प में तुम भी कहीं हो। तुम्हें न देखता होता तो ऐसा कुछ सोच ही न पाता।''

''मैंऽऽ एं?'' मैं आसमान से गिरी थी।

''हाँऽऽ। तुम। तुम मेरे इस घर में रहोगी...देखती-समझती रहोगी। इतनी विद्वान तुम..., शायद मुझे विदुषी कहना चाहिए था,... नहीं?'' एक अकृत्रिम-सी हास्य उनके चेहरे को छू गया, जो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन सब दिनों में चिपकी रहती मुस्कान के नकलीपन से बरी था।

कहना तो चाहती थी—मैं अन्तत: कहाँ रहूँगी वह मुझे भी क्या पता है, पर ऐसा कहना? उनके सपने को घायल करना मैंने नहीं चाहा।

"खाना खाया?" अब उन्होंने अपनी टाई की नॉट ढीली करनी शुरू की।

"नहीं, थोड़ी देर बाद खाऊँगी।" मैंने पर्स से अपनी चाबी निकालने की चेष्टा की। तब तक आण्टी ने लपक कर तीन थालियाँ मेज पर रख दीं। अंकल के साथ बैठकर खाने की आज तक कभी कोई स्थिति नहीं रही। एक अटपटा अकल्पित-जैसा अवसर। विरोध करना चाहती थी पर लगा कुनमुनाना तक गलत हो जाएगा।

खाते-खाते अनायास ही मैं कल के उत्सव के बारे में बात करने लगी।

"उत्सव कैसा?"अंकल की आवाज में तेजी थी। मैं संकुचित हुई। "कल का सारा इन्तजाम तुम देख लेना। देवेन भी साथ रहेगा।" उन्होंने एक सपाट स्वर में कहा। उनका चेहरा छूँछा और निर्भाव था।

अगले दिन। बननेवाले स्कूल के अहाते में हलचल। ईंट-गारे के ढूहों के आगे तान दिया गया एक परदे-जैसा शामियाना। उद्घाटन की औपचारिकता उसी लम्बे कक्ष में होने को है।

अभी-अभी लम्बे कक्ष में तैयारी के सभी सोपानों का निरीक्षण करती आयी हूँ। भीतर से कहीं हिल गयी हूँ। कक्ष की दहलीज पर पैर रखते ही सामने दीवार पर दिखा था एक दृश्य—दो बहुत बड़े तैलचित्र। एक अंकल के पिता का है, एक पुत्र का। दो मृतकों के। बीच में दो फुट का अन्तराल छोड़कर दोनों चित्रों को एक समान्तर ऊँचाई पर टाँग दिया गया है। चित्र इतने सजीव कि बोल पड़ेंगे। जिन्दगी के मर्म को सँजोये बैठी पुतलियाँ गोलकों से उठकर आएँगी और देखनेवाले का कलेजा छेद देंगी। उनमें संचित है एक तीखी प्रहारक मुखरता।

ऐसी अपूर्व कलाकृतियों को देखकर खुश होना चाहिए था, विमूढ़ हो गयी। डर गयी। ऐसी जीवनहीन सजीवता। झूठ का सच से भी ज्यादा विश्वसनीय उद्घाटन।

एक अबूझ-सी कातरता मेरे भीतर लड़खड़ाने लगती है।—"क्या अंकल ने इन्हें देखा है?" मैं देवेन से पूछती हूँ।

"नहीं, अभी नहीं। अभी-अभी तो अनपैक करवा के टंगवाये हैं...। हैं न लाजवाब?" देवेन एक विजित भाव से उत्तर देता है "जानती हो, आर्टिस्ट तो इन्हें छोड़ना ही नहीं चाहता था। आखिर तक उसे कोई-न-कोई दोष नजर आता रहता है और इधर अब उद्घाटन की तिथि...बड़ी मुश्किल से मंत्री जी से तारीख तय हो पायी है।"

"पर मंत्री क्यों?" "मंत्री क्यों नहीं। ऐसी ही रस्म है। इसी में शोभा है।" देवेन समाधान दे देता है। मेरा मुँह कड़ुवा जाता है। आएँगे मंत्री। बोलेंगे मंत्री। किसके बारे में? उनके बारे में जिन्हें देखा तक नहीं। उनके पास तो भाव और अभाव नाम की दो स्थूल श्रेणियाँ हैं। जिसकी जरूरत हो उसे उठाकर सिर पर रख लो। झुनझुने-सा बजा दो।

लगा, देवेन उत्सवता में है। स्थिर है। वह मुझे और अधिक सूचनाओं से सम्पृक्त करता है। भाभी और बच्चों के चित्र भी बनवाने दिये हैं। अभी तैयार नहीं और यह देखो पटिया... यह पटिया अंकल ने कब से अपने दफ़्तर में बनवाकर रख छोड़ी थी। इसे भी आज इसी हॉल में टँगवाने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की सोच रहे हैं।

मैं धातु की लम्बी पटिया पर खुदा गीता का यह श्लोक पढ़ती हूँ—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्य शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

"अच्छा आइडिया है न?" देवेन मुझसे पूछता है।

मेरे सामने शब्द तैरते हैं...'न हन्यते हन्यमाने शरीरे' यानी शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता। किसका? पर शरीर ही तो था जो अपना था, आत्मीय था, सम्बन्धी था। ब्रह्माण्ड में उसकी तात्त्विक स्थिति क्या है यह बात किसी सन्तप्त को कितनी सान्त्वना दे सकती है? नहीं जानती क्या सच है...क्या कुछ भी सच है?...असल में क्या सच है?

तभी आण्टी लपकती-सी अन्दर आयी हैं। आते ही एकाएक थम गयी हैं। चित्रों को देखते ही औचक विस्मय में ठिठक जाने का उनका पहला आवेग। खुले का खुला रह जाता मुख। फिर लौटना, सिमटना, बोल पड़ना—"क्या कमाल है! बनाने वाले ने क्या चीज बनायी है।" फिर एक तृप्ति और प्रशंसा की दीप्ति उनका मुख बुहार गयी। उन्हें विमुक्त कर गयी।

अगले ही क्षण वह किसी अनिवार्यता के हाथों में थीं। मुझसे बोलीं—"सुना, यह कपड़ा पकड़ो। इसमें से तीन फुट परदा तुम्हें सीना है, शिलान्यास की तख्ती का। नाप लेना। थोड़े ही टाँके हैं। यह काम तुम्हें ही करना है। पहला तो तुमने किया नहीं। जरूरी नहीं समझा। तुम्हारी मर्जी है।"

उनका एक गर्म-सा उच्छ्वास मुझे छूता निकल गया। कहना चाहती हूँ कि यह नहीं कि मैंने किया नहीं, पर यह कि मुझसे हुआ नहीं; पर नहीं कहती। बसन्ती रेशम का टुकड़ा उनके हाथ से ले लेती हूँ और सीने बैठ जाती हूँ।

जानती हूँ इस काम में पहले-जैसी लाचारी नहीं होगी। सुई जहाँ छेदेगी वहीं सियेगी। भोंकने और सिलने में एक क्रमगत निश्चयात्मक रिश्ता है। बाकी सब-कुछ क्रमहीन, अनिश्चित है—मृत्यु, घटना, दुर्घटना, रचना।

आण्टी की प्रतिक्रिया मुझे राहत से भर गयी है। घाव अँकुरा चले हैं, मुझे लगा। आण्टी को चित्र, चित्र-जैसे लगे हैं। जिन्दगी की दौड़ से छिटककर दीवारों की स्थिरता के हवाले हो जानेवाले। क्या वह काली सुरंग में से गुजर चुकी हैं? घुल-धुल चुकी है?

और अंकल?

अंकल शायद एक बन्द किताब हैं जिसके पन्ने कभी दूसरों के सामने नहीं खुलते। एक शौर्यभाव उनके चेहरे पर सतत चिपका हुआ। एक कवच-जैसा मढ़ा हुआ। उनका कौन-सा हिस्सा बेध्य है कोई नहीं जानता। क्या सब-कुछ स्वीकार है उन्हें? नियम और क्रम को रौंदती हुई मृत्यु भी?

देवेन से पूछती हूँ तो देवेन होठ तररता है—"मामा तो सदा के ऐसे हैं—बहुत घमण्डी। बड़े खुद्दार। हार नहीं मान सकते। किस्मत भी छेड़कर देखे तो धता बता देंगे। उनकी बहुत ऊँची नाक है। कोई ताज्जुब नहीं कि उन्हें इस बात में भी शर्म महसूस होती हो कि नियति ने उन्हें इस तरह उघाड़ दिया है। ऐसा घाव देकर पिछले जन्म का कुकर्मी होने का ठप्पा मार दिया है। सिमटे रहते हैं।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देवेन के शब्दों में एक घिनौनी-जैसी गंध है, जो मुझे अप्रिय लगती है। मैं उसकी बात को काटती हूँ—''यह तो अच्छा ही है।''

''अच्छा क्या है? इन्सान है तो कहीं तो, कभी तो टूटता है?''

''टूटना दिखाना होता है क्या?''

वह सोच में पड़ जाता है। मैं एक आखिरी जैसी निगाह चारों ओर डालती हूँ। सफाई, टेबल, मेजपोश, फूलदान, पानी के गिलास, अक्षत, चन्दन, फूल,घी,रुई, माचिस, अगरबत्तियाँ।

''कुछ रह तो नहीं गया?'' मैं देवेन से पूछती हूँ।

''दीवट रह गया है, वह मामा लाएँगे और यह रहे हार।'' देवेन ने दो बहुत बड़े उन्नाबी गुलाबों के हार मेज पर रखे—''मैंने मामा से कह दिया है कि हार तो मंत्रीजी के आने से पहले ही पहना देने चाहिए। उस समय कहाँ सीढ़ी रखी जाएगी और तोंदल मंत्रीजी ऊँचाई से गिर गए तो? क्या सीन है?'' देवेन उस कल्पना से हँसने लगता है।

''वैसे भी ऐसा ही करना अच्छा है। मंत्री को क्या लेना-देना? उनके लिए तो सब-कुछ रस्मी है। भाग्य सराहें—चार दिन के राजकाज में शिलालेख पर नाम खुद गया।''

शाम साढ़े पाँच उद्‌घाटन का समय। चार बज चुके हैं। हवेली के बाहर पड़े कूड़े के ढेर हटवाये जा रहे हैं। नालियों के पास चूना बुरका जा रहा है। सीढ़ियों पर गमलों की कतारें सजवा रहे हैं अंकल।

निपटे होंगे तो ही ऊपर आये होंगे। मैंने उन्हें अचानक ही कक्ष के द्वार पर उगते देखा—अवसन्न, अवाक्। पैर दहलीज के आधे बाहर, आधे अन्दर। हाथ में थमा लम्बा चमचमाता दीवट मैंने उन्हें जमीन पर रखते देखा। उनकी आँखें चित्रों पर गड़ी हुई थीं। बाँहें झूल गयी थीं।

पता नहीं कब तक यों ही खड़े रहते। भूले रहते। पीछे से दौड़ते आते किसी बच्चे की टक्कर ने उनकी मुद्रा भंग की। मुक्ति दी, या छीन ली कौन जाने। बच्चों के लिए तो सब-कुछ खिलवाड़ है।

अपने को ठेलते उन्होंने दीवट उठाया और चित्रों को देखते-देखते मंत्रबिद्ध-से चलते चले आये। चाल ऐसी जैसी गंगातट की मीलों लम्बी थुलथुल रेती पर सदियों से अकेले चल रहे हों। आये तो मेज पर दोनों हाथ टिकाकर नीचे की ओर सिर डाले खड़े रहे। कक्ष की हवा में टँगी एक चुप्पी।

''मामा!'' देवेन ने धीरे-से आवाज लगायी।

मैंने पीछे से देवेन की कमीज पकड़कर उसकी उपस्थिति वहाँ से वापस खींच ली। मुझे लगा, यह हस्तक्षेप अवांछनीय है। उस अचानक चुप पड़ गए अन्तराल में कुछ बह रहा है...कहीं-न-कहीं...किन्हीं आत्माओं के बीच।

पानी का टब लाये व्यक्ति ने आवाज से उनकी मुद्रा भंग की।

''देवेन, हार नहीं लाये?'' वह हड़बड़ाये।

''आ चुके हैं मामा।''

देवेन का उत्तर उन्होंने नहीं सुना। बस मुझसे पूछा—''क्या तुम भी ऐसा सोचती हो, हार मुझे ही पहना देने चाहिए, वह भी मंत्रीजी के आने से पहले।... यों देखा जाए तो मंत्रीजी को क्या।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक सूखी झील उनकी आँखों में सिमटकर बैठ गयी थी।

उनकी आवाज की टूटन से देवेन सहम गया। धीरे से बोला—''मंत्रीजी दीप प्रज्वलित कर देंगे...बस हो गया।''

''बस हो गया।'' अंकल के होठों में दोहराये जाते अस्फुट स्वर। फिर फूलों की पंखुड़ियों को चुटकी में दबाना और छोड़ देना। दबाना, छोड़ देना।

अंकल किस निर्वाक् भाषा से पकड़ में आ रहे थे। देवेन ने आगे बढ़कर चित्रों के नीचे अल्युमिनियम की चौकीवाली सीढ़ी खोल दी। उन्होंने नहीं देखा। कुछ भी नहीं देखा। वह देख ही नहीं रहे थे। क्या कर रहे थे, कैसे पता। एक सघन जैसी थिरता। अचानक ही आण्टी उधर आन निकलीं। इस हड़बड़ाये प्रवेश से वह एकाएक सँभल गये। दूर जाती पगडण्डियों पर से लौट आये। खँखारते आण्टी से बोले—

''तुम बाहर का काम पूरा करवाओ। मैं अभी आता हूँ।''

आण्टी ने नहीं माना। उन्हीं की बगल में आकर खड़ी हो गयीं—''क्यों, मैं तुम सबके बीच क्या खड़ी नहीं हो सकती?''

उन्होंने एक घायल निगाह पत्नी पर फेंकी फिर कड़ुवाहट से बोले—''कौन यहाँ लड्डू बँट रहे हैं?''

वह हमेशा की तरह झट आहत हुईं। फिसफिसाने को हो आयीं—''लड्डू क्या बँटेंगे अब। इस जनम में तो कभी नहीं।''

मैं उन्हें कन्धों से घेरकर बाहर ले गयी। काम में उलझाने की व्यस्तता में पड़ गयी। शिलान्यास की पटिया के दोनों ओर कीलें लग चुकी थीं। परदा थमाया। लगाने में उलझाया।

लौटा तो सामने था—एक थमा हुआ चित्र। आंण्टी की इस छोटी-सी अनुपस्थिति में अंकल सीढ़ी पर चढ़कर दोनों चित्रों पर मालाएँ चढ़ा चुके थे और खुद?

अब उनका माथा उन दो चित्रों के बीच के कोरे अन्तराल पर टिका हुआ था। एक बाँह पिता के, दूसरे पुत्र के चित्र पर फैली हुई। पीछे से दिखाई देती उनकी पीठ हिल रही थी, बेतहाशा। बेहिसाब।

दृश्य थमा हुआ था।

क्रॉस! स्मृति ने चट इतिहास के झोले में हाथ डाल दिया। स्तब्ध कर दिया।

कैसे आगे और पीछे की दोनों पीढ़ियों ने उन्हें सलीब पर टाँग दिया है। निर्वासित कर दिया है। दोनों बाँहें काटकर जिन्दगी के दर्दों के बीच उन्हें अकेला करके फेंक दिया है। और तो और पनपने को प्रतिबद्ध तीसरी पीढ़ी भी इस साजिश में शामिल है। एक बंजर भविष्य की सौगात देकर गयी है।

यह तो अंकल का जीवट है कि नियति के आदेशों को वह अपनी सज्जित मुस्कानों से परे ठेल रहे हैं। स्कूल का निर्माण करवा रहे हैं। कितने ही बच्चों के भविष्य को सम्मान से जीने की जमीन दे रहे हैं। खोकर भी दे रहे हैं अंकल। दुःख की आत्यन्तिकता उनके पुरुषार्थ की भट्ठी में पिघलकर सार्वजनिक हो जाती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

बाहर... उठता-सा शोर... बढ़ती आती पद-चापें... आवाजें। एक घबराहट मेरे भीतर सघन होने

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लगती है।

जरा ही देर में परिदृश्य बदल जाएगा। लोग जमा हो जाएँगे—अंकल के परिचित, मित्र, सम्बन्धी, सहकर्मी।

अब डायस पर लगी इन कुर्सियों में से बीच की किसी कुर्सी पर अंकल को स्थापित हो जाना होगा। फिर बयानबाजी शुरू होगी। बीती बातों को दोहराया जाएगा। खुरण्ड खुरचे जाएँगे। फिर स्थिति और नियति की मार से बिलबिलाते किसी एक अभागे की तरह उन्हें आभूषित किया जाएगा। अपनी गठरियों में जितनी दया और करुणा भरकर लाये हैं लोग, उन्हें उन पर ढुरका दिया जाएगा।

कैसे सह पाएँगे अंकल। कितना लज्जित होंगे। उन्होंने अपना आवरण अपनी पत्नी तक के सामने नहीं खोला। उन-जैसे व्यक्ति का इस तरह सरेआम अभिषेक। एक निजी दुःख का इतना वीभत्स समाहार।

मैं उद्विग्न हूँ। यहाँ से भाग जाना चाहती हूँ। उस परिदृश्य में हिस्सा लेना नहीं चाहती। मैं अपने भीतर आरक्षित रखना चाहती हूँ अंकल की आन्तरिकता।

मेरे भीतर झर-झर-झर कुछ झर रहा है। मुखर होना चाहता है। कहना चाहता है इस सारे आडम्बर के विरुद्ध उस अकेले सिपाही की गाथा जो नियति की विराट विमुखता के सम्मुख खड़ा है—अकेला। साबुत। जिन्दगी को अपना सब-कुछ दे देने को उत्सुक। इतना प्रस्तुत।

''मामा...मामा नीचे आइए...लोग आने लगे हैं...नीचे तो आइए न मामा।''

देवेन रुआँसा हुआ जा रहा है। क्या देवेन की ऐसी आवाज से इतना तीव्रतर हो गया अंकल का रोना, सिसकना, हिचकियाँ लेना।

अब ...एकाएक...

एक तेज, गूँजती हुई हूक उन्होंने कन्धे सिकोड़कर अपने शरीर में दबोची। फिर सामने मुँह घुमाये बिना ही नीचे की सीढ़ी पर दायाँ पैर रखा। फिर अगली नीची पर बायाँ। फिर दायाँ...

देवेन जानता है। मैं जानती हूँ कि अंकल नहीं चाहते आँसुओं से तरबतर उनका ऐसा चेहरा कोई देखे। देखना ही हो तो सामने से देखे—जहाँ स्कूल है। समारोह है। निर्माण है।

एम-16 साकेत, नई दिल्ली- 110017

फोन : 011-29563256, 29562232

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नेलकटर

उदय प्रकाश

इस स्तम्भ के अन्तर्गत पाठक महत्त्वपूर्ण कथाकारों की चर्चित कहानियों को समय-समय पर पढ़ सकेंगे। इस बार प्रख्यात कथाकार उदय प्रकाश की प्रसिद्ध कहानी 'नेलकटर' प्रस्तुत है। ...

सावन में घास और वनस्पतियों के हरे रंग में हल्का अँधेरा-सा घुला होता है। हवा भारी होती है और तरल। वर्षा के रवे पर्तों में तैरते हैं।

मैं नौ साल का था।

इसी महीने राखी बँधती है। कजलैयाँ होती हैं। नागपंचमी में गोबर की सात बहनें बनायी जाती हैं। धान की लाई और दूध दोने में भरकर हम साँपों की बाँबियाँ खोजते फिरते हैं।

हरियरी अमावस भी इसी महीने होती है। मैं बाँस की खूब ऊँची गेड़ी बनाकर उस पर चढ़कर दौड़ता था। मेरी ऊँचाई कम से कम बारह फुट की हो जाती होगी।

माँ दक्षिण की ओर के कमरे में रहती थीं। बम्बई के टाटा मेमोरियल अस्पताल से उन्हें ले आया गया था। सिर्फ अनार का रस पीती थीं। वे बोलने के लिए अपने गले में डाक्टरों द्वारा बनायी गयी छेद में उँगली रख लेती थीं। वहाँ एक ट्यूब लगी थी। उसी ट्यूब से वे साँस लेती थीं। बहुत बारीक, ठंडी और कमज़ोर आवाज़ होती थी वह। कुछ-कुछ यंत्रों जैसी आवाज़। जैसे बहुत धीमें वाल्यूम में कोई रेडियो तब बोलता है जब बाहर खूब ज़ोरों की बारिश हो रही हो और बिजलियाँ पैदा हो रही हों, या तब जब सूई किन्हीं बहुत दूर के दो स्टेशनों के बीच कहीं अटक गयी हो।

माँ को बोलने में दर्द बहुत होता होगा। इसलिए कम ही बोलती थीं। उस यंत्र जैसी आवाज़ में हम माँ की पुरानी अपनी आवाज़ खोजने की कोशिश करते। कभी-कभी उस असली और माँ जैसी आवाज़ का कोई एक अंश हमें सुनाई पड़ जाता। तब माँ हमें मिलती, जो हमारी छोटी-सी स्मृति में होती थी।

लेकिन माँ सुनना सब कुछ चाहती थीं। सब कुछ। हम बोलते, लड़ते, चिल्लाते या किसी को पुकारते तो व्याकुलता से वे सुनतीं। हमारे शब्द उन्हें राहत देते होंगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माँ की उँगलियाँ बहुत पतली हो गयी थीं। उनमें रक्त नहीं था। पीली-सी त्वचा। पीली भी नहीं, ज़र्द। और बेहद ठंडी। ऐसा ठंडापन दूसरी, बेजान चीज़ों में होता है। और हाथ उनका इतना हल्का कैसे हो गया था? कहाँ चला गया सारा वजन? वह भार शायद जीवन का होता है, जिसे पृथ्वी अपने चुंबक से अपनी ओर खींचा करती है। जो अब माँ के पास बहुत कम बचा था। उन्हें पृथ्वी खींचना छोड़ रही थी।

उनकी सिर्फ आँखें बची थीं, जिन्हें देखकर मुझे उम्मीद बँधती थी कि माँ कहीं जाएँगी नहीं। मेरे पूरे जीवन भर रही आएँगी। मैं हमेशा के लिए उनकी उपस्थिति चाहता था। चाहे वे चित्र की तरह या मूर्ति की तरह ही रही आयें। और न बोलें।

लेकिन उनके जीवित होने का विश्वास भी रहा आये, जैसा कि चित्रों के साथ नहीं होता।

मैं कभी-कभी बहुत डर जाता था और रोता था। अपने जीवन में अचानक मुझे कोई एक बहुत खाली-बिल्कुल खाली जगह दिख जाती थी। यह बहुत डरावना होता था।

उस दिन माँ ने मुझे बुलाया। बाहर मैदान में घास का रंग गहरा हरा था। बादल बहुत थे और हवा में भार था। वह भींगी हुई थी।

माँ ने अपनी हथेली मेरे सामने फैला दी। दायें हाथ की सबसे छोटी उँगली की बगलवाली उँगली का नाखून एक जगह से उखड़ गया था। उससे उन्हें बेचैनी होती रही होगी।

इस उँगली को सूर्य की उँगली कहते हैं।

मैं समझ गया और नेलकटर लाकर माँ की पलंग के नीचे फर्श पर बैठ गया। नेलकटर में लगी रेती से मुझे उनकी उँगली का नाखून घिसकर बराबर करना था। माँ यही चाहती थीं। वह नेलकटर पिताजी इलाहाबाद से लाये थे, कुंभ के मेले से लौटने पर, दो साल पहले। नेलकटर में नीले काँच का एक सितार बना था।

माँ की उँगलियाँ बहुत पतली हो गयी थीं। उनमें रक्त नहीं था। पीली-सी त्वचा। पतंगी कागज़ जैसी। पीली भी नहीं, ज़र्द। और बेहद ठंडी। ऐसा ठंडापन दूसरी, बेजान चीज़ों में होता है। कुर्सियों, मेज़ों, किवाड़ों या साइकिल के हैंडिल जैसा ठंडापन।

और हाथ उनका इतना हल्का कैसे हो गया था? कहाँ चला गया सारा वजन? वह भार शायद जीवन का होता है, जिसे पृथ्वी अपने चुंबक से अपनी ओर खींचा करती है। जो अब माँ के पास बहुत कम बचा था। उन्हें पृथ्वी खींचना छोड़ रही थी।

मैंने उनकी हथेली थाम रखी थी। और नाखून को रेती से धीरे-धीरे घिस रहा था। मैं उनके नाखूनों को बहुत सुन्दर, ताज़ा और चिकना बना डालना चाहता था।

मैं एक बार हँसा। फिर मुस्कुराता ही रहा। माँ को ढाढ़स बँधाने और उन्हें खुश करने का यह मेरा तरीका था। मैंने देखा, माँ को नाखून का हल्का-हल्का रेती से घिसा जाना बहुत अच्छा लग रहा है। उनके चेहरे पर एक सुख था, जो एक जगह नहीं बल्कि पूरे शरीर की शान्ति में फैला

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुआ था। उन्होंने आँखें मूँद रखी थीं।

एक घंटा लगा। मैंने उनकी एक उँगली ही नहीं, सारी उँगलियों के नाखून खूब अच्छे कर दिये। माँ ने अपनी उँगलियाँ देखीं। यह कितना कमज़ोर और हार का क्षण होता है, जब नाखून जीवन का विश्वास देते हैं। कितने सुन्दर और चिकने नाखून हो गये थे।

माँ ने मेरे बालों को छुआ। वे कुछ बोलना चाहती थीं। लेकिन मैंने रोक दिया।

वे बोलतीं तो पूछतीं कि मैं सिर से क्यों नहीं नहाता? बालों में साबुन क्यों नहीं लगाता? इतनी धूल क्यों है? और कंघी क्यों नहीं कर रखी है?

रात में ठंड थी। बाहर पानी ज़ोरों से गिर रहा था। सावन में रात की बारिश की अपनी एक गम्भीर आवाज़ होती है। कुछ-कुछ उस तरह जैसे दुनिया की सारी हवाएँ किसी बड़े से घड़े के अन्दर घूमने लग गयी हों। हर तरफ से बन्द।

सुबह पाँच बजे आँगन में गाँव की औरतें रो रही थीं। यह रोना नहीं था, विलाप था। पता चला माँ रात में नींद में ही खत्म हो गयीं।

माँ खत्म हो गयीं।

मैंने फिर कभी उनके घिसे हुए नाखून नहीं देखे। मैंने उस रात सोने से पहले अपने तकिये के नीचे वह नेलकटर रख दिया था। उसे मैंने बहुत खोजा। बल्कि आज तक। कई वर्षों बाद भी। लेकिन वह कभी नहीं मिला। वह पता नहीं कहाँ खो गया था।

हो सकता है वह किसी बहुत ही आसान-सी जगह पर रखा हुआ हो और सिर्फ़ मेरे भूल जाने के कारण वह मिल नहीं पा रहा हो। मैं अक्सर उसे खोजने लगता हूँ।

क्योंकि चीज़ें कभी खोती नहीं हैं। वे तो रहती ही हैं। अपने पूरे अस्तित्व और वज़न के साथ। सिर्फ़ हम उनकी वह जगह भूल जाते हैं।

9/2, जज कॉलोनी, न्याय मार्ग
वैशाली (सेक्टर-9), गाजियाबाद-201010

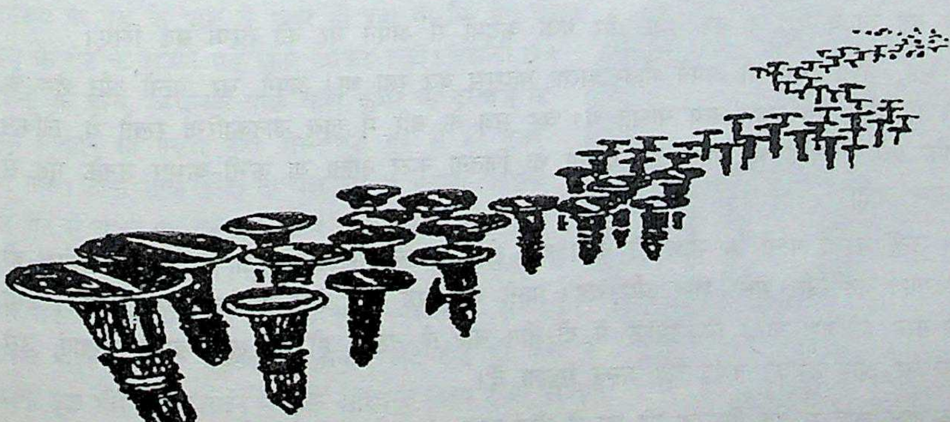

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

डोर

महेश दर्पण

अंधेरा घिरने को था। तेज कदम चलते हुए मुझे यह फिक्र हो आई थी कि जब मैं पहुँचूँ तो शेरू जाने किस तरह पेश आए। उसके बारे में वीरेन बाबू मुझे पहले से ही बता चुके थे। सच कहूं, तो वह खुद उसकी यह हालत नहीं देख पा रहे थे और कुछ दिनों के लिए शहर से कहीं दूर चले जाना चाहते थे। आशंका से घिरे, चार-पांच रोज पहले ही जब वह मुझसे यह आग्रह कर गए थे कि उनके पीछे मैं सुबह-शाम तो शेरू को देख ही लिया करूँ, उस वक्त उनका उदास चेहरा देखते ही बनता था। उन्होंने बमुश्किल अपनी यह बात मेरे सामने रखी थी। बाहर से सहज दिखने की पूरी कोशिश करते हुए भी वह भीतर से काफी बिखरे हुए लग रहे थे।

मेरा घर उनसे तीन-चार गली छोड़कर ही था। पहले वह जब भी आया करते थे, उनसे दुनिया-जहान की बातें होतीं। चाय का मन होता तो चाय, नहीं तो हम लोग कॉफी पीते। बातें शुरू होतीं तो फिर होती ही चली जातीं। परिवार, समाज, देश और दुनिया से लेकर आयुर्वेद, कला, साहित्य और पत्रकारिता तक बहुत कुछ हमारी चर्चा में आ जाता। लेकिन उस रोज वह चाय का अधपिया कप छोड़कर ही चलते बने।

मैं दरवाजे से बाहर विदा करने निकला तो उनकी आवाज कुछ और धीमी हो गई, ''देखिए, बुरा मत मानिएगा। मैंने अमरूद के पेड़ के पास शेरू के लिए गड्ढा खोद दिया है। उसे कुछ हो जाए तो...''

वह यह वाक्य पूरा न कर सके और थके कदमों से अपने घर की तरफ बढ़ लिए।

मैं उन्हें, जाता हुआ भी अपने भीतर भरता महसूस कर रहा था। अपने, घर, पत्नी और शेरू के बारे में प्राय: वह बहुत कम बोलते थे। वह सब के बारे में खूब जानकारियां रखते थे, लेकिन उनके बारे में कोई भी उतना ही जानता था जितना नजर आता या कभी-कभार उनके मुंह से निकल जाता।

मैंने उन्हें बरसों पत्नी के साथ ही देखा था। लेकिन जब यह साथ टूटा तो वह और शेरू ही रह गए। वह और शेरू, शेरू और वह। पत्नी की तरह, वह शेरू को खूब प्यार करते। उसी की तरह कोशिश करते कि सप्ताह में दो-तीन बार तो नहला ही दें। खुद खाएं न खाएं, उसे वक्त पर और उसकी पसंद का जरूर खिला दें।

शेरू शुरू-शुरू में पूंछ हिलाता पूरे घर में दौड़ जाता। एकाएक जगह अपनी प्यारी-पहचानी सूरत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को खोजता, लेकिन जब वह कहीं नजर न आती तो अंगूर की बेल से बंधी वीरेन बाबू की पत्नी की धोती को उछल-उछल कर सूंघता और फिर अपनी पसंदीदा दूध-रोटी खाने लग जाता। वह हैरान रहता कि आखिर वीरेन बाबू की पत्नी गईं तो गईं कहाँ। कभी-कभी तो शेरू के सामने पड़ जाने पर वीरेन बाबू के यहां काम पर आनेवाली हरदेई की शामत आ जाती। फिर एक दिन ऐसे वक्त वीरेन बाबू ने उससे कह दिया कि वह शांता की दी धोती पहनकर न आया करे। शेरू उसकी एक-एक धोती को पहचानता है। उसे देखते ही वह पागल-सा हो जाता है।

शाम को दफ्तर से लौटा तो पत्नी ने फौरन टोका— ''आज दोपहर में वीरेन बाबू बनारस चले गए होंगे। आप चाय पीकर जरा शेरू को देख आइएगा।''

चाय पीने के बाद तुरंत मैंने एक डिब्बे में दूध और रोटी रखी और वीरेन बाबू के घर की तरफ चल पड़ा। उनके घर पहुंचते-पहुंचते अंधेरा और गहरा गया था। गेट का कुंडा उठाकर सीढ़ियां उतरने के साथ-साथ मैं आसपास शेरू को खोजता नजर दौड़ा रहा था।

मेरे सामने अमरूद, अनार, जामुन और मीठी नीम के पेड़ों के अलावा वीरेन बाबू का बेतरतीब बगीचा फैला पड़ा था। दूर-दूर तक फैली सेम की बेल पर से होती हुई मेरी नजर तुलसी के करीब-करीब झाड़-झंखाड़ हो गए पौधों पर टिक गई। बूढ़ी उम्र का बोझ न सह पाने की वजह से वह रास्ते पर ही दुहरे हुए पड़े थे। दरअसल, उम्र की ढलान वीरेन बाबू से वह ताकत छीन चुकी थी जिसके रहते कभी वह इनकी करीने से देख-रेख किया करते थे। चंपा,गुड़हल और गुलाब के जहां-तहां लगे फूल देख कर यह अंदाजा लगा पाना बहुत मुश्किल था कि किस पेड़ की जड़ के साथ उनकी भी जड़ छिपी होगी। सिर्फ लिली का सीधा खड़ा फूल अपने सफेद रंग और खुशबू के चलते अलग ही नजर आ रहा था। अक्सर वीरेन बाबू डंडी समेत लिली के चार-पांच फूल हमारे घर दे जाते थे। पत्नी उन्हें स्टील के जग में पानी भर कर रख देती तो सारा घर खुशबू से भर जाता। ठीक सामने की दीवार पर तार से लटका दस-पंद्रह वाट का एक बल्ब जल जरूर रहा था, लेकिन वह रोशनी नहीं, उसका भ्रम फैला रहा था।

इसी भ्रम के बीच, शेरू को आवाज देता और उसे जबरन खोज लेने की कोशिश करता हुआ मैं आगे बढ़ता चला गया। मन में संशय और घबराहट तो थी ही, डर यह भी था कि इस प्रायः अकेले पड़े इस घर में कई और जीव-जन्तुओं ने भी तो बसेरा कर लिया होगा। कौन जाने, शेरू को खोजने के चक्कर में किसे नाराज कर बैठूं!

अमरूद के पेड़ के पास से गुजर ही रहा था कि ऐन वीरेन बाबू के गेट के सामने एक कार आकर रुकी। उसकी तेज रोशनी के बीच, अचानक पीछे वाले कमरे के दरवाजे के पास निढाल-सा पसरा पड़ा शेरू मुझे दूर से ही नजर आ गया। ठीक-ठाक होता तो पल भर में कूदता-फांदता वह गेट से बाहर आ पहुंचता। अब पता नहीं, उसके शरीर में जान भी है या नहीं। हैंडपंप को पार करता हुआ मैं शेरू तक जा पहुंचा। उसे आवाज लगाई—शेरूऽऽ शेरूऽऽ। जवाब स्वर में भले न आया, लेकिन लेटे-लेटे ही शेरू ने अपनी पूंछ धीरे-से हिलाई। मैं कुछ आश्वस्त जरूर हुआ, लेकिन उसे छेड़ना मुझे ठीक न लगा। हैंडपंप की तरफ लौटा और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसके पास पड़ा स्टील का कटोरा उठा कर धोया। उसमें डाल, दूध-रोटी शेरू के पास ले जाकर रख दी। उसकी आँखों की तरफ देखा तो देखा न गया। वे बेतरह चिपकी हुई थीं। हां, शरीर में हल्की-सी हरकत जरूर नजर आ रही थी।

'शेरूऽऽ शेरूऽऽ शेरूऽऽ ले' कहते हुए मैंने कटोरा उसके और करीब, ठीक मुंह के पास ही सरका दिया। कटोरा सरकने की आवाज का असर था या दूध-रोटी की खुशबू का शेरू ने पूरी कोशिश कर एक बार धीमे से आंखें खोलीं, मेरी तरफ देखा और फिर से मूंद लीं। मैंने गौर किया उसकी जीभ बाईं तरफ को कुछ लटक रही थी। इसके बाद मैंने बहुतेरी कोशिश कर देखी, लेकिन फिर शेरू ने कोई उत्साह न दिखाया। लगा, वह चाह कर भी उठ नहीं पा रहा है। इस झुटपुटे में, इस तरह मुझे बैठा देख कोई भी आने-जाने वाला कुछ भी सोच सकता था। बहुत मन था कि मेरे सामने ही शेरू थोड़ा-बहुत खा लेता तो कितना अच्छा होता, लेकिन जाने फिर क्या हुआ कि मैं अमरूद के पेड़ के करीब से होते हुए गेट के पास जा पहुँचा। चपल शेरू को इस हालत में देखना मेरे लिए बर्दाश्त बाहर हुआ जा रहा था।

घर लौटते हुए मैं सोच रहा था—'कौन जाने, कल सुबह जब मैं इसके पास आऊं तो...पता नहीं इसमें जान शेष रहेगी भी या नहीं' लेकिन फिर दूसरे ही क्षण मुझे लगा 'नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। कुत्ते तो अपना इलाज खुद ही कर लेते हैं...कभी घास-पत्ते खाकर तो कभी भूखे रह कर।'

वीरेन बाबू का यह साथी मुझे जानता तो काफी पहले से था, लेकिन उस दिन से और अच्छी तरह से पहचानने लगा था। चार-पांच बरस पहले की बात होगी। जिस रोज रात के वक्त हम वीरेन बाबू की पत्नी को लेकर अस्पताल गए थे, शेरू हमें गेट तक छोड़ने आया था। उसी रात वीरेन बाबू का लंबा साथ टूट गया था। दूसरे दिन फिर वीरेन बाबू की पत्नी की मिट्टी ही घर आई थी।

अब मैं जब कभी वीरेन बाबू के घर पहुंचता, शेरू मुझसे बेतरह चिपट जाता। वह पिछले पैरों पर खड़ा हो मेरे कंधे तक उठ आता और उछल-उछल कर पूछता— 'बताओ, वीरेन बाबू की पत्नी कहां है?' जब तक मैं उसे पकड़ कर प्यार से पुचकारते हुए उसके गले पर देर तक हाथ न फिरा देता, उसकी उत्तेजना शांत न होती। इसके बाद फिर मैं वीरेन बाबू के छोटे-से ड्राइंग रूम में उनके साथ जा बैठता तो वह वहीं मेरी कुर्सी के पास ही विराजता। चाय पीते वक्त साधिकार बिस्कुट मांगता और न देने पर जिद करता।

कभी-कभी तो वह मुझे सड़क पर से गुजरता हुआ भी देख लेता तो बाउंड्री फांद कर मेरे पास चला आता। उसके आगे वाले पैर हाथों में तब्दील हो जाते और वह पिछले पैरों पर खड़ा हो, पकड़-पकड़कर जाने मुझसे क्या पूछना चाहता! उसके इस लाड़ में मेरी बस ही छूट जाती। लेकिन यह सब तब की बातें हैं जब शेरू एकदम स्वस्थ था।

कुछ दिनों से वीरेन बाबू हमारे यहां आते तो सिवाय शेरू के स्वास्थ्य के और कोई बात ही न होती। वह अक्सर बताते कि डाक्टर को दिखाया है। उसने इंजेक्शन भी दिया है। कभी कहते कि किसी ने इसके खाने में गंधक मिलाकर खिलाने की सलाह दी है। कोई कहता तो वह शेरू को डिटॉल या फिटकरी के पानी से नहलाने लगते...लेकिन कुल मिलाकर वह परेशान होकर यह कह जाते कि कुछ समझ में नहीं आता, पता नहीं, अब यह बचेगा भी या नहीं!

इन दिनों शेरू एकदम एक चौथाई रह गया था। उनसे ही क्या, किसी से भी शेरू की यह हालत न देखी जाती थी। मुझे जाते वक्त के वीरेन बाबू का सशंकित उदास चेहरा याद आ रहा था

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और इधर शेरू को देख मैं सोच रहा था—अकेलापन इंसान ही नहीं, जानवर भी खूब महसूस करता है। क्या इस वक्त वीरेन बाबू को शहर छोड़ कर जाना चाहिए था?

दूसरी सुबह घूमने निकला तो शेरू के लिए दूध-डबल रोटी लेता गया। गेट खोला, शेरू को आवाज लगाई, पीछे ठीक उसी जगह तक नजर दौड़ाई तो मैं हैरान रह गया। शेरू उस जगह था ही नहीं। मेरी घबराहट बढ़ गई। चारों तरफ देखा। शेरू का कहीं अता-पता न था। कटोरे पर नजर गई तो वह खाली दिखाई दिया। यानी रात का खाना तो शेरू ने खा ही लिया है। तभी सूखे पत्तों की सरसराहट के बीच मेरा ध्यान अमरूद के पेड़ की तरफ गया तो पाया कि शेरूजी उसी गड्ढे में बैठे आराम फरमा रहे हैं जो वीरेन बाबू उनके लिए खोद गए थे।

'क्या शेरू भी ये सब समझता होगा।' मैंने सोचा और कटोरा उठा दूध-डबल रोटी उसमें डालकर शेरू के पास ही रख दी।

शेरू ने एक बार मेरी तरफ देखा और फिर गड्ढे से बाहर आने की कोशिश करने लगा। जैसे वह बहुत कुछ कहना चाहता है, लेकिन कह नहीं पा रहा। वह गड्ढे से किसी तरह बाहर आया तो मैंने उसके सिर पर हाथ फिराते हुए हमेशा की तरह कुछ देर उसे प्यार किया।

पता नहीं, यह प्यार की ताकत थी या कुछ और, शेरू धीरे-धीरे उठ खड़ा हुआ। फिर वह दूध की तरफ जीभ निकाल कर पीने की कोशिश करता नजर आया। जैसे-जैसे उसकी हरकतों में दम दिखाई पड़ता, मेरी खुशी में इज़ाफा होता चला जाता। पता नहीं उस दिन कितनी देर तक हम एक-दूसरे को खुश करते रहे!

हर रोज, सुबह और शाम मैं शेरू से मिल आता। मुझे लगता जैसे वह मेरा इंतजार ही कर रहा था। हफ्ते भर यही सिलसिला चलता रहा। सातवें दिन तो वह मुझे गेट के ठीक पास ही बैठा मिल गया। वह पहले के मुकाबले काफी ठीक लग रहा था। मैंने सोचा— अब तो शेरू को देख वीरेन बाबू भी जरूर खुश हो जाएंगे।

रोज की तरह उसे खाना खिला कर मैं लौट आया।

आठवें दिन सुबह-सुबह वीरेन बाबू के दिल्ली लौट आने की खबर उनके फोन से मिली। शाम के वक्त उनके घर पहुंचा तो जनाब खुले में कुर्सी डाल कर बैठे हुए थे। शेरू उनके पैरों के पास गर्वीली मुद्रा में बैठा था। पिछले सात दिनों में एक बार भी मैंने उसके चेहरे पर यह भाव नहीं देखा था। मुझे देखते ही वह उछलने की कोशिश करने लगा। वह कोशिश करता और गिर पड़ता। पिछले पैरों की कमजोरी ने उसे ऐसा न करने दिया। पास जाकर मैंने उसे सहलाया तो वह धीरे-धीरे बैठ गया। बैठ कर भी धीरे-धीरे, लाड़ दिखाता वह अपनी पूंछ काफी देर तक हिलाता रहा।

"प्यार जता रहा है आपसे।" वीरेन बाबू बोले।

मैंने उनकी तरफ देखा तो देखता ही रह गया। खुशी में बहते आंसुओं वाले चेहरे में वह उम्रदराज नहीं, किसी बच्चे से मासूम लग रहे थे।

मुझे उन्होंने अपनी तरफ देखते हुए पाया तो उनके मुंह से निकला, "मैं तो घबरा ही रहा था। बाहर जाकर मेरा मन थोड़े ही लगा। हर वक्त यही लगा रहता था कि जाने शेरू का क्या हाल हुआ होगा। यही वजह थी कि मैंने आपको फोन तक नहीं किया। लेकिन आपने तो... मैं तो समझा था कि चौदह बरस के बाद उसका जीवन अब पूरा होने को है। लेकिन मैं जानता हूं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह मुझे इस तरह अकेला छोड़ कर कहीं नहीं जा सकता...।''

उनकी आवाज रुंध गई थी और वह भावातिरेक में शेरू को सिर से पैर तक सहलाए जा रहे थे। एक अजीबोगरीब डोर से हम तीनों बंधे थे जैसे। वह मुझे देख रहे थे। मैं उन्हें देख रहा था। शेरू हम दोनों को देख रहा था। कोई और होता इस वक्त तो खुशी में आंसू बहाते हम तीनों को देखता।

काफी देर बाद मैंने सुना, मैं कह रहा था वीरेन बाबू से—''अब आप इसे छोड़ कर कहीं मत जाइएगा। आपके पीछे यह बार-बार आपके कमरे के दरवाजे तक जाता था और फिर लौट आता था। इसे जाने क्यों, बार-बार लगता था कि आप शायद कमरे में ही हैं... वह तो इसके शरीर में ज्यादा ताकत नहीं रह गई थी, वरना चिपट-चिपटकर जाने क्या हाल कर देता मेरा!''

मेरी बात सुनकर वीरेन बाबू मुस्कुराए—''अरे-अरे, मैं समझ गया। पता है, वह बार-बार मेरे कमरे के दरवाजे तक क्यों जाता था! उस कमरे में सामने की दीवार पर शांता का पोर्ट्रेट टंगा है। उसे पड़ोस के एक युवा कलाकार ने शांता के निधन के बाद बनाया था। शेरू को जब कभी मौका मिलता है, यह उसे ही देखता रहता है। उस वक्त फिर यह सब कुछ भूल जाता है। शांता भी इसे कम प्यार थोड़े ही करती थी। मेरी सबसे बड़ी फिक्र अब यही है कि हम दोनों में से अगर किसी को कुछ हो-हवा गया तो फिर दूसरे का क्या होगा?''

बात पूरी हुई, न हुई, लेकिन वह अचानक खामोश हो गए। लगा, जैसे अब वह पहले से कहीं अधिक बोल रहे हों।

''अच्छा वीरेन बाबू, अब मैं चलता हूं...।'' कह कर जैसे ही मैं चलने को हुआ, शेरू जाने कैसे समझ गया। मेरी लुंगी का एक सिरा पकड़कर अपनी तरफ खींचने लगा। जैसे चाहता हो कि मैं कुछ देर और बैठूं और मुझे लग रहा था कि इस वक्त वीरेन बाबू को सिर्फ शेरू के साथ छोड़ देना ज्यादा ठीक होगा।

गेट की तरफ बढ़ते हुए मैंने अमरूद के पेड़ से कुछ दूर बने गड्ढे पर नजर दौड़ाई तो पाया कि वह नदारद है। तो क्या वीरेन बाबू ने लौटते ही सबसे पहला काम यही किया।

मैं सोचने लगा कि क्या किया होगा उन्होंने सबसे पहले! सबसे पहले तो वह शेरू से खूब लड़ियाए होंगे। उन्हें देखते ही, यूं भी शेरू ने जमीन-आसमान एक कर दिया होगा। आखिर इतने दिनों बाद मिले थे वे उससे।

''अच्छा शेरू बाय।'' कहते हुए मैंने हाथ हिला कर पीछे की तरफ देखा तो पाया कि वीरेन बाबू ने शेरू को गोद में ले रखा है या फिर कोशिश कर वह खुद उन पर चढ़ गया है। वह उसे बेतरह चूमे जा रहे हैं और शेरू अपना मुंह उनकी गोद में घुसाए चला जा रहा है। इस वक्त शायद उन दोनों को कोई आवाज सुनाई नहीं दे रही होगी।

घर लौटते हुए जाने क्यों इस खयाल ने मुझे घेर लिया कि जो कुछ वीरेन बाबू और शेरू सोच रहे होंगे, क्या वह ठीक-ठीक कोई दूसरा जान भी पाएगा! क्या तेजी से बदलते इस वक्त में विचार की हू-ब-हू तस्वीर भी कभी खींची जा सकेगी। तस्वीर जिसमें वह बारीक, लेकिन मजबूत डोर पकड़ी जा सके जो अकेलेपन में एक बड़ा सहारा बन जाती है।

सी-1/51, सादतपुर, दिल्ली-110094
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant
फोन: 011-22967134

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

संरक्षिता

सुधा

वह पछता रही है।

अपनी भूल के लिए खुद को कोस रही है; उस दिन छत्रछाया का सुख उठाने के लिजलिजे लोभ से नहीं निकल पायी थी, इसलिए। उसी दिन उसने अपना मेरुदण्ड सीधा रखा होता, उसके भीतर बैठी चिपचिपी औरत ने उसे आक्रान्त नहीं किया होता, तो आज की इस तकलीफ से तो नहीं गुजरना पड़ता!

अन्दर से फिर कराह सुनाई पड़ी, वह खड़ी हो गयी। डाक्टर ने भीतर जाने से मना किया है। वह बेचैन होकर राह देखने लगी; कोई बाहर आये तो पूछेगी, क्या हो रहा है? उसके भाई को तो कम-से-कम आकर उसे कुछ बता देना चाहिए था!

एक नर्स दिखाई पड़ी।

'सिस्टर! कैसी है? मेरी बेटी है अन्दर...।'

'वह हाथ वाला केस? आपकी बेटी है? अंदर ऑपरेशन चल रहा है।'

'कितनी देर लगेगी...?'

'नहीं पता; मेरी ड्यूटी ऑपरेशन थियेटर के बाहर है।'-वह उचकती चली गयी।

अब अन्दर की कोई आवाज बाहर नहीं आ रही है। कराह की भी नहीं। बेहोश होगी?--वह थर्रा कर फिर स्टूल पर बैठ गयी। कुछ देर बाद उसका डॉक्टर भाई बाहर आया तो वह प्रश्नवाचक-सी खड़ी हो गयी; मुँह से कुछ पूछा नहीं। भाई ने खुद ही कहा-'हो गया। हड्डी एकदम ठीक से बैठ गयी है।'

'गुड्डी...?'

'ठीक है; एकदम ठीक है।'

'बेहोश है अभी; दो-तीन घंटे बाद होश में आयेगी।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

'कराह रही थी?'

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'एनिस्थीसिआ का पूरा असर होने के पहले मुँह से आवाज निकलती है।'

'आप क्यों आ गये बाहर? वहीं रहो न!'

'ओके! मैं तो तुम्हें बताने आ गया था कि ऑपरेशन हो चुका। और, उसे कुछ देर बाद कमरे में ले आयेंगे।'-भाई ने हँस कर कहा।

'कब लायेंगे?'

'अभी आध घंटे और रखेंगे यही।'-भाई अन्दर चला गया। वह जानता था कि लड़की एकदम ठीक है, लेकिन बहन की उद्विग्नता का भाव उस तक भी संक्रमित हो गया था। वह भाँजी के पास खड़ा होकर उसकी नब्ज देखने लगा। बारह वर्ष की स्वस्थ बच्ची एकदम ठीक थी। वह निश्चिन्त हुआ। फिर बाहर आकर बहन को नर्सिंग होम के उस कमरे में भेजा जो गुड्डी को अलॉट हुआ है। कमरे में मरीज का साफ-सुथरा बेड था, अटेंडेंट के लिए भी सोफा-कम बेड था, सारी सुविधायें थीं। उसे अच्छा लगा। भरोसा हुआ। किस पर?

अपने पर।

तो उस दिन क्या हो गया था उसे? क्यों नहीं विरोध कर सकी थी?-गर्मी की छुट्टियाँ बिताने गयी थी। उन्हें तो छुट्टी मिलती नहीं; थानेदार हैं। बौद्धिकता में प्रोफेसर बीबी के स्तर तक नहीं पहुँचने की खुन्नस अपने तल्ख व्यवहार से निकालते हैं। अकेले रहने के आदी हो गये हैं; परिवार की अनुपस्थिति कम ही महसूस करते हैं। लेकिन उनसे तो नहीं, बीबी से लोग बहुत पूछते हैं। इसके अलावा, बेटी को भी बाप की सुगन्ध मिले, यही सोच कर यह चली जाया करती है। इस बार वहाँ जाने के दो दिन बाद ही यह गिर कर हाथ तोड़ बैठी। रात भर तो बड़ी तकलीफ में कटी, सुबह पुलिस की जीप पर लद कर पास के एक सरकारी अस्पताल में जाना पड़ा। वह देखती रही-हाथ ठीक से सेट नहीं किया जा रहा था; उसने कहने के लिए मुँह खोला। लेकिन पति ने सबके सामने ही डपट दिया।-'डॉक्टर से ज्यादा तुम्हीं जानती हो?'

आज सोचती है कि वहाँ प्लास्टर लड़की के हाथ पर नहीं, उसकी बुद्धि पर चढ़ा था। वह क्यों चुप रह गयी थी? पति की बड़बोली के नीचे अपनी बात को क्यों दब जाने दिया था? क्या उसे आशा थी कि जिस तरह वह सकपकाई रहती है, उसी तरह लड़की के हाथ की हड्डियाँ भी घुड़की से डर कर जगह पर बैठ जायेंगी?

अच्छा हुआ कि पूरी छुट्टियाँ बिताने के लिए वह ठहरी नहीं।

कैसे रुकती? बेटी दर्द से बेचैन रह रही थी।

'इसकी तकलीफ नहीं कम रही है।'

'कम जायेगी। अभी तो एक दिन ही हुआ है, इस सब में समय लगता ही है। बेचैन होने से नहीं चलेगा। बर्दाश्त करना पड़ेगा। - पति ने धीरज खोने से मना किया था। लेकिन वह अकुला कर चली आयी।

यहाँ अपने शहर में, पति के प्रभुत्व से बाहर आकर, उसने अपनी भूल को महसूसा। एक्सरे, ट्रैक्शन और दूसरे आनुषंगिक उपचारों का क्रम चला। डॉक्टर की भी राय उसने ली। सबने मिलकर तय किया कि आपरेशन से हड्डियों को सेट किया जाये। यह दूसरा प्लास्टर तीन महीने रहेगा। लेकिन पूरी तरह ठीक हो जायेगा.. उसे ला रहे हैं, कमरे में उसे लाया जा रहा है। सिर एक ओर लुढ़का हुआ है। उसके कलेजे में हूक-सी उठी। लेकिन उसने अपने को रोका।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE 2025 Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'एकदम ठीक है। जल्दी ही होश में आ जायेगी।'-उसे बेड पर सुलाने के बाद भाई ने उसे दिलासा देते हुये कहा।

वह बेटी के माथे पर हाथ फेरने लगी। अपने झुके कन्धों को सीधा किया और भाई से पूछा-

'दवा वगैरह ?'

'जब तक यहाँ हो, ये लोग खुद ही समय पर सब करेंगे। घर जाने के पहले सब समझ लेना। वैसे कोई परेशानी तो है नहीं। और, बच्चों के फ्रैक्चर बहुत जल्दी ठीक होते हैं।

'आप कल लौट जाओगे ?'

'हाँ, कोई जरूरत तो नहीं है रुकने की ?'

'ठीक है।' वह डूबे स्वर में बोली।

'इसके पापा को खबर नहीं दी थी ? आपरेशन के बारे में!'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'ऐसे ही।'

'बुरा मानेंगे।'

'नहीं ऐसा कुछ नहीं है।'

'फिर भी।'

भाई शायद समझ रहा है कि वह पति को महत्व नहीं देती। समझे।

लड़की ने अपना सिर हिलाया। सब उसकी ओर बढ़े। उसने धीरे-धीरे आँखें खोलीं, माँ को सामने देखा और फिर नींद के झोंके में पड़ गयी।

'अब होश आया ही समझो।'-भाई ने खुश होकर कहा।

नर्स आकर देख गयी। इन्जेक्शन के सामान रख गयी है। वह भी उसके होश में आने की ही प्रतीक्षा कर रही है।

वह बेटी के गाल में अपने होंट सटा कर अपनी बेचैनी समेट रही है। उसके केश के बीच अपनी ऊँगली फिरा रही है। वह उसकी बोली सुनने को व्यग्र है।

'तुम्हारा कॉलेज तो अभी बन्द है ?'-भाई ने पूछा।

'हाँ। अभी पन्द्रह दिन और है खुलने में।'

'तब ठीक है। यह तो हफ्ते भर में ठीक हो जायेगी। घर तो परसों भी जा सकती हो। या चाहो तो एकाध दिन और रह जाना यहाँ।'

'हाँ, रह जाऊँगी यहीं।'

बेटी को कुछ देर बाद होश आ जायेगा।

लेकिन वह पूरी तरह होश में आ चुकी है; उसे लग रहा है उसका शरणार्थी मन अपना सही आवास पहचान चुका है। अब वह उसे किसी बाहरी छत्रछाया के लिए भटकायेगा नहीं।

20, अम्बलत्ताडुअय्यर स्ट्रीट, पांडिचेरी-605001
मोबाइल - 09345451019

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पंजाबी कहानी

जिन्न

हरजीत अटवाल

रूपांतर : पुष्पपाल सिंह

"हमारे दामाद जैसा दामाद नहीं हो सकता। बहुतों से बात की है मैंने। दामाद के घर रहकर लोग नरक भोगते हैं, पर हमारी बात और है जी... हम तो अपने घर की तरह रहते हैं, बेटों से भी बढ़कर है यह दामाद। हमेशा आगे-पीछे रहता है हमारे... उसी की बदौलत हम कुछ ही दिनों में यहाँ सैट हो गए।" गुरुद्वारे में मिले अपने गांव वाले को बताता है अमरीक सिंह। उसकी बात भी सच थी। बेटियों की मार्फत यहां रहने आये माँ-बाप को बहुत से दुःख झेलने पड़ते हैं। कैनेडा में बेटे-बेटियों द्वारा स्पोंसर किए गए परिवारों में एक परिवार अमरीक सिंह का भी था। बहुत बड़ा परिवार तो नहीं था। वह खुद, पत्नी गुरमेज कौर, एक बेटी शरनजीत और बेटा सुखबीर था। बड़ी बेटी कंवलजीत वासुदेव से ब्याही गयी थी। इसी बेटी-दामाद ने स्पोंसर करके उन्हें अपने पास बुला लिया था। बेटों के पास रहने-बसने आये माँ-बापों में और बेटियों के पास रहने आए परिवारों में फर्क होता है। जैसे अपने बेटे और बेगाने बेटे में हुआ करता है। दामाद के घर रहने वालों को उसकी मर्जी के अनुसार रहना पड़ता, उसकी ऊँची-नीची बात सहनी पड़ती, उसकी हाँ में हाँ मिलानी पड़ती। यदि वे अपनी मर्जी चलाते तो बेटी के घर टूटने का भय बना रहता। कितने ही लोग इस पीड़ा को भोग रहे थे। जब तक खुद अपने पैरों पर न खड़े हो जाते, इसी अनुभव से होकर गुज़रना पड़ता उन्हें! अकेला आदमी तो जैसे-तैसे गुज़ारा कर लेता है, परन्तु पूरे परिवार के साथ किसी के घर जा बैठना सरल नहीं होता। अपने साथ काम करते या इधर-उधर मिलते लोगों की कितनी ही कहानियाँ थीं अमरीक सिंह के पास। उन कहानियों की तुलना वह अपने से करता तो उसे अपने दामाद पर गर्व हो उठता। इधर आकर उसे लगा ही नहीं कि वह पराये घर ऐसे आ गया जैसे कोई अपने ही घर में आता है। आते ही, कुछ ही दिनों में सुखबीर को लकड़ी की एक मिल में काम मिल गया। अमरीक सिंह खुद भी किसी पड़ोसी के साथ खेतों में काम पर जाने लग पड़ा। अमरीक सिंह की पत्नी गुरमेज कौर को नज़दीक ही नये खुले भारतीय रेस्टोरेंट में काम मिल गया। शरनजीत भी काम ढूंढ रही थी, पर जब गुरमेज कौर काम पर जाने लगी तो शरनजीत ने काम ढूंढने का ख्याल छोड़ दिया क्योंकि किसी-न-किसी को तो पीछे से घर भी सम्भालना था, फिर कंवलजीत के दो छोटे बच्चे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी तो थे, पहले वे बेबी-सिटर के पास रहते थे, अब शरनजीत उनकी देखभाल करने लगी थी।

"लो जी, जिस दिन मैं ऐरोप्लेन में बैठा, मैं ही जानता हूँ, मेरी क्या हालत थी। कैनेडा का चाव बच्चों को होगा, मुझे तो हार्टअटैक होने को था, यही सोचकर कि इतना कर्ज़ा सर पर उठा लिया, इसका क्या होगा? कैसे उतरेगा? पूरे परिवार की टिकटें और आने की तैयारियां, कहीं थोड़ा खर्च हुआ हमारा! जमीन गिरवी रखकर भी पूरा नहीं पड़ा तो रिश्तेदारों से उधार लेना पड़ा। मैं सोचता था भई, कैनेडा में कौन से पैसे लगे हैं दरख्तों पर, पर देख लो साब, हमें यहाँ आये अभी टैम ही कितना हुआ है... पाई-पाई लौटा दी। चार पैसे अब अपने पास भी है। अब, जब चाहें अपना घर ले लें। सुखबीर तो कई बार उतावला भी हो उठता है, पर वासुदेव कहता है कि शरनजीत की शादी तक हम यहीं उसके पास ही रहें।"

"कोई लड़का देख रखा है क्या?" गाँव वाले साथी ने उत्साह में भरकर पूछा। उसक मन लालच से भर उठता कि शायद, वह अपने किसी रिश्तेदार का ही फायदा करा दे। पर अमरीक सिंह इस पर धैर्यपूर्वक कहता "यह तो जी, अब दामाद पर ही है, जहाँ चाहे रिश्ता करे।"

जब भी अमरीक सिंह को मौका मिलता, वह वासुदेव के गुण गाने बैठ जाता। वासुदेव भी ऐसा ही था। हर वक्त डैडी-डैडी करता रहता। कंवलजीत अपनी माँ को बताती, "मम्मी, ये तो बहुत बुरे स्वभाव वाले आदमी हैं। तुम्हारे बारे में एक बात इन्होंने बहुत साफ कह दी थी कि मैं उन्हें बुला तो लूंगा अपने यहाँ, पर जब तक हमारे यहां रहेंगे, किराया लूंगा और साथ ही घर का खर्च भी। पर यह तो डैडी ने पता नहीं क्या जादू किया है, बस डैडी के ही होकर रह गए हैं।"

वासुदेव ने किराया तो क्या लेना था, घर के खर्च में भी हिस्सा न डालने दिया। घर का ज़्यादातर खर्च उसने खुद ही उठा रखा था, अगर अलग रहने या अलग घर लेने की बात चलती तो वह कह उठता, "डैडी, अभी ऐसे ही रहते रहो। अलग रहोगे तो खर्च बढ़ जायेंगे।"

अमरीक सिंह सोचता, वासुदेव ठीक कहता है। इस वक्त तीन तनख्वाहें आ रही हैं। पैसे जुड़ रहे हैं। ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा। अगर घर लें भी लिया तो किश्तों के चक्कर में ही पड़े रहेंगे। जब तक निभ रही है, तब तक इकट्ठे रहने में कोई हर्ज़ नहीं।

कुछ समय के लिए वासुदेव ने उन्हें बोझ समझा किन्तु फिर वह एकदम बदल गया। उनमें रच-बस गया। सुखबीर के साथ खूब हंसी-ठठ्ठा कर लेता। शरनजीत को छेड़ता और कहता, "हैलो साली जी, आधी घरवाली जी, दहेज में आने वाली जी...।"

शरनजीत के गाल शर्म से लाल हो उठते।

कैनेडा में एक बात जो आम तौर पर प्रचलित थी, वह यह थी कि यहाँ ही वे सब भी जल्दी ही जिंदगी के पुर्जे की भाँति फिट हो गए। अमरीक सिंह खेतों में काम के लिए तड़के ही निकल जाता और देर से लौटता। ऐसे ही सुखबीर था। सुखबीर तो कभी-कभार ओवर-टाइम भी कर लिया करता। गुरमेज कौर दिन चढ़ने पर काम पर जाती। उसका काम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नजदीक ही था। कंवलजीत का काम नौ से पांच तक का था। वासुदेव शिफ्ट-वर्क किया करता था। दो हफ्ते दिन और दो हफ्ते रात। दिन वाली शिफ्ट में वह घर के और लोगों के साथ ही घर से निकलता, पर रात वाली शिफ्ट में वह नौ बजे जाता और सुबह सात बजे लौट आता। शरनजीत की जिम्मेदारी बच्चों को सम्भालने और घर का काम-काज करने की थी। दोनों बच्चे जल्दी ही घुलमिल गए थे। वे माँ को तो जैसे भूल ही गए थे। शरनजीत सुबह जल्दी उठती, नाश्ता तैयार करती। बारी-बारी से सभी को काम पर भेजती रहती। दिन भर इधर-उधर घर के काम निपटाती रहती। शाम को काम से लौटने वालों के लिए खाना बनाती। सबको बिठाकर खिलाती। सबसे पहले उठी शरनजीत सबसे बाद में सोती। जिन दिनों वासुदेव रात की शिफ्ट पर होता, दिन भर वह घर ही रहता। वह बच्चों पर विशेष निगरानी रखती कि वासुदेव की नींद खराब न हो। शाम को अमरीक सिंह काम से लौटता तो पूछता, ''शरनजीत, तूने अपने जीजा को रोटी तो टैम से बना दी थी न?''

गुरमेज कौर का स्वभाव अधिक बोलने का नहीं था। वह चुप ही रहा करती। शरनजीत की ओर गौर से देखती रहती और चिन्ताग्रस्त होकर पति से कहती, ''सुनो जी, हमें शरनजीत का विवाह कर देना चाहिए। लड़की को घर से जल्दी विदा करना ही ठीक है।''

''इतनी जल्दी क्या है? थोड़ा सैट हो लें, चार पैसे और जुड़ जायें, फिर इंडिया जाकर धूमधाम से विवाह करेंगे।''

कुछेक क्षण रुककर वह फिर कहती, ''जी, हम अपना घर ले लें इस तरह रहना ठीक नहीं। अपने घर में होंगे तो अपने बच्चों को थोड़ी आजादी मिलेगी। चलो, थोड़ा कष्ट ही उठा लेंगे।''

''तू तो पागल हो गयी लगती है, ऐसे पैसे आते हुए बुरे लगते हैं? ... मैं सोचता हूँ, गुलजारे के साथ वाला खेत ले लें, घर का क्या है, काम तो चल ही रहा है।''

वह घबराकर चुप हो जाती। कभी-कभी वह शरनजीत को अपने पास बैठा लेती। उसके माथे पर हाथ रखकर उसका तापमान परखती। उसकी नब्ज टटोलती रहती, ''मैं देख रही हूँ कि मेरी लाडो की सेहत तो ठीक है न?... काम भी तो बहुत करना पड़ता है तुझे''

फिर उसकी पीठ थपथपाकर कहती, ''मुझे पता है, मेरी बेटी सयानी है, दुःखों को सहना जानती है। कोई दुःख होगा भी तो बतायेगी नहीं, हँसकर सह जायेगी।''

शरनजीत माँ की ममता को देख उसके गले लग जाती।

वीक-ऐंड आता तो घर में चहल-पहल हो जाती। कई बार इकट्ठा घूमने भी चले जाते। सुखबीर ने अपने कई दोस्त बना लिए थे, वह उनके पास चला जाता। अमरीक सिंह और वासुदेव आपस में जाम टकराते। नशे में आकर अमरीक सिंह दामाद की तारीफों के पुल बाँधने लग जाता, ''बच्चे, तूने मेरी सारी तमन्नाएँ पूरी कर दीं।''

''डैडी, मैं तो आपका बच्चा हूँ। मेरा फर्ज था, मैंने कर दिया।''

एक शाम ये दोनों इसी तरह बैठकर पी रहे थे। सुखबीर घर पर नहीं था। कंवलजीत बेडरूम में बच्चों को सुला रही थी। शरनजीत रसोई में काम कर रही थी। गुरमेज कौर पास खड़ी छोटी-मोटी मदद कर रही थी। एकाएक लाउंज में वासुदेव किसी बात पर हंसा। ऊँचे स्वर में हँसने की उसकी आदत थी। शरनजीत ने माँ से कहा, ''मम्मी देखो, जीजा जी की हंसी। जैसे कोई जिन्न हंस रहा हो हा हा हा... बोल, मेरे आका और क्या सेवा करूं।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by JKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शरनजीत ने किसी फिल्मी जिन्न की भाँति हंसकर नकल उतारी।

माँ उसके मुख पर हाथ रखने के लिए आगे बढ़ते हुए बोली, ''न मेरी बेटी, जिन्न का नाम नहीं लेते, दुबारा ऐसा न कहना''

माँ को जरूरत से ज़्यादा गंभीर देखकर शरनजीत बोली, ''मम्मी, जिन्न के नाम से तुम ऐसे घबरा गयी जैसे सचमुच ही जिन्न दिखाई दे गया हो।''

गुरमेज कौर कुछ न बोली। शरनजीत ने पूछा, ''तुम्हें क्या हो गया था?...कोई बात याद आ गयी?''

''हाँ, बेटे।''

''बताओ फिर, क्या याद आ गया था?''

गुरमेज कौर टालमटोल करने लगी, पर शरनजीत ने पीछा नहीं छोड़ा। गुरमेज कौर बताने लगी, ''मुझे जिन्न के नाम से डर लगता है, मैंने जिन्न देख रखा है।''

''अच्छा मम्मी! पहले तो तुमने कभी नहीं बताया। बता न, कैसा होता है जिन्न?''

''जिन्न दिखाई नहीं देता, सिर्फ़ महसूस किया जाता है।''

एक पल रुककर उसने फिर कहा, ''पाकिस्तान बनने के समय हमें अपना भरा-पूरा घर छोड़कर इंडिया आना पड़ा, खाली हाथ और कर्जे में डूबे। जिस मकान में हमें शरण मिली, वह था तो खूबसूरत, पर शीघ्र ही मालूम हुआ कि उस घर में कोई गड़बड़ थी। मेरे बापू ने सयाने से पता लगवाया तो मालूम हुआ कि उस घर में जिन्न का वास था। कहते थे, अगर जिन्न को खुश कर लिया जाए तो घर में पौ-बारह हो जायेगी और अगर जिन्न नाराज हो गया तो घर से बेघर भी हो सकते हैं।''

''फिर मम्मी?''

''मेरे बाप ने व्यापार शुरू किया। हम देखते ही देखते मालामाल हो गये।''

''पर जिन्न को खुश कैसे किया?''

''जिन्न घर की जवान औरत मांगता था। मुझ पर उसकी छाया रहने लगी।''

''फिर क्या हुआ?''

''मेरे बापू खुश थे कि खाली हाथ आये थे और अब कहाँ से कहाँ पहुँच गये थे। पर मेरी माँ से मेरी हालत देखी नहीं जाती थी। उसमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह स्वयं कुछ कर सके। उसने मेरे भाई को आगे किया और बापू का विरोध कर हम शहर में आ बसे... थोड़ा खाकर गुज़ारा कर लिया।''

एकाएक, शरनजीत माँ से लिपट गयी। उसके हाथ पर सर रखकर बोली, ''मम्मी प्लीज, कुछ करो। सुखबीर से कहो, हम यहाँ से चले जायें। मुझसे भी अब यह छाया बर्दाश्त नहीं होती।''

63, केसर बाग, पटियाला-147001 (पंजाब)

मो. : 09417865651

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रूसी कहानी

ओवरकोट की आफत

विक्तोरिवा ताकारेवा

रूपान्तर : प्रमोद कौंसवाल

बच्चों का युवा डॉक्टर विक्टर पेत्रोविच बहुत एलीट क्लास का तो नहीं था लेकिन शक्ल सूरत से बुद्धिमान दिखाई पड़ता था। वह झुककर बैठा अपने रोगी की जांच कर रहा था। सांस की जांच करने वाले उपकरण से वह रोगी की नंगी पीठ पर पड़ताल कर रहा था और कहे जा रहा था, 'सांस लो, फिर रोको।' इसके बाद वह खामोश हो गया और कोने की ओर देखने लग गया।

मां डॉक्टर के कमरे में ही थी। हाथ में बच्चों के कपड़े लिए हुए। डॉक्टर को चिंता के साथ देखती हुई वह अपनी बेटी के भाग्य का अंदाज लगा रही थी। चेहरे के हावभाव से कुछ भी अंदाज लगाना संभव नहीं लग रहा था। विक्टर पेत्रोविच के चेहरे से ऐसा लग रहा था कि कोई दस मिनट पहले ही उसकी बीवी का फोन आया हो कि आइंदा फिर कभी घर मत आना या फिर कुछ इस तरह कि जैसे उससे अस्पताल ने इस्तीफा देने के लिए कह दिया हो।

जैसा-जैसा डॉक्टर कह रहा था, बच्ची कहना मान रही थी और कभी सांस लेती तो कभी छोड़ती। वह बड़ी खुशी-खुशी अपनी मां को कुछ टेढ़ी नज़रों से देख रही थी। वह अपने स्वभाव में बड़ी ही बनावटी-सी दिख रही थी ऐसा लगता था घटनाओं के केन्द्र में बनी रहना चाहती है।

डॉक्टर ने नर्स से कहा कि वह पर्ची बना दे।

नर्स मेज की दूसरी ओर थी और उसने सफेद पोशाक और अंगोरा खरगोश की बनी टोपी पहन रखी थी। कुछ इस अंदाज में बैठी हुई थी जैसे वह ड्यूटी पर नहीं है और यों ही अस्पताल में चली आई है। पास से गुज़र कर वह आ गई।

'तुम्हारा नाम क्या है', नर्स ने पूछा।

'मेरा नाम लारिसा है', मां का जवाब था।

'आपके नाम के क्या माने है?' नर्स ने नखरे के साथ पूछा।

'माशा प्रोखोरोवा', बच्चों ने ही वहां पर बता दिया।

'अब कपड़ा पहन लो', नर्स ने निर्देश दिया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

लारीसा तुरत-फुरत माशा को कपड़े पहनाने लग गई। पहनाते हुए फ्राक ने दिक्कत पैदा की क्योंकि

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसके बटन बालों में उलझ गए। लारीसा को देर हो रही है और माशा थी कि चीखे जा रही थी। विक्टर पेत्रोविच शिष्ट होकर देख रहा था पर उसके अंदर घृणा दिख रही थी।

'अब किसका नम्बर है', नर्स ने कहा।

अगले दो लोग अंदर आए। अपने मासूम पोते के साथ दादी। दोनों सज-धजकर आए थे। खुशी और पूरी उमंग के साथ। ऐसा लगता था जैसे वह मेहमान बनकर कहीं आए हों। यानी इस बात की कोई शक सुबहा न रहे कि उनके आने से वहां खुशी का माहौल न हो। वे निष्फिक्र थे कि उनका तो वहां स्वागत होना ही है।

विक्टर पेत्रोविच निराश सा था और उसने बाहर की तरफ नज़र कर दी और कहा, 'कपड़े उतार दो।'

इस दरमियान लारीसा और माशा ने बालों में उलझे बटनों को सुलझा लिया था।

तीन साल की दाशा कुर्सी पर बैठे इंतजार कर रही थी बड़े ही कर्त्तव्य के साथ। अपने लोगों पर उसकी नज़र गई तो कुर्सी से उतर गई और मां के हाथ में हाथ रख दिया। लारीसा ने एक हाथ से दाशा को थामा और दूसरे में माशा को लिया। दोनों को लेकर वह सीढ़ियां उतर गई। माशा दीवार से सटकर चल रही थी और दाशा जीने के हत्थे के सहारे चल रही थी। सारे रोगाणु उसकी हथेली पर लग रहे थे।

'वहां से हाथ हटा दो', लारीसा ने डांटा।

'क्यों भला...'

'बस यों ही हटा दो क्योंकि इसके अंत में 'यों' ही लगा हुआ है।' लारीसा ने समझाया।

बात में कोई दम तो था नहीं और लारीसा बेटी को जानती थी। उस पर बेकार की बातों का ज़्यादा ही असर होता था और इस बार भी ऐसा ही हुआ। उसने रेलिंग से हाथ हटा दिया और पीछे की तरफ कर लिया।

माशा के साथ लेकिन ऐसा नहीं था। उसे बड़ी बारीकी से समझाना पड़ता था जिसमें कारण, उसके नतीजे और आपसी संबंध अलहदा करके समझाने पड़ते थे।

जब वे ओवरकोट को लेने के लिए कोटघर गए तो पता चला वहां का टोकन खो गया है।

पर्स और जेबों में तलाशी शुरू हुई। किसी को यकीन नहीं हो सकता था कि टोकन खो भी सकता है। फिर एक-एक करके सभी ने टोकन खोजने के लिए पर्स छान मारा। पर टोकन किसी को नहीं मिला।

'गुम हो गया है', हार मान चुकी लारीसा ने टोकनवाली से कहा। वह चोगा पहने थी।

'ठीक से तलाश तो करो', टोकनवाली ने कहा और कहते-कहते भीतर बड़े रौब के साथ चली गई जैसे उसका काम तो खत्म हो गया।

लारीसा ने बेटियों का हाथ पकड़ा। तीनों उल्टे पांव वापस आ गए। वह कतार में थी और जहां-जहां से आई थी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE 2025-Grant

फर्श पर देखती रही। लकड़ी के फट्टों से बना फर्श

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मटमैला और जामनी रंग का था जिसे वह बड़ी बारीकी से देखती जा रही थी।

शौचालय के पास दाशा को चार छेदों वाला एक बड़ा काला-सा बटन दिखा। इसके अलावा विक्टर पेत्रोविच के कमरे में 'चारोदेइका' मिला जो चमकदार था और टाफी से निकला था। उन्होंने ये सब उपहार किस्म की चीज़ें टोकनवाली को दीं लेकिन उस पर इनका कोई असर नहीं पड़ा।

'टोकन नहीं मिला', लारीसा ने कहा। वह बड़ी दयनीय और अपराध-बोध से ग्रस्त दिख रही थी। उसने बच्चों को क्रोध से देखा, उन्हें मजा आ रहा था जैसे कुछ नहीं हुआ है।

टोकनवाली को गुस्सा आ रहा था।

'ऐसे टोकन खोते रहे तो मुझे इनकी भरपाई करनी पड़ेगी।'

लारीसा को एकाएक खुशी महसूस हुई। बोली, 'मैं भर दूंगी, कितने भरने पड़ेंगे।'

'एक रूबल', टोकनवाली की आवाज़ में सरकारी अंदाज था।

लारीसा को याद था कि पॉलिक्लिनिक से निकलते समय वह अपने साथ पैसे नहीं लाई थी। पर उसका ख्याल था कि एक रूबल तो पर्स से निकल ही आएगा। उसने आंखें गड़ाकर पर्स में हाथ डाला, जिसमें कुछ इस तरह की रेजगारी थी— पन्द्रह कोपेक के चार सिक्के, दस के तीन, एक पांच का और एक के पांच-पांच सिक्के।

इसी दरमियान कोटघर के पास एक अधेड़ उम्र की महिला आई जिसने अपनी जुल्फों को रिबन से सजाया हुआ था। उसके बाल रिबन से कुछ इस तरह बंधे थे जैसे सोफे के हत्थे को बांधा गया हो। बालों को महायुद्ध से पहले इस तरह सजाया संवारा जाता था लेकिन वह महिला थी कि उसी दौर के फैशन में थी। उसे तो दादी अम्मा भी नहीं कह सकते थे। लेकिन महिला तो वह थी ही। भौहों को उसने काली पेंसिल से मला हुआ था। और दोनों ही रेखाएं जिनमें एक बनावटी और एक स्वाभाविक थी, अलग-थलग दिशाओं में दिख रही थी। देह की स्वाभाविक भौंहें ऊपरी दिशा में थीं और बनावटी निचली दिशा में। महिला ने लारीसा को गौर से देखा। लारीसा ने पतलून को पेटी से बांधा हुआ था। आंखों तक लटकी घनी लारीसा की जुल्फों को महिला ने बड़े संदेह के साथ देखा। फिर उसकी नज़र बच्चों की ओर गई। वे भी पतलून में थे और उनके भी माथे के बाल उसी अंदाज़ में कटे थे। महिला की आंखों में युवा पीढ़ी और आने वाले समय को लेकर कुछ चिंता दिखाई पड़ी। शायद बुढ़ापे में लियोनार्दो दा विंसी को ऐसा ही लगा होगा जब उसने अपने नजदीकी किसी भी ऐसे शख्स को नहीं देखा जिसे वह अपना शिष्य बना सकता और अपनी कूची उसे दे देता।

विधि के कायदे कानून और जीव विज्ञान के नियम कहते हैं कि लारीसा और उसके बच्चों को इस औरत के कहीं बाद और उसके बदले में जीवन मिलना था। इसीलिए उसे बुरा भी लगा। उसने घृणा से भरे अविश्वास के साथ लारीसा की तरफ देखा और फिर टोकनवाली को। कुछ इस तरह कि जैसे वह अपनी कुछ शंकाएं बताने जा रही हो।

लारीसा ने भी उसे वैसी ही घुमावदार नज़रों से देखा और कहा कि वह बच्चों के लिए रास्ता दे दे। सब कुछ सही और भले मन से हुआ लेकिन पीढ़ियों के द्वंद्व की काली छाया कोटघर से निकल गई।

लारीसा ने कोपेक के सिक्कों का भारी बोझ टोकनवाली की तरफ बढ़ाया। इससे पहले वह एक दूसरे को ठीक से देख पाई थी। टोकनवाली को लगा कि असामान्य हाथों से पैसा लेना ठीक नहीं है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

'मुझे तुझसे पैसे नहीं लेने', टोकनवाली ने कड़े अंदाज में कहा।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

असमंजस में पड़ी लारीसा ने कहा, 'क्यों?' उसका आगे बढ़ा हाथ पास ही टकराया।

'इनका मैं क्या करूंगी, मुझे तो टोकन चाहिए, पैसे नहीं।'

इस बीच वह महिला ओवरकोट पहनकर निकल गई। लेकिन टोकनवाली को अपना फैसला बदलना मुश्किल लगता महसूस हो रहा था।

'तो ये कोपेक किसे देकर जाऊँ?' लारीसा ने टोकनवाली से पूछा।

'बड़ी दीदी को दे दीजिए...'

लारीसा ने अपनी उंगलियां बंद कीं और उस छोर की ओर चली गई जहां गलियारे से होकर जाया जा सकता है। बच्चे उसके पीछे-पीछे चले। चेखव के परजीवियों की तरह दूरियां बनाए हुए।

एक बड़े सफेद दरवाज़े पर नेमप्लेट लगी थी और लिखा था— 'बड़ी दीदी।'

वह सफेद रंग का चोगा और इसी रंग की टोपी में थी। कुछ नानबाई सी दिखती।

'माफ कीजिएगा, कोटघर का हमारा टोकन गुम गया है।'

'फिर क्या करें', बड़ी दीदी दराज़ पर कुछ कर रही थी जहां से उसने अपना ध्यान हटाया।

'ये ले लीजिए', लारीसा ने अपनी बंद मुट्ठी खोली और कोपेक के पीले रंग वाले चमकदार सिक्के दिखाए जिनमें हर तरह का छोटा-बड़ा चलन का हर सिक्का था।

'इनका मैं क्या कर सकती हूं', बड़ी दीदी को समझ में नहीं आया।

'ये कोपेक है',लारीसा ने समझाने की कोशिश की।

'लेकिन इनका मुझसे क्या लेना-देना।'

'टोकनवाली ने आपके पास जमा करने को कहा है।'

'भला मेरे पास क्यों', बड़ी दीदी ने अचरज के साथ ये बात कही। कम तनख्वाह पाने वाले की बिना वजह की औपचारिकता उसमें दिख रही थी।

'तो किसे दूँ?'

'जहां खोया था, वहीं जाकर दे सकती हो।'

बड़ी दीदी फिर दराज़ पर कुछ ढूंढ़ने लगी जिसे उसकी ज़रूरत थी।

'गलती हो गई है', लारीसा गुस्से में बड़बड़ाती हुई कमरे से बाहर निकली और दरवाज़ा भिड़ा दिया।

'मुझे भूख लगी है', दाशा ने लाचारी से कहा।

'मुझे प्यास लगी है', माशा ने कहा।

'किसके पास था टोकन?' लारीसा को खीझ हुई।

'इसके पास था', माशा ने दाशा की तरफ इशारा करते हुए कहा।

'नहीं, मेरे पास कहां था', माशा ने सफाई दी।

'अज़ीबोगरीब बच्चे हैं...।' लारीसा इस कड़े निष्कर्ष पर पहुंची, 'बेहोशी में रहते हो फूहड़ों, मैं तुम्हें बोर्डिंग में भेज दूंगी।'

दाशा और माशा ने सुना तो उनकी आत्मा उदास हो गई।

'मेरे पीछे-पीछे आने की ज़रूरत नहीं है।' लारीसा ने बच्चों को निर्देश दिया, 'जहां पर खड़े हो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वहीं पर खड़े रहो।'

लारीसा तेज कदमों के साथ कोटघर की तरफ चली गई।

कोटघर में लंबी लाइन लग गई थी और टोकन वाली अपने काम में पूरी तरह से व्यस्त हो गई।

'बड़ी दीदी ने पैसे नहीं लिए', लारीसा उचककर बोली।

टोकनवाली खामोश रही। वह पेट के सहारे ओवरकोट का गट्ठा लिए जा रही थी।

'आप ले लीजिए तो...।' लारीसा ने छुट्टे कोपेक से भरी मुट्ठी और लोगों की भीड़ को काटकर आगे बढ़ गई। भीड़ में से एक महिला चीखी—

'लाइन तोड़कर बीच में मत घुसो।'

'मैं भी पहले से ही खड़ी थी।' लारीसा ने उसे समझाया।

इसी दरमियान बीच लाइन में से कोई चीखा।

'इनको है कि शर्म नाम की कोई चीज़ नहीं, आंखों में थूक भी दो कहेंगी कि बारिश हो रही है।'

और टोकनवाली थी कि अपना काम खामोशी से किए जा रही थी और ओवरकोट देती जा रही थी। लारीसा को तो वह ऐसे देख रही थी कि जैसे पहले कभी नहीं देखा हो।

लारीसा को वहां से परे धकेल दिया गया।

उसने गलियारे की ओर नज़र डाली, बच्चे वहीं खड़े थे जहां पर उन्हें रुकने के लिए कह गई थी। वहां पर एक पोस्टर था जिसमें शराब पीने के नुकसान के बारे में जानकारियां थीं। माशा रोती दिखी जब दाशा पोस्टर देख रही थी। उसकी एक विरल खासियत थी कि वह एक लम्हें में ही अपने को नए हालात में ढाल सकती थी और इसकी वह किसी को शिकायत भी नहीं करती।

लारीसा ने बच्चों के पास आकर पूछा— रो क्यों रही हो किसलिए, ऐसा क्या हो गया।

माशा ने सिर हिलाया, मुंह आगे को किया और पहले से ज़्यादा रोने लगी। शायद इसलिए कि उसकी पीड़ा को जानने-समझने के लिए वहां कोई तो था।

माशा के रोने का तौर-तरीका बिल्कुल रीटा काकी जैसा था। वह उनके खानदान में दूर की रिश्तेदार थी जिसने जीवन भर शादी नहीं की और वृद्धाश्रम में रही। जब रीटा रोती थी तो उसके ओंठ सिकुड़ जाते थे और पलकें कांपने लग जाती थी मीशा की तरह। यह कहना गलत न होगा कि माशा उनकी तरह रोती थी। यह समझ पाना बड़ा कठिन है कि खानदान में एक-दूसरे पर कई चीज़ें एक दूसरे पर कैसे कॉमन हो जाती हैं...।

'चलो अब चुप हो जाओ', लारीसा ने उसे समझाया और माशा के सामने आकर बैठ गई। माशा ने अपने छोटे लेकिन भारी शरीर को मां के ऊपर रख दिया— उसके गाल पर अपनी गरम सांस छोड़ती हुई। उसने उसके चेहरे को मीठी रुलाई से भर दिया।

'बस हो गया अब रोओ नहीं', माशा का चेहरा गीला हो गया था, लारीसा ने उसे चूमा।

माशा ने सिर हिलाया लेकिन आंसू थे कि निकले जा रहे थे। पर वह पहले की तरह कड़वे नहीं बल्कि अब हल्के-चमकीले थे। पलकों और गालों में लाल आसमानी निशान थे।

पास में दाशा जड़वत खड़ी थी। वह लाल नाक वाले अंकल को देख रही थी जिसका फोटो सही नहीं बना था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

लारीसा ने मन में ही कहा, 'यह तो एकदम प्रोखरवों पर गई हैं। आखिर इस वंश में ही तो

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पैदा हुई है।'

बड़ी दीदी अपने कमरे से निकली।

'थोड़ी एक बात थी जरा...', लारीसा ने अपनी बात कहनी शुरू की लेकिन बड़ी दीदी तो वहां से कुछ इस तरह निकली कि जैसे कोई आर्मी का जनरल नये रंगरूट के सामने से होकर निकल जाता है। फिर वह लौटकर आयी अपना केबिन बंद कर दिया। उसकी पीठ चौड़ी थी और जैसे कह रही हो, 'चले आते हैं... और भी क्या-क्या खो देते होंगे।'

'तो मैं अब किसके पास जाऊँ।' उस पीठ की तरफ देखकर लारीसा ने पूछना चाहा।

'जिस डॉक्टर से बीमारी ठीक करा रही हो, उसके पास जाओ', बड़ी दीदी ने रटे-रटाये वाक्य कहे।

ऐसा लगता था कि उसके पास जो भी इलाज के सवाल को लेकर जाता था वह उसे डॉक्टर के पास भेज देती।

ऐसा लगता था कि सब माएं उसके पास इलाज़ का सवाल लेकर जाती और वह इन सभी को डॉक्टर के पास भेज देती।

'सांस लो... सांस बंद कर दो' का निर्देश देकर डॉक्टर सांस मापक बच्चे की पीठ पर चला रहा था। उसने सांस मापक कानों से निकाला और लारीसा पर नज़र दौड़ाई।

'क्या देख रहे हो', बच्चे की मां ने विक्टर पेत्रोविच की गड़ाई नज़रों की ओर देखा।

'और क्या होना है, वही है।' पेत्रोविच ने सविनय अपनी आंखों की पुतलियों को महिला से अलग किया।

और वह महिला कुछ देर चुप रही। उसकी अवचेतना में मौजूद आशा उसकी सरल बुद्धिमता में अमेल थी जबकि पेत्रोविच का दिमाग सही चल रहा था।

'माना कि ऑपरेशन न किया जाए तो?'महिला की आवाज़ में धीमापन था।

पेत्रोविच ने सहज सरल शब्दों में याद दिलाया।

'इसे लेकर हम बात कर चुके हैं और कोई बात नहीं करनी है, जो कह चुका हूं उसे ही दोहरा सकता हूं।'

लारीसा ने शांति के साथ सुना। वह जड़वत खड़ी रही। लेकिन उसे महसूस हुआ कि यह शांति खालीपन है। जैसे कि अंदर से सब कुछ निकाल लिया हो और उसका महज खोल ही बचा रह गया हो। कमरे में घुटन की शांति थी।

'क्या काम है आपको?' पेत्रोविच ने लारीसा को पूछा।

'कुछ भी तो नहीं...।'

लारीसा बाहर को निकल आई। उसके इर्द-गिर्द कई लोग आ जा रहे थे लेकिन उसका ध्यान अपने में ही था। वह अंगूरों के बीज की तरह कोई दूसरा ही दुःख अपने में समेटे थी। वह अपनी जगह खड़ी रही।

...लाइन अब नहीं थी। टोकनवाली स्टूल पर बैठी थी और कोटघर खाली दिखाई पड़ रहा था। वह बुनाई में व्यस्त थी। बड़ी दीदी उसके सामने कोहनी लगाकर बैठी थी और उसके हाथों की तरफ देख रही थी।

'तो फंदों की संख्या बावन हो गई है, याद रहेगा ना?' टोकनवाली ने सवाल किया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

'इन्हें बावन बार गिनूं क्या?' बड़ी दीदी ने जानना चाहा।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस बार टोकनवाली की बात उसकी समझ में नहीं आई। दोनों एक-दूसरे की तरफ तनाव के साथ देखती रहीं।

'ये बावन फंदे सीधे हैं या उल्टे या फिर सब मिलाकर बावन हैं।' बड़ी दीदी समझने की कोशिश कर रही थी कि इसी बीच लारीसा बच्चों के साथ दिखाई दी। 'ओहो ढोकर चले आते हैं... फीजीयामा।' लारीसा के पल्ले नहीं पड़ा कि फीजीयामा का नाम क्योंकर लिया। शायद उसके बाल और कुछ काली आंखें सुदूर किसी पूरब देश की लग रही थीं।

'मुझे तो भूख लग रही है', दाशा ने मां को याद दिलाया।

'और मुझे भी तो', माशा बोली।

'मैं आप लोगों से हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूं कि अब तो हमारे ओवर कोट दे दे। इतना तो लिहाज कर लो... अब तो हद हो गई।' लारीसा ने धीमे स्वर में कहा और पूरी विनम्रता से कहा।

'आपको रोक कौन रहा है...। टोकन दो और अपने ओवरकोट ले जाओ', बड़ी दीदी ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

उसको लारीसा पर आधिपत्य था और बेशक एक तरह से झूठे अभिमान में वह जी रही थी और जिसे वह छोड़ना भी नहीं चाहती थी।

'आप लोगों को पता ही है कि टोकन नहीं है, क्या हम बिना कुछ पहने ही चले जाएं।'

'हम लोग आपके ओवरकोट का पता कैसे लगाएं ', बड़ी दीदी ने जानना चाहा।

'मैं खुद तलाश कर लूंगी।'

'तुम तो खैर तलाश ही लोगी...।' टोकनवाली बड़बड़ाई। वह जैसे यह मान बैठी थी कि लारीसा टोकनों से महफूज ओवर कोटों पर हाथ साफ कर सकती है।

'आपको मुझ पर यकीन नहीं है क्या?'

'हम किसी पर क्यों यकीन करें किसी पर क्यों गैर-यकीनी', बड़ी दीदी ने तर्कपूर्ण तरीके से जवाब दिया।

हमारे समाज में जब तक चोर हैं, तब तक टोकन भी रहेंगे और ये कोटघर भी। मुमकिन है कि जीवन की उलझनों में सभी का होना ज़रूरी है ताकि लोग बुरे भले का अंतर कर सकें। एक का सम्मान करें और दूसरे का विरोध। दास प्रथा के ज़माने में भी चोर हुआ करते थे और वे भी साधारण लोगों की तरह ही दिखते थे। तब तक, जब तक कि चोर कुछ चुरा न लेते।

'तो अब मैं क्या करूं', लारीसा असमंजस में थी, 'यहां रात तो गुजारनी नहीं है।'

'रात क्यों गुजारनी, उसकी ज़रूरत ही नहीं', बड़ी दीदी ने टोकनवाली से ऊन का गुच्छा लिया और सिलाइयां भी। 'सब मिलाकर फंदे या फिर एक सौ चार?' वह फिर से ऊन वाली बात पर आ गई।

'भला एक सौ चार क्यों? बावन होंगे और इतने ही बुनने हैं।' टोकनवाली ने अपनी छोटी उंगली और अंगूठे से नाप लेकर बताया। 'इसके बाद जब घर गिराने होंगे तो इन्हें मैं पूरा कर लूंगी। खास बात तो सिर की है।'

बड़ी दीदी ने सिलाइयों को ऊन के गोले में चुभो दिया।

'जो ओवरकोट बचे रह जाएंगे, बिना टोकन के दे देना।' यह आदेश देकर बड़ी दीदी ने वहां से प्रस्थान कर लिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'बचे कैसे रह जाएंगे?' लारीसा को समझ में नहीं आया।

'इसे बंद करते-करते सभी लोग अपने ओवरकोट ले जाएंगे। तब हो सकता है तुम्हारे ही कोट बचे रह जाएंगे।'

'इसे बंद कब करेंगे।'

'आठ बजे।'

'इसका मतलब तो यह हुआ कि मुझे आठ बजे तक का इंतज़ार करना पड़ेगा।'

इस पल बड़ी दीदी लारीसा के निकट से होकर गुजरी। लारीसा को घबराहट सी हुई कि वह चली गई तो फिर उसका काम अटक जाएगा। टोकनवाली का ओहदा छोटा था इसलिए वह बड़ी दीदी की बात को टाल नहीं सकती थी और न ही निर्देश टाल सकती थी।

'जरा रुकेंगी', लारीसा ने बड़ी दीदी की बांहों को पकड़ लिया।

ऐसा करते ही बड़ी दीदी कांप उठी। उसने हाथ छुड़ा तो लिया लेकिन लारीसा ने फिर और कसकर पकड़ लिया ताकि जो भी हो जाए हर हाल में वह उसके हाथों से न जाए। वह मन ही मन ज़िन्दगी को दांव पर लगाने की बात कर रही थी। इसके बाद भौतकीय क़िस्म की घटना और प्रयोग हुआ जबकि निकट आए गोलों के बीच में टकराहट होती है।

बादल के गरज उठने के साथ बिजली चमकी और लारीसा को लगा कि वह एक कोने में बने खोखे की ओर उड़े जा रही है। उसके पांव तने हुए थे। और वह फर्श पर फिसलती जाती। तब उसे लगा कि वह तो बड़ी दीदी के शरीर के ऊपर आ गिरी है और फिर नीचे आ गई है। कड़ा लिनोनियम फावड़े जैसा लग रहा था। चोगे की वजह से उसकी आंखों के सामने सफेदी छा गई। पीले रंग के चमकीले सिक्के खनखन करते हुए तमाम कोटघर में बिखर गए।

खोखेवाली अपनी सीट से उठी और बाहर की ओर देखकर कहा— 'पुलिस को बुलाना चाहिए। पंद्रह रोज के लिए अंदर कर देंगे तब पता चलेगा।'

माशा और दाशा भभककर रो पड़ी और भूख प्यास से उनका ये हाल हो गया था कि वे नीली पड़ गई थीं। यहां तक कि टोकनवाली भी डर गई कि कहीं बच्चों को कुछ न हो जाए और कहीं आक्सीजन की कमी से वे मर ही न जाएं। वह तुरन्त ओवरकोटों वाली जगह पर गई और लौटकर दो बल्गारिया के बने सफेद रंग के फरकोट लाई। उसने चमड़े के रंग का बना हुआ ओवरकोट भी काउंटर पर पटक दिया।

माएं बच्चों को लेकर कोटघर आ रही थीं लेकिन मारे खतरों के वहां कदम रखने से खौफ खा रही थीं। सफलताओं की अदला-बदली के बीच बड़ी दीदी आकार में बढ़ी-चढ़ी तो लारीसा अपने स्वभाव में तेज दिख रही थी।

कुछ स्वयंसेवकों ने आपस में गुत्थमगुत्था हो रही महिलाओं को अलग-थलग किया जैसा कि दंगल में होता है दोनों ही खड़ी थीं और लंबी सांसें खींच रही थीं। उनके मुंह से एक भी जुबान नहीं निकल रही थी।

'पूरी लफंगी है', खोखेवाली ने कहा।

उसके समर्थन में एक पर्ची वाली सिस्टर भी बोली— 'भला ये भी क्या बात हुई। यदि हरेक ही स्टाफ वालों को पीटने लगेगा तो हमारा क्या बनेगा...।'

टोकनवाली इसी दौरान माशा और दाशा को फरकोट पहना रही थी। उसने कोट के सारे बटन लगाए, फर की टोपियां पहनाई और ठंड से बचाने के लिए स्कार्फ पहना दिए ताकि बच्चे फिर से अपनी मां के साथ न लौट सकें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लारीसा को स्वयंसेवकों ने छोड़ दिया। चमड़े का बना अपना ओवरकोट लेकर वह दरवाज़े की ओर बढ़ गई। वह चल रही थी और कोट पहन रही थी। उसके दस्ताने और रूमाल नीचे गिर गए थे। किसी ने उठाकर ये चीज़ें उसको दीं।

बच्चे उसके पीछे-पीछे आ गए। एक फर का कोट और दूसरा फर की टोपी ओढ़े हुए।

बाहर बर्फ़ लकदक गिर रही थी। धरती पूरी सफेद हो गई और काफी सजी-धजी भी। आसमान में धुंधलका था और सफेदी भी।

कोई दस साल हो गए होंगे, यहां पर एक गांव होता था। घना बागीचा था और वहां चेरी के पेड़ थे। अब वहां गांव बन गया था पर आसमान और बर्फ़ गांव वाली ही थी।

पटरी पर एक आदमी खड़ा था। वह अपनी टांगों को देखे जा रहा था। लारीसा ने भी उसकी टांगों के नीचे देखा। वहां सेब का एक टुकड़ा था। इस बूढ़े आदमी ने सिर उठाकर कहा— 'सेब खाया तो उसमें कीड़ा निकला। आधे घंटे से मैं उसी को देखे जा रहा हूं। कीड़ा भी कितना अजीबोगरीब होता है।'

लारीसा ने बड़े बेमन से सिर हिलाया और आगे बढ़ गई। एक जगह में वह अचानक रुकी और सोचने लगी एक सभ्य परिवार की युवती जिसने पी-एच.डी. भी की हो, दो बच्चों की मां है। साहित्य और संगीत की समझ रखने वाली यह युवती फसाद करने लगी— बीच में किसी लफंगे की तरह पुलिस के हवाले हो जाती। पुलिस थाने में ले जाती और पूछती—

'तुमने फसाद क्यों किया?'

'मैं अब बोर होने लगी हूं। ऐसी बोरियत।' लारीसा जवाब देती।

जवानी के दिन। प्रोखरव से उसे इश्क था। प्रोखरव बचा तो रह गया था लेकिन प्रेम कहीं नहीं बचा था। सारा कुछ गुज़र गया लेकिन अभी तो बहुत जीना था। इस बूढ़े की तरह सेब के कीड़े को देखने के लिए अभी कम से कम तीस साल और चाहिए थे। तीस साल में एक-एक दिन किसी एक-एक पानी की बूंद की तरह जो समान अंतराल के साथ हमारे माथे पर उभरेंगे। वाकई में जाने के लिए कोई जगह नहीं बची है। अगर कहीं है तो यह बात बेमानी है। फैशन सदा बदलता है और हमें अपने को उसी तरह ढालना होता है। अगर कोई माने भी निकलता है कि जाने की कोई जगह बची है तो तब भी तो बोरियत जस की तस रहती है। अनाथ आश्रम के बच्चों की तरह चंचल चित्त...।

पुलिस वाला जानना चाहता—

'पन्द्रह रोज के लिए अंदर कर दूं तो बोर तो नहीं होगी?'

'क्या फ़र्क़ पड़ता है...।'

'तो ठीक है आदत में शुमार हो जाएगा', पुलिस वाला अपनी बात रखता।

'पुलिस के चक्कर में वह क्यों पड़ेगी भला।'

'पड़ जाओगी कहां जाओगी, बचोगी कहां।'

लारीसा ने डुबकी दे मारी। उसकी भौहों में कंपन हुआ। और उसे लगा उसकी सूरत रीटा काकी जैसी हो गई हैं। बच्चे आहिस्ता-आहिस्ता उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। वह शांत थे लेकिन खीझे हुए थे।

बर्फ़ की वजह से सड़क जम गई थी। बच्चे जहां-तहां फिसल जाते थे। लेकिन गिरते नहीं थे उनके कंधे आपस में भिड़ जाते।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीन बजे पाली समाप्त हुई। बड़ी दीदी बाहर बरामदे में नमूदार हुई।

इसके बाद नवजात बच्चों की बारी थी। पॉलीक्लिनिक का तमाम बरामदा बच्चों और गाड़ियों से पट गया था।

एक और मां बच्चा गाड़ी के साथ वहां आई। उसने बच्चे को निकाला जो वन कोट का परिधान पहने था। बच्चा अपने चेहरे समेत गोल मटोल दिखाई दे रहा था। गाड़ी की गद्दी पर बिछा चादर सूट पेटी में फंस गया था। वह बच्चे के पीछे लबादे की तरह लग रही थी। इसे निकालना तो ज़रूरी था पर हाथ खाली होते तब न। उस महिला ने जितना संभव था ऊपर उठा लिया था। वह बच्चे को सिर के ऊपर किये मुस्करा रही थी। वह आंखें मीचती और बच्चे के चेहरे को घूरती। वह मूर्ख किस्म की औरत खुशी से अंधी हो रही थी। बच्चे को वह हवा में लटकाए हुए थी। उसके हाथ-पैर सहज ही लटक रहे थे। डर या खुशी नाम की कोई चीज़ उसमें दिखाई नहीं पड़ रही थी। मां के हाथों में वह मस्त था और मां बच्चे के प्रेम में खुश थी। उस औरत के जीवन के पहले दिन से ही ऐसा था। वह सोच भी नहीं सकता था कि इसके अलावा भी जीवन होता है।

बड़ी दीदी इस जोड़ी को लगातार निहार रही थी। वह सोचती उसके पास भी ऐसा कोई गोल-मटोल बच्चा होता। इसके अलावा उसकी कोई तमन्ना न होती और तब वह किसी से भी कठोरता से बात न करती। और यह, उसे लारीसा का ध्यान आया, दो-दो होकर भी फसाद करती रहती है।'

अब ठंड नहीं थी। फिर भी शाल के लाल-लाल छेदों से वह देह को भेदती जाती।

पॉलीक्लिनिक के पास वोतिज नाम का सिनेमाहॉल था। लोहे से बना महाबली उस बसी बसाई बस्ती को अपने छिद्रों से देख रहा था।

ए-18-जी, दिल्ली पुलिस अपार्टमेंट, मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्याख्यान

सपनों का गणतंत्र

महाश्वेता देवी

(फ्रैंकफर्ट पुस्तक मेले में इस साल भारत विशेष सम्मानित अतिथि था। भारतीय साहित्य की अपूर्व शख्सियत महाश्वेता देवी ने इस आयोजन का उद्घाटन वक्तव्य देते हुए भारतीय संस्कृति की विलक्षण ओजस्वी व्याख्या की। यह वही वक्तव्य है और अपनी बहुआयामिता और सार्वभौमिकता में संस्कृति-संसार के हर नागरिक के लिए जरूरी है।)

'पुनरावृत्ति और स्मरण दरअसल एक ही चीज हैं, सिर्फ दिशाएँ अलग हैं; याद करना अतीत को दुहराना है, जबकि दुहराव भविष्य में याद किया जाता है।'

—सोरेन कीर्केगार्द, रिपिटेशन

अस्सी से ज्यादा की उम्र में विगत की छायाओं में कदम रखते हुए मैं कई बार आगे निकल आती हूँ। पीछे की सूरज-रोशनी में जाते हुए भी कभी-कभी मैंने खूब हिम्मत की है। कम उम्र में एक युवा, एक माँ के तौर पर मैं प्रायः उस वक्त से आगे निकल जाती थी-अपने बेटे के साथ खेलती हुई, देख और सुन न पाने का अभिनय करती हुई, क्षण भर पहले हुई चीजों को भूल कर स्मृति की खिल्ली उड़ाती हुई- ये सब खेल तब मज़े के लिए थे। अब वे मजाक नहीं रहे हैं। मेरा जीवन आगे निकल आया है और खुद को दुहरा रहा है। मैं खुद को दुहरा रही हूँ- आपकी खातिर वह सब याद करते हुए जो हो चुका है। जो है। जो हो सकता था।

पेड़, जंगल, हरहराती फसलों से लदे खेत और सूरज की रोशनी में चमचम जलधार को देखिए और चकत्तेदार हिरणों को उछलते और वन में ओझल होते देखिए। अपने बच्चों को कसकर पकड़े हुए माँएँ घड़ों में पानी भर रही हैं, और उन घरों को देखिए जो माँओं के बाजार-हाट चले जाने से पीछे छूट गए हैं। सूर्य पृथ्वी को देखने के लिए झुका जा रहा है। किसान अपने खेतों में काम कर रहे हैं। वाह रे वनों का विस्तार और पर्वत शिखरों की हरिताभा!

यदि आप सपने देखना नहीं जानते तो कुछ नहीं होता। सत्ता-प्रतिष्ठान दिमाग की उन सारी कोशिकाओं को एक निर्मम तंत्र के ज़रिये तबाह करने में लगा हुआ है जो सपने पैदा करती हैं। लेकिन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुछ स्वप्न भाग निकलने में सफल हो जाते हैं। मैं उन सपनों के साथ हूँ जो कैदखाने से निकल भागे हैं। स्वप्न देखने का अधिकार मानवता को जीवित रहने की ताकत देता है। अगर आप सपने देखने के अधिकार का अंत करते हैं-जैसा समूचा संसार और प्रत्येक व्यक्ति कर रहा है- तो आप इस दुनिया का ध्वंस करते हैं। पहला मूल अधिकार होना चाहिए सपने देखने का अधिकार। स्वप्न देखने का अधिकार। (...)

नानक के बारे में एक कहानी है- उनके पिता ने उन्हें एक दुकान में बिठा दिया, और सामान बेचने को कहा...दस, ग्यारह, बारह, तेरह... तेरा, तेरा, तेरा...और उन्होंने सारी चीजें यूँ ही बाँट दीं। सब कुछ तुम्हारा है। मेरे लिए हर वस्तु 'तेरा' है...कुछ भी मेरे भीतर को नहीं छूता। भौतिक वस्तुएँ मुझे नहीं प्रभावित करतीं, उनके सिलसिले में मैं एक बाहरी व्यक्ति हूँ। असल गर्मजोशी, वास्तविक समझ और थोड़ी-सी दोस्तियाँ और ऐसी ही कुछ अनोखी चीजें मेरा स्पर्श करती हैं और यूँ ही, मैं, एक ही समय में, भीतर की हूँ और बाहर की भी।

८० के दशक से अपनी जनता के सर्वाधिक वंचित और हाशिया-हिस्से-आदिवासी यानी भूमिहीन देहाती गरीब, जो विस्थापित होकर शहरों में दिहाड़ी मजदूर और फुटपाथवासी हो जाते हैं, के साथ हो रहे रोजाना अन्याय और शोषण के खिलाफ मैं मुखर हो गई हूँ। अखबार-रपटों याचिकाओं, अदालती मुकदमों, प्रतिष्ठान को लिख गए पत्रों, सकर्मक जनांदोलनों में हिस्सेदारी, एक बिल्कुल जनाभिमुख पत्रिका-'बोर्तिका' के संपादन और अंततः अपनी कहानियों के जरिए भारतीय जनता के इस उपेक्षित तबके का क्रूर यथार्थ राष्ट्र के सामने लाने का संकल्प लिया है। मैंने राष्ट्र के मुख्यधारा-इतिहास में उनके विस्मृत और अदृश्य इतिहास को जोड़ने का निश्चय किया है। मैंने बार-बार कहा है कि हमारी स्वतंत्रता झूठी थी। इन वंचित लोगों के लिए कोई स्वतंत्रता नहीं है। ये समाज अब तक अपने बुनियादी अधिकारों से भी जुदा हैं।

ऐसे हालात में किसी की संस्कृति की रक्षा-संरक्षा कैसे हो? हम किस संस्कृति की रक्षा करते हैं? और जब हम 21वीं सदी में भारतीय संस्कृति की बात करते हैं तो इसके मायने क्या होते हैं? कौन सी संस्कृति? कौन सा भारत? बड़ी मुश्किल से हासिल की गई आजादी के साठ साल बाद आज मिनी स्कर्ट और बैकलेस चोली भी वैसे ही भारत है जैसे खादी की साड़ी। एक अधुनातन मर्सिडीज या टोयोटा कार की तरह बैलगाड़ी भी भारत है। यही भारत चिकित्सा, विज्ञान और टेक्नोलॉजी के मुद्दे पर प्रखर प्रतिभा पुरुष और स्त्री पैदा कर रहा है और इसी की अशिक्षा हमें बेधती है। आठ साल के बच्चों से अकल्पनीय करुणाहीन माहौल में भयंकर काम करवाए जाते हैं और उन्हें बाल मजदूर कहा जाता है। यह है भारत। दूसरी ओर आठ साल के बच्चों का एक हिस्सा और है। ये बच्चे वातानुकूलित कक्षाओं में समय बिताते हैं और खाने की छुट्टी होने पर अपने निजी मोबाइल फोनों से मम्मियों से बात करते हैं। यह भी भारत है। 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' भारत है। 'चोली के पीछे क्या है' भी भारत है। मल्टीप्लेक्स और मेगा मॉल भारत हैं। सँपेरे, साधु और महर्षि भी भारत हैं।

भारतीय संस्कृति विविधवर्णी धागों से बना-बुना एक कपड़ा है। अपनी छवियों और शैली की तरह उसकी बुनाई भी अंतहीन है। कहीं गहरी, कहीं हल्की, कहीं उस पर खून के धब्बे हैं, कहीं वह हिमालयी स्रोतों से फूटे सुशीतल जल से नहाई हुई है, कहीं तरबूज के फाँक का लाल है, कहीं बंगाल के सामुद्रीय आकाश का नीला। कहीं कस्तूरी मृग की आँखों का बैंगनी है। कहीं किसी नवविवाहिता की मांग की तरह सिंदूरी। कहीं उस बुनाई में उर्दू के शब्द हैं कहीं बंगाली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐसे हालात में किसी की संस्कृति की रक्षा-संरक्षा कैसे हो? हम किस संस्कृति की रक्षा करते हैं? कौन सा भारत? बड़ी मुश्किल से हासिल की गई आजादी के साठ साल बाद आज मिनी स्कर्ट और बैकलेस चोली भी वैसे ही भारत है जैसे खादी की साड़ी एक अधुनातन मर्सिडीज या टोयोटा कार की तरह बैलगाड़ी भी भारत है। आठ साल के बच्चों से अकल्पनीय करुणाहीन माहौल में भयंकर काम करवाए जाते हैं और उन्हें बाल मजदूर कहा जाता है। यह है भारत। दूसरी ओर आठ साल के बच्चों का एक हिस्सा और है। ये बच्चे वातानुकूलित कक्षाओं में समय बिताते हैं और खाने की छुट्टी होने पर अपने निजी मोबाइल फोनों से मम्मियों से बात करते हैं। यह भी भारत है। 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' भारत है। 'चोली के पीछे क्या है' भी भारत है।

के, कहीं कन्नड़ और कहीं असमिया, और कहीं मराठी के भी शब्द हैं। कहीं-कहीं इस कपड़े की सीवन उघड़ गई है। किसी-किसी जगह पर वो फट गया है। लेकिन अब भी वह मजबूत है। अब भी। वह मजबूत है।

तरीके बदलते हैं और प्रवाहमान रहते हैं एक मौसम से दूसरे मौसम तक बुनावट को बदल डालते हैं। मैं एक शैली में एक भारत देखती हूँ। आप दूसरा देखते हैं। प्रकाश और छाया का खेल इतिहास और आधुनिकता की टकराहट। अंधविश्वास और मिथक, रवीन्द्रसंगीत और रैप, सूफी और शिया और सुन्नी, जातिवाद और कंप्यूटर, पाठ और परिशिष्ट, हँसी और आँसू, सरकारें और विपक्ष रिजर्वेशन और कोटे, संघर्ष और बंधन, हैम्बर्गर और हरि ओम हरि, संस्कृत और एसएमएस, वर्षा की सुगंध और समुद्र का गर्जन। एक बिना धागे की सिलाई। बहुतेरे भिन्न-भिन्न हाथ हैं, जो सिलते रहे, सिल रहे हैं और यूँ ही भारत को सिलते-बुनते रहेंगे। मेरा देश। खंडित, फटेहाल, गर्वोन्मत, खूबसूरत, गर्म, चिपचिपा, ठंडा, रेतिला, चमकीला, मद्धिम, शिक्षित, बर्बर, वहशी, चमचमाता भारत। मेरा देश। और इसकी असंख्य संस्कृतियाँ। स्मरणातीत समय से अब-यानी 21वीं सदी तक। सिन्धु नदी घाटी से ब्लू टूथ हैंडसेट तक। भारत ने यह सब देखा है और सब कुछ को खुद में, खुद की संस्कृतियों में शामिल कर लिया है। भारत में सभी आस्थाओं, सभी भाषाओं, सभी लोगों की जगह है। बावजूद सांप्रदायिक झगड़ों के, बावजूद कट्टरवाद के, ग्रामीण जीवन के पिछड़ेपन के, अविकसित रह जाने की स्मृतियों के-जो अब स्मृति नहीं, हमारा यथार्थ हैं, एड्स की भयंकरता के, सुनामियों के, भूकंपों के, बाढ़ और सूखे के, किसानों की आत्महत्या के, पुलिसिया हिंसा के, उद्योगों द्वारा पैदा किए गए पर्यावरणीय खतरों और उन्हीं द्वारा खेतों को खरीद लिए जाने की परिस्थितियों और इतिहास द्वारा सताए जाने के, भारत अब भी है। उसकी संस्कृति अब भी है और हम सब अब भी हैं। भारत ने जीना सीखा है, आत्मसात करना, प्राचीनतम के साथ आधुनिकतम का सहमेल करना, और 'समय' की शुरूआत की एक धुन गुनगुनाते हुए नई सहस्त्राब्दि के हाथ में हाथ डाल चलना सीखा है। यह सचमुच वही युग है जब 'जूता जापानी' है, 'पतलून इंग्लिस्तानी', 'टोपी रूसी' लेकिन 'दिल' फिर हमेशा हिन्दुस्तानी है और रहेगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जैसे हमने भविष्य का सामना किया और जिस तरह सम्मानजनक अवसर और संभ्रांत श्रोताओं के सामने अपने देश की संस्कृति पर बोलने के लिए खड़ी हूँ, मैं अपने वहाँ के स्वप्न साझा करना चाहूँगी जहाँ मैं भारत को जाता देखना चाहती हूँ। मैंने सपने देखने के बुनियादी अधिकार की बात की। अब मैं उस अधिकार का इस्तेमाल करूँगी।

मेरा स्वप्न एक ऐसे भारत का है जहाँ दिमाग भय से मुक्त होंगे और सिर ऊँचे उठे हुए। जहाँ ज्ञान मुक्त होगा। जहाँ संसार संकीर्णताओं की छोटी-छोटी दीवारों से बँटा नहीं होगा। जहाँ शब्द सत्य की गहराइयों से आएंगे। जहाँ अथक संघर्षशीलता अपनी भुजाएँ संपूर्णता की ओर फैला रही होगी। जहाँ तर्क की पवित्र धारा निष्प्राण आदतों की रेती में जाकर सूख नहीं जा रही होगी।

मैं एक ऐसे भारत का स्वप्न देखती हूँ जिस पर 'पिछड़ा' शब्द कभी न लागू हो। तीसरा विश्व नहीं पहला और एकमात्र विश्व देखना चाहती हूँ। मैं बच्चों को पढ़ा-लिखा देखना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ स्त्रियाँ प्रकाश की ओर कदम बढ़ाएँ। मैं आदमी के लिए न्याय चाहती हूँ। किसानों के लिए ज़िंदगी चाहती हूँ। गरीबों के लिए घर। और सबके लिए आशाएँ चाहती हूँ। 'कर्ज बंद हों' चाहती हूँ। भुखमरी का अंत चाहती हूँ। भूख शब्द का कोई समानार्थी न हो। पर्यावरण को बचाया जाए उससे प्यार किया जाए, मैं चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ जमीन के घाव भर जाएँ, पानी फिर से शुद्ध हो जाए, शेरों को बचाया जाए। मैं आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और अंधविश्वास के बंधनों से मुक्ति चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि सब लोगों को समान चिकित्सा सुविधा मिले। मैं प्रत्येक व्यक्ति के सिर पर एक छत और बिजली और पानी का इंतजाम चाहती हूँ। इस देश की प्रत्येक भाषा में, मैं चाहती हूँ कि और-और पुस्तकें लिखी जाएँ और प्रकाशित हों। शब्द अभिव्यक्त हों। कहानियाँ कही जाँय। लोग पढ़ें। उन्हें पढ़ना सीखने दीजिए। उनकी उँगलियों को हरेक हर्फ़ पर से गुजारिये जब तक अपना नाम वे उचार न लें। उनके संबोधन। तब तक जब तक वे खुद के लिए न लिख लें। मैं जानती हूँ, मैं कर सकती हूँ, मैं करूँगी। आइये हम ज्ञान की ताकत के साथ उपेक्षा से लड़ें, घृणा के खिलाफ तर्क की ताकत से लड़ें, आइये गुलामी के खिलाफ कलम की शक्ति से लड़ें।

मैं चाहती हूँ कि और सतियाँ न हों, और दहेज हत्याएँ न हों, और हत्याएँ ही न हों, शरीरों की और खरीद-फरोख़्त न हो। जिन्दा रहने के लिए माँ-बाप अपने बच्चों को न बेचें। माँएँ अपनी बच्चियों को रात्रि के मरण जल में डूबती न छोड़ें। कुचले और रौंदे हुओं को जागने दीजिए, विस्मृत चेहरों और दबा दी गई आवाजों को अपना हक जताने दीजिए। लहजों को अपनी जगह बनाने दीजिए, नए धागों को शामिल होने दीजिए, ताने-बाने में नूतन रंग शामिल हों। भविष्य को दहकने दीजिए। मुक्ति के स्वर्ग में मेरे भारत को बार-बार आँख खोलने दीजिए। यह एक बड़ा सपना है। मैं जानती हूँ। लेकिन असंभव नहीं है।

जब मैं भारतीय संस्कृति की बात करती हूँ तो मैं इन्ही सब की बात करती हूँ। संस्कृति हमें अपनी जड़ों, अपने इतिहास, अपनी परंपरा और विरासत से जोड़ते हुए भविष्य में ले जाती है। संस्कृति हमें एक छलांग चंद्रमा की जमीन पर ले जाती है, लेकिन सबसे पहले वह हमें खुद को समझने की ओर कुछ कदम बढ़ाती है, एक दूसरे को समझने के मौके देती है। संस्कृति हमें एक बार फिर यह याद दिलाती है कि हम एक संवेदनशील और धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति हैं।

मैंने अपने ही अंदाज में इस संस्कृति की एक तस्वीर आपके सामने रखने की कोशिश की है। लेकिन मैं ऐसी किसी परिभाषा की शुरूआत तक भी कैसे पहुँच सकती हूँ जो पूरे भारत को एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सी स्वीकार्य हो- उस भारत को जो खुद ही में इतना अव्यवस्थित है। इतना सौम्य। इतना लचीला। इतना सख्त। इतना धनी। इतना निर्धन। इतना सरल जिसे समझ लिया जाय। इतना सरल जिसे गलत समझ लिया जाय। जैसा कि मैंने बार-बार कहा, अंततः यहाँ कई भारत हैं। एक साथ कई भारत। बल्कि समांतर।

और यह भी कि यह किसका भारत है? आपका? मेरा? उनका? मेरी मातृभूमि में ये 'उनके' बहुत ज्यादा हैं जिनके पास अपने-अपने संघर्षों के क्रूर जीवन-चित्रों के अलावा कुछ नहीं है। हम सभी के संघर्ष से हासिल आज़ादी के छः दशक बाद भी हमारे बीच वंचित लोग हैं। ये वंचित वही हैं जो हमारे साथ अपनी और हम सबकी आज़ादी के लिए लड़े थे।

मैंने किसी जगह दावा किया था कि मैंने हमेशा सताए हुओं की संस्कृति पर लिखा है। यह कितना बड़ा या टुच्चा, कितना झूठ या सच है। मैं और सोचती हूँ, और लिखती हूँ, फिर-फिर सोचती हूँ और किसी ठोस परिभाषा तक पहुँचना कठिनतर होता जाता है। मैं झुँझला जाती हूँ। लड़खड़ा जाती हूँ। मैं इस यकीन से हमेशा जुड़ी रहती हूँ कि हमारी संस्कृति की तरह असाधारण और प्राचीन किसी संस्कृति का विभिन्न समयों में जीवित और जाग्रत रहने का एक मात्र बुनियादी और सर्वस्वीकार्य तर्क हो सकती है-मानवीयता। एक दूसरे के आदमी होने के अधिकार का संपूर्ण सम्मान से स्वीकार।

तब यही मेरा संघर्ष है। मेरा स्वप्न। मेरे जीवन में और मेरे साहित्य में।

अंग्रेजी से अनुवाद : व्योमेश शुक्ल
सी-27/111, बी-4, जगतगंज, वाराणसी-2

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आमी मिलिटरीर बूढ़ो घोड़ा

नागार्जुन से नीलम सिंह की बातचीत

(वर्ष 1992, मई के प्रथम सप्ताह में बाबा नागार्जुन के कोलकाता प्रवास के दौरान उनसे नीलम सिंह की अनौपचारिक बातचीत यह रेखांकित करती है कि अपने जीवन के अंतिम वर्षों में बाबा साहित्येतर विषयों पर जितनी रुचि ले रहे थे, साहित्यिक चर्चा से उतनी ही विरक्ति उन्हें होने लगी थी। हिंदी कविता को लेकर युवतर पीढ़ी से बाबा का अपनापन और स्नेह इस बातचीत से सामने आता है। अनौपचारिक होने के कारण बातचीत का शिल्प संस्मरणात्मक है।)

मई 1992 में जब बाबा कलकत्ता आये तो मुझे उनसे मिलने का अवसर मिला। कलकत्ता के चौरंगी रोड स्थित 'जनसंसार' के एक छोटे से कमरे में ज़मीन पर ही बिखरी हुयी किताबों के बीच बैठे थे बाबा। उनसे मिलकर लगा घमण्ड तो इन्हें छू भी नहीं पाया है। उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं पाया, अन्यथा अब तक का अनुभव यही दिखाता रहा था कि साहित्य में बघारा गया वैचारिक बड़प्पन कपूर की तरह उड़ जाता है जब उसे व्यवहार में बरतने की बात आती है। परन्तु बाबा तो स्नेह और अपनत्व की जीती-जागती प्रतिमूर्ति थे। मिलने पर बड़े प्यार से पास बुलाया। फिर पूछा—"कहो, तुम्हारी क्या सेवा करूँ? तुम्हारे लायक यहाँ कुछ है भी तो नहीं। पानी पियोगी?" फिर ठठाकर हँस पड़े और उनकी हँसी की अनुगूँज देर तक वातावरण में तैरती रही।

बातचीत के दौरान जब उन्हें पता चला कि मैं भी कविता लिखती हूँ तो बड़े खुश हुये, पूछा कि तुम्हारी रचनाएँ कहाँ-कहाँ छपी हैं? यह सुनकर कि मेरी कविताएँ बहुत सी पत्र-पत्रिकाओं में छपी हैं। वे सन्तुष्ट नज़र आए। उन्होंने जानना चाहा कि काव्य रचना की प्रेरणा मुझे कैसे मिली और यह बताने पर कि मेरे बाबा कविता लिखते थे, पिताजी ने भी काफी लिखा है और भाई नीलकमल भी अच्छा लिखता है, कहा जाये तो मेरी परवरिश ही काव्यमय वातावरण में हुयी है। वह पुनः खिलखिलाकर हँसे— 'अच्छा! यह तो बड़ी घातक स्थिति है।' फिर बोले-'मज़ाक कर रहा था, बुरा मत मानना।' वे देर तक हँसते रहे, बड़े प्रसन्न लगे, कहा-'कुछ कविताएँ सुनाओ। यह बताओ गीली सुनाओगी कि सूखी? नहीं समझी? गीली मतलब गाकर, सूखी माने ऐसे ही।' बाबा बड़ी गम्भीरता से मेरी कविताएँ सुनते रहे और बीच-बीच में प्रशंसा भी करते रहे। मेरी गाँव पर लिखी 'याचना' कविता उन्हें बहुत अच्छी लगी।

'पुरवा, CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

जब मेरे देश जाना

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरे चंदन माटी की गंध
अपनी साँसों में भर लेना...'

इस कविता को सुनते हुए वे गाँव पहुँच गए, गाँव, देहात की बातें करने लगे फिर कहा—'तुम्हारी कविता में जगह-जगह जो भावों का कोमल स्पर्श है वह उसे जीवन्त बनाता है। तुमने शहर में रहकर भी गाँव की मिट्टी की महक को अपने भीतर सँजों कर रखा है, यह बड़ी अच्छी बात है। बहुत कम लोग गाँव को शहर आकर याद रख पाते हैं। बेटा, हम कहीं भी रहें अपनी माटी से नाता नहीं टूटना चाहिए इस बात का ख्याल रखना। तुमने मेरी कविता पढ़ी है 'बहुत दिनों के बाद'? मैंने कहा-हाँ पढ़ी है, बहुत अच्छी कविता है और मुझे याद भी है। बाबा ने प्रसन्न होकर अपनी वह कविता और बाँग्ला की कुछ रचनाएँ भी सुनाईं।

'आमी मिलिटरीर बूढ़ो घोड़ा
आमा के ओरा कोरबे नीलाम...' कविता सुनाते हुए वे थोड़ी देर के लिए भावुक हो गए फिर पूछा 'मेरी कविताएँ कैसी लगीं?' मैंने कहा- बहुत अच्छी! बाबा आपकी कविताएँ मन को छूती हैं।' वे हल्का सा मुस्कुराए।

बाबा नागार्जुन की विशेष कृपा रही मुझ पर। वे इतने प्रसन्न हुए कि कटे हुए तरबूज की फाँक अपने हाथों से मुझे खिलाते रहे। उस समय मुझे उनमें 'निराला जी' की झलक दिखाई दे रही थी। मैंने सुना था वे भी नई पीढ़ी के लोगों पर प्रसन्न होने पर ऐसा ही करते थे। बाबा ने कहा - 'तुम लोग नई पौध हो, भविष्य के शुभ संकेत! जानती हो अपने वंश को इस तरह फलते-फूलते देखकर मन को बहुत संतोष होता है, आँखों को बहुत सुख मिलता है। परंतु बेटा जो भी लिखना वह अनुभूत सत्य हो। अपने अनुभव के दायरे से बाहर कभी मत जाना। पूरी तरह से कल्पित सत्य रचना की आत्मा का क्षरण कर देता है। वही फूल खुशबू देता है जिसकी जड़ें मिट्टी में होती हैं।' यह सुझाव एक विशाल वट वृक्ष का था— अपनी ही छाया में उगे एक नवांकुरित पौधे को। नई पीढ़ी के प्रति इतना लगाव पहली बार किसी वरिष्ठ साहित्यकार में देखने को मिला। साहित्य की विद्यार्थी होने के नाते मुझे बहुत सारे साहित्यकारों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ और होता रहता है, परन्तु बाबा से मिलने का अनुभव सबसे अलग था, लगता था जैसे हम अपने ही घर-परिवार के किसी बड़े बुजुर्ग से बातें कर रहे हों। नागार्जुन ने एक दिन मेरे घर आने की बात कही और आश्वासन दिया।

उस दिन मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब मैंने देखा कि भवानीपुर के हमारे छोटे से घर की दहलीज पर बाबा भाई अशोक के साथ खड़े हैं। लगा बाबा दिल के ही नहीं बात के भी धनी हैं। मैंने तो सोचा था कि वह मुझे बहला रहे हैं या मेरा मन रखने के लिए ऐसा कह रहे हैं। ख़ैर थोड़ी देर में वे सबसे काफी घुलमिल गए। हमने पूछा-बाबा क्या खाएंगे? वे बोले-'जो खिलाओ।' परन्तु मलाई चमचम और कलाकंद देखकर कहा-'यह क्या ले आई? बंगाल का रसगुल्ला या सन्देश ले आती।' वे मिठाइयाँ मंगवाई गईं और उन्होंने बड़े चाव से उन्हें ग्रहण किया। अपनी जेब से मखमल का एक छोटा सा बटुआ निकालकर उसमें से थोड़ी इलायची और लौंग मुझे दिया और कहा-'तुम्हारी ही तरह मेरी एक शिष्या ने दिया था, मैं इसे संभालकर रखता हूँ।'

बातचीत के दौरान मैंने अनुभव किया कि बाबा इन दिनों साहित्य की नीरस गोष्ठियों और परिचर्चाओं से विरक्त से हो गए हैं। घरेलू और आम बातों में उनका मन ज्यादा रमता है। मुझे भाई नीलकमल ने अपनी पत्रिका 'अलीक' के लिए उनका साक्षात्कार लेने को कहा था। उनके मूड को देखते हुए लगा कि यह काम एक टेढ़ी खीर है। मैं उनसे इसके लिए अनुमति माँगती तो तय था कि वे मना कर देते। मैंने सहायता के लिए भाई अशोक की तरफ देखा तो उन्होंने कहा— 'मैं बाबा को तुम्हारे घर ले आया अब वह तुम्हारे हवाले हैं-जो करना है, तुम्हें करना है। अब मेरी बुद्धि की परीक्षा थी। बाबा से प्रश्न ऐसे पूछना था कि उन्हें साक्षात्कार न लगे। साधारण बातचीत का रूख बड़ी मुश्किल से मैंने कविता की तरफ मोड़ा और पूछा—'बाबा हिन्दी कविता के भविष्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को लेकर लोग बड़े चिंतित रहते हैं। आप क्या सोचते हैं? इस विषय में? वे बोले —''मैं कविता के भविष्य को लेकर पूरी तरह आश्वस्त हूँ। मुझे तो चिंता की कोई बात नज़र नहीं आती? कविता किसी की बपौती तो नहीं है। हिन्दी में अच्छी कविताएँ लिखी जा रही हैं। नए लोग काफी अच्छा लिख रहे हैं। पता नहीं अच्छी-भली चीज में लोगों को खतरा कैसे दिखाई देने लगता है। कविता का सम्बन्ध भावना से है जब तक मनुष्य है और उसके अंदर भावनाएँ हैं, कविता सुरक्षित है।''

मैंने कहा— बाबा बदलाव तो सृष्टि का नियम है लेकिन परिवर्तन करने की चेष्टा करने वाले को सहयोग नहीं मिलता विरोध होता है, ऐसा क्यों? उन्होंने कहा- ''देखो, विरोध से कभी हताश नहीं हो चाहिए। यह शुभ लक्षण है। किसी का विरोध हो रहा है मतलब उसमें दम है, उससे दूसरों को डर है। तात्पर्य यह है कि जिसके अंदर ताकत होती है, विरोध उसी का होता है। याद रखना कमजोर का विरोध कोई नहीं करता।''

मेरा यह प्रश्न सुनकर कि कोई रचना रचनाकार से किस तरह के प्रतिबद्धता की अपेक्षा रखती है वे मुस्कुराए। बोले, 'सिर्फ ईमानदारी। लिखना कोई फैशन नहीं है। बहाव में लिखा गया टिकता नहीं। तुम जिस सच को बयान कर रही हो उसे कितने करीब से देखा है तुमने? क्या उसने तुम्हारे मर्म को कहीं से भी छुआ है? झिंझोड़ा है तुम्हें? खलबली मचाई है तुम्हारे भीतर? या दूसरे जो कह रहे हैं वह सुना और लिख दिया? अगर ऐसा है तो तुम अपनी कलम के प्रति ईमानदार नहीं हो? अनुभव की सच्चाई और अपनी कलम पर निष्ठा ही रचनाकार की असली ताकत होती है।'

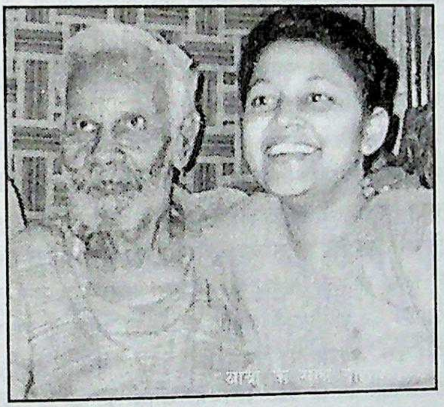

अचानक वातावरण की गंभीरता ने सच का पर्दाफाश कर दिया। बाबा को लगा कुछ देर पहले की सरसता गायब हो गई है। बाबा का मूड उखड़ गया वे बोले 'मैं अब चलूँगा।' बच्चों की तरह जिद्द करने लगे। हमने रोकने की बहुत चेष्टा की पर बाबा का मूड ठीक नहीं हुआ। वे चले गए। मुझे पश्चाताप हो रहा था कि गीली मिट्टी पर चलने वाले पैरों को मैं रेतीली जमीन पर क्यों खींच लाई।

नागार्जुन की कलकत्ता यात्रा के अंतिम दिन मैं उनसे डॉ. चन्द्रा पाण्डे के घर मिली। वहाँ बाबा के साथ नवोदित कवियों की एक छोटी सी काव्यगोष्ठी का आयोजन किया गया था। मैं डरते-डरते पहुँची, सोचा बाबा नाराज होंगे परन्तु वह बड़े अच्छे मूड में थे, कहा— 'आओ, आज सूखी कविता से काम नहीं चलेगा। कोई गीत सुनाओ।' बाबा का आदेश था, कैसे टालती। मैंने दुष्यंत की गज़ल- 'ये जो शहतीर है पलकों पे उठा लो यारों, सुनाई। धुन अच्छी और नई थी। भाई नीलकमल ने अपने गोरखपुर विश्वविद्यालय पर बनाये गये वृत्तचित्र के लिए तैयार करवाई थी। बाबा बड़े मनोयोग से उसे सुनते रहे। गाना समाप्त होने पर बोले— 'अपनी डायरी दो।' उन्होंने लिखा- 'डियर नीलम, तुम्हारी रचनाएँ बार-बार सुनने-पढ़ने के अवसर आते रहेंगे, ऐसा विश्वास है... हम कुछ भी समय तुम्हें नहीं दे पा रहे हैं इसका मलाल कचोटता रहेगा।' नागार्जुन, 3.5.1992 उन्होंने पत्र व्यवहार के लिए मुझे अपना पता भी दिया। तब हम नहीं जानते थे कि यह बाबा की कलकत्ते की अंतिम यात्रा है।

एफ/203, [illegible] इंक्लेव, 59के सी घोष रोड, कोलकाता-50
फोन : 9433181168

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संवाद

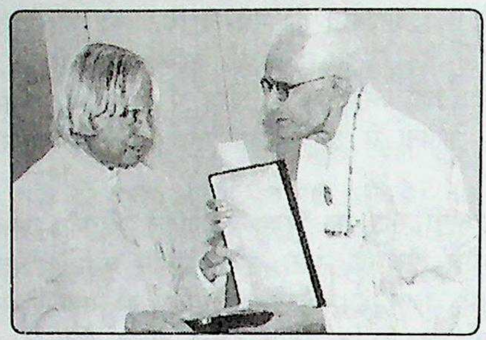

अमृतलाल वेगड़

एक काल्पनिक साक्षात्कार

जबलपुर निवासी अमृलाल वेगड़ ने नर्मदा के सौंदर्य को अपनी कला का आधार बनाया है। उनके लेखन और चित्रों में नर्मदा और नर्मदा घाटी में बसे ग्रामीण जीवन का अद्‌भुत सौंदर्य सामने आया है। उन्होंने प्राय: पौने तीन हजार लंबी नर्मदा परिक्रमा की है जिसका वृत्तांत उन्होंने अपनी पुस्तकों ''सौंदर्य की नदी नर्मदा'' और 'अमृतस्य नर्मदा' में दिया है। हिन्दी में शायद ऐसी नदी-गाथा दूसरी नहीं है। ये ही किताबें उन्होंने गुजराती में भी लिखी हैं और दोनों ही पुस्तकों के मराठी अनुवाद आ चुके हैं। वे अपने को नर्मदा का 'सांस्कृतिक संवाददाता' मानते हैं। श्री वेगड़ मूलत: गांधीवादी हैं। वे बेहद सरल और घनघोर जीवट के कलाकार हैं। उनके लेखन और उनकी कला के लिए उन्हें म.प्र.शासन के संस्कृति विभाग का शिखर सम्मान और राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान तथा गुजराती पुस्तक 'सौंदर्यनी नदी नर्मदा' के लिए साहित्य अकादमी (दिल्ली) सम्मान मिल चुके हैं। हाल ही में उन्हें केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा का प्रतिष्ठापूर्ण महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार महामहिम राष्ट्रपति जी द्वारा प्रदान किया गया। इस अवसर पर उनसे हुई लंबी बातचीत के कुछ अंश यहाँ दिए जा रहे हैं। इस साक्षात्कार की विशेषता यह है कि प्रश्न भी वेगड़ जी के हैं और उत्तर भी उन्हीं के हैं।

संपादक

वेगड़जी, मेरे पास आपके बारे में काफी जानकारी है। इसलिए आपके जन्म के बारे में या आपकी शिक्षा-दीक्षा के बारे में नहीं पूछूँगा। आप सीधे-सीधे यह बताएँ कि आपके मन में नर्मदा परिक्रमा करने का विचार कैसे आया? घर की सुख-निंदिया छोड़कर आपने पहाड़ों और जंगलों की खाक क्यों छानी।

इसका जवाब आप संक्षेप में चाहते हैं या थोड़े विस्तार में?

संक्षेप में। आजकल समय किसके पास है?

क्योंकि मेरे भीतर एक पागल रहता है।

इतना संक्षिप्त जवाब? नहीं भाई, थोड़ा विस्तार से कहें।

तब मुझे अपने जन्म के बारे में, अपने परिवार के बारे में और अपनी शिक्षा-दीक्षा के बारे में भी बताना होगा। मेरे पिता गुजरात के एक छोटे-से गाँव से आकर मध्यप्रदेश के जबलपुर में बस गए। मेरा जन्म जबलपुर में हुआ, 1928 में। इस प्रकार जन्म से ही मुझे दो भाषाओं की नागरिकता मिल गई। पिता बड़े प्रकृति-प्रेमी थे, रोज सवेरे मदनमहल की पहाड़ियों में घूमने जाते थे। पक्के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधीवादी थे। प्रकृति-प्रेम मुझे पिता से विरासत में मिला। बचपन से ही मुझे साहित्य और चित्रकला दोनों से लगाव रहा। इसी में कॉलेज की पढ़ाई अधूरी छोड़कर 1948 में शान्तिनिकेतन जा पहुँचा। आचार्य नन्दलाल वसु के चरणों में बैठकर चित्रकला की शिक्षा ली। वहाँ मैं पांच बरस रहा। शान्तिनिकेतन की शिक्षा मेरी कला और मेरे साहित्य दोनों के लिए लाभदायी सिद्ध हुई। सौंदर्य देखने की दृष्टि मुझे वहाँ मिली। देखिए, आपके सामने अथाह सौंदर्य है, लेकिन अगर आपके पास सौंदर्य को देखने की दृष्टि नहीं है, आपकी आँखों में सौंदर्य का चैनल नहीं है, तो वह आपको दिखाई नहीं देगा। पिता से जो प्रकृति-प्रेम मिला था, शान्तिनिकेतन ने उसमें सौंदर्य का आयाम जोड़ा। परिक्रमा के लिए आवश्यक पाथेय मुझे शांतिनिकेतन से ही मिला। मेरे जीवन में शांतिनिकेतन का वही स्थान है जो किसी खेत में हल का होता है।

वहाँ से मैं यहाँ आ गया और आर्ट-कॉलेज में कला का अध्यापक हो गया। शहर में मुझे अपने चित्रों के लिए विषय नहीं मिल रहे थे। मेरा रुझान प्रकृति की ओर तथा ग्रामीण-जीवन की ओर था। अंततः मैंने नर्मदा की पदयात्राएँ शुरू कर दीं। ये यात्राएँ मैंने अपने चित्रों के लिए नए विषय, नए रूपाकार एवं नए-संयोजन की खोज के उद्‌देश्य से की थीं। उस समय लिखने का कोई विचार मन में नहीं था।

ठीक है, दो-चार बार जाकर ही संतुष्ट हो लेते। दोनों तटों की पूरी परिक्रमा क्यों की?

क्योंकि मैं नर्मदा-सौंदर्य के घेरे में से बाहर निकलना ही नहीं चाहता था। जहाज के पंछी की तरह बार-बार वहीं लौट जाना चाहता था। कभी-कभी मैं अपने-आप से पूछता हूँ, 'यह जोखिम भरी यात्रा मैंने क्यों की?' और हर बार मेरा एक ही उत्तर होता है, 'अगर मैं यह यात्रा न करता, तो मेरा जीवन व्यर्थ जाता।' जो जिस काम के लिए बना हो, उसे वह काम करना ही चाहिए। और मैं नर्मदा की पदयात्राओं के लिए बना हूँ। मैं पूरी परिक्रमा कर चुका था, लेकिन चार वर्ष पूर्व आयु का 75 वाँ वर्ष शुरू होते ही मैंने ये पदयात्राएँ दोबारा शुरू कर दी है। प्रायः 800 कि.मी. चल भी चुका हूँ। इस पुनरावृत्ति परिक्रमा में मेरी पत्नी कान्ता भी साथ चलती है। यात्रा-वृत्तांत की तीसरी पुस्तक भी आएगी।

अभी आप ही ने कहा था कि ये पदयात्राएँ आपने अपने चित्रों के लिए नए विषय खोजने के उद्‌देश्य से की थीं और आपके मन में लिखने का कोई विचार नहीं था।

ठीक ही कहा था। लेकिन जीवन में ऐसा भी होता है कि आप जाना चाहते हैं बाईं तरफ और कोई ले जाता है दाहिनी तरफ! मेरे साथ यही हुआ। नर्मदा-तट से लौटने के बाद चित्र तो बने ही, यात्रा-वृत्तांत भी तैयार होते गए। नर्मदा ने एक चित्रकार को लेखक भी बना दिया!

क्या आपको नहीं लगता कि आपका चित्रकार पीछे रह गया है और आपका लेखक आगे निकल गया है?

बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है न! यद्यपि नर्मदा-तट के मेरे रेखांकन और मेरे कोलाज चित्र बहुत प्रसिद्ध हुए और खूब छपे, मध्यप्रदेश शासन का प्रतिष्ठापूर्ण 'शिखर सम्मान' मिला और भोपाल के इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय ने मेरे प्रायः पचास कोलाज चित्र अपने संग्रह के लिए खरीदे, फिर भी ख्याति मुझे मेरी पुस्तकों से ही मिली। निस्संदेह लेखक के रूप में मैं ज्यादा सफल रहा हूँ। लेकिन याद रहे, पर्दे के पीछे मेरा कलाकार ही है। ये पुस्तकें मेरे लेखक से मेरे कलाकार ने ही लिखवाई हैं। अगर पुस्तकें अच्छी हैं तो इसका श्रेय इन दोनों की जुगलबंदी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को है। मेरे कलाकार को मेरे लेखक से अलग करना वैसा ही होगा जैसे चाँद से चाँदनी को अलग करना।

14 सितंबर 2006 हिन्दी दिवस के अवसर पर दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित एक भव्य समारोह में महामहिम राष्ट्रपति ने आपको महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार से सम्मानित किया। और भी कई विद्वान सम्मानित हुए। कोई डेढ़ बरस पहले इसी दिल्ली के रवीन्द्र भवन में आपको आपकी गुजराती पुस्तक 'सौंदर्यनी नदी नर्मदा' के लिए अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इसका मतलब यह हुआ कि आपके दोनों हाथों में लड्डू हैं।

लड्डू तो बहुत मामूली चीज है, आपको किसी भी हलवाई की दुकान पर मिल जाएँगे। मैं इसे इस प्रकार कहूँगा कि मेरी दो माताएँ हैं और मुझे मेरी दोनों माताओं का भरपूर स्नेह मिला है। हिन्दी मेरी दूसरी मातृभाषा है। परिक्रमा की पुस्तकें मैंने दोनों ही भाषाओं में लिखी हैं। मेरी गुजराती और हिन्दी की पुस्तकें जुड़वाँ या ट्विंस हैं। एक बात और। गुजराती भाषियों की हिन्दी सेवा की एक लंबी परंपरा रही है। हिन्दी का प्रथम व्याकरण लल्लूलाल जी ने लिखा था, वे गुजराती थे। यह ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के दिनों की बात है। महर्षि दयानंद ने अपना सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' मातृभाषा गुजराती में नहीं, राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखा था। महात्मा गांधी तो हिन्दी के भगीरथ थे। उन्होंने हिन्दी के प्रचार-प्रसार को अनुपम विस्तार दिया। हिन्दी के ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कवि नरेश मेहता और प्रसिद्ध उपन्यासकार अमृतलाल नागर भी मूलतः गुजराती थे। इसी कड़ी में एक साधारण-सा नाम मेरा भी है। हिन्दी की ऐसी ही सेवा अन्य भाषा-भाषियों ने भी की है। मेरे विचार से हिन्दी जगन्नाथ का रथ है जिसे खींचने में हर भाषा-भाषी ने गौरव का अनुभव किया है।

आपने यह तो बताया नहीं कि पुरस्कार में आपको राशि कितनी मिली?

अरे भाई, हर सुख के साथ दुःख का पुछल्ला लगा ही रहता है। जब केन्द्रीय हिन्दी संस्थान का पत्र आया कि पुरस्कार स्वरूप आपको 50,000 रुपये दिए जाएँगे, तब बेहद खुशी हुई। (राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान और साहित्य अकादमी सम्मान भी पचास-पचास हजार के ही थे।) किन्तु दिल्ली जाने पर पता चला कि पुरस्कार मूलतः एक लाख रुपये का है, दो लेखकों को संयुक्त रूप से दिए जाने के कारण आधा रह गया है, तब पचास हजार पाने की खुशी पचास हजार खोने के गम में बदल गई! (तीस पुरस्कृत विद्वानों में अधिया पुरस्कार वाले हम आठ लोग थे।) मेरी दर्दभरी दास्तान यही खत्म नहीं होती। कान्ता ने कहा कि मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ, नर्मदा की पदयात्राओं में आपके साथ चलती हूँ, इसलिए इसमें से आधा रकम मुझे देनी होगी। इस प्रकार मुझे तो 'आधि की पुनि आध' रकम ही मिली। लुटेरे कहाँ नहीं हैं!

अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में बताएं?

मैंने शुरू में ही तय किया था कि मुझे नर्मदा-पुराण या रेवा-महात्म्य नहीं लिखना है। इस युग में इसकी आवश्यकता भी नहीं। मुझे तो नर्मदा की जीवनी लिखनी है—सचित्र प्रामाणिक जीवनी। इसके लिए बार-बार नर्मदा के निकट गया, उसके संग-संग चला, उससे बातें कीं, स्केच उतारे, उसके सौंदर्य को अपनी आँखों से देखा, तब अपनी पुस्तकें लिखीं। मेरी नर्मदा 'आँखिन देखी' नर्मदा है। यह भी बता दूँ कि इन यात्राओं के दौरान स्तब्ध कर देने वाली भौगोलिक सुंदरता के बीच मैंने घोर दरिद्रता भी देखी। प्रकृति की अपूर्व भव्यता के साथ मानवता का सहज सौंदर्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant.

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी देखा। वहाँ के लोगों ने अपने घर और अपने दिल के दरवाजे मेरे लिए खोल दिए। अजनबी मित्र बन गए। मैंने अप्रत्याशित स्थानों पर भलाई देखी। उन परकम्मावासियों को मैं कैसे भूल सकता हूँ जिन्हें देखकर समझ सका कि 'आस्था' किसे कहते हैं। परिक्रमा आस्था का ही तो अभियान है। उन्हीं से मैंने सीखा कि सुख का आरंभ सादगी से होता है। हमारी जीवन-नौका को हमें हल्का रखना चाहिए। उसे केवल जरूरत की चीज़ों से ही भरना चाहिए। वरना यह कबाड़ ही हमें डुबो देगा।

आपकी इस बात से भला कौन सहमत नहीं होगा। हिन्दी और गुजराती के शीर्षस्थ लेखक आपकी पुस्तकों की मुक्त कंठ से प्रशंसा कर चुके हैं। ढेर सारे पुरस्कार मिल चुके हैं। अब आप सिद्धहस्त लेखकों की कोटि में आ गए।

नहीं भाई, वह पड़ाव अभी बहुत दूर है। देखिए, लेखन में दिमाग और हाथ की जुगलबंदी होती है। दिमाग जो कहता है, हाथ वही लिखता है। लेकिन मेरे लेखन में दिमाग और पैर की जुगलबंदी रही है। अगर पाँव-पैदल पौने तीन हजार किलोमीटर न चला होता तो दिमाग क्या कहता और हाथ क्या लिखता! इसलिए मैं 'सिद्धहस्त' लेखक भले ही न होऊँ, 'आपदमस्तक' लेखक तो हूँ!

नर्मदा के मूल स्वभाव को आप किस तरह से रेखांकित करते हैं।

नर्मदा अन्य नदियों से भिन्न है। सबसे प्राचीन नदी है। जब हिमालय नहीं था, गंगा-यमुना का मैदान नहीं था-तब वहाँ उथला समुद्र था-नर्मदा तब भी थी, विंध्य और सतपुड़ा तब भी थे। हमारे देश का सबसे प्राचीन भूभाग है यह। संसार में एकमात्र नर्मदा की ही परिक्रमा की जाती है। अत्यंत सुंदर नदी है यह। वह बहती है पहाड़ों में से, चट्टानों पर से, वनों में से, अनेक प्रपातों का निर्माण करती। वह हमेशा आसान रास्ता छोड़कर संघर्ष का कठिन रास्ता चुनती है। एक प्रतीक के रूप में, उसका यह जुझारूपन हमें बताता है कि जिंदगी आसान नहीं है और सामान्य रास्ता चुनो भी नहीं; कठिन रास्ता चुनो, तभी कुछ कर पाओगे।

अच्छा भाई, बहुत ज्यादा बोल गया। बूढ़ा हो गया हूँ न, कुछ ज्यादा ही बोलने लगा हूँ। बस, एक बात कहकर बोलना बंद कर दूँगा। नर्मदा की पदयात्राओं से ही मेरे लेखों और चित्रों को आकार मिला है। मैं जो कुछ भी उल्लेखनीय कर सका हूँ, वह नर्मदा की पदयात्राएँ शुरू करने के बाद ही। अगर नर्मदा मेरे जीवन में न आई होती तो मैंने नौकरी की होती, रिटायर हो गया होता, और मर गया होता। किन्तु अब ऐसा नहीं होगा। मरने के साथ ही नहीं मरूँगा मैं। कैलेंडर में भले ही मर जाऊँ, अपनी परिक्रमा-पुस्तकों में जिंदा रहूँगा—कम से कम कुछ बरस तो रहूँगा ही। अथवा, यह भी हो सकता है कि जब तक नर्मदा रहे, मैं भी रहूँ!

बस, अब बोलना बंद करता हूँ।

नहीं, आप इस तरह से बीच में से नहीं जा सकते। मेरे अन्य प्रश्नों के भी जवाब देने होंगे। परिक्रमा एक साथ की जाती है, लेकिन आपने टुकड़ों में की। ऐसा क्यों?

संक्षेप में कहूँ या थोड़े विस्तार से?

संक्षेप में। [illegible] है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

तो मेरा जवाब है : हमारी मौज।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं, ऐसा उड़न छू जवाब नहीं। जरा विस्तार से ही कहिए।

अगर संक्षिप्त उत्तर देता हूँ तो कहते हैं विस्तार से कहें। विस्तार से कहता हूँ तो कहते हैं संक्षेप में कहें! आप ही बताइए, मैं क्या करूँ ।

ठीक है, जो कहना है कहिए, आखिर मैरी कैंची किस काम आएगी।

मेरे वक्तव्य पर शौक से कैंची चलाएँ, मुझे जरा भी आपत्ति नहीं। जितनी बड़ी कैंची, उतना ही बड़ा संपादक। लेकिन आप तो मेरी जबान ही काटने पर तुले हुए हैं! खैर, मैं आपके हिसाब से लंबे साक्षात्कार के आखिरी हिस्से पर आ गया हूँ। एक साथ पूरी परिक्रमा करना मेरे लिए संभव नहीं था। इसलिए कभी दीवाली की छुट्टी में चला तो कभी गर्मियों की छुट्‌टी में। वैसे खंड-यात्राओं का यह तरीका मेरे लिए बिल्कुल सही था। घर आकर मैं यात्रा-वृत्तांत लिख लेता, कोलाज (चित्र) बना लेता, विश्राम पाकर तरोताजा हो जाता और आगे की यात्रा के लिए नई शक्ति पा लेता।

आप चित्रकार भी हैं और लेखक भी। थोड़ा इस बारे में बताएँ।

पहले मैं सोचता था कि क्या ही अच्छा होता, भगवान मुझे केवल चित्रकार बनाता, लेकिन उच्चकोटि का चित्रकार। या सिर्फ लेखक बनाता, लेकिन मूर्द्धन्य कोटि का लेखक। भगवान ने मुझे आधा इधर, आधा तीतर आधा बटेर क्यों बनाया। किन्तु बाद में समझ में आया कि नर्मदा को असाधारण लेखक या असाधारण चित्रकार के बजाय एक ऐसे आदमी की जरूरत थी, जिसमें ये दोनों ही बातें हों—फिर वह साधारण ही क्यों न हो। मैं ही वह साधारण चित्रकार-लेखक हूँ। मैं मानता हूँ कि दुनिया को मुझ जैसे साधारण लोगों की भी जरूरत है।

नर्मदा-सौंदर्य को कभी रेखाओं में, कभी रंगों में तो कभी शब्दों में व्यक्त करने का प्रयत्न रहा है मेरा। फिर, भी नर्मदा के राशि-राशि सौंदर्य में से मैं अंजुरी भर सौंदर्य ही ला सका हूँ। मेरा यह प्रयास एक साधारण आदमी का निर्बल प्रयास है। आज तक मैं नर्मदा के सौंदर्य की थाह नहीं पा सका। कोई असीम को कैसे समेट सकता है? इसलिए जो लाया हूँ, वह 'चिड़ी का चोंच भर पानी' ही है।

आखिरी सवाल। अपनी भावी योजना के बारे में बताएँ। कृपया इसे एक ही वाक्य में कहें।

विगत 30 वर्षों से मैं नर्मदा-सौंदर्य की छड़ी मुबारक लिये घूम रहा हूँ और आगे भी यही करता रहूँगा।

प्रश्नकर्ता : 'अमृतस्य नर्मदा' की प्रस्तावना में निर्मल वर्मा ने बिलकुल सही लिखा है:

'क्या हम वेगड़ जी को नर्मदा से और नर्मदा को वेगड़जी से अलग करके देख सकते हैं।'

वेगड़जी आपके इस साक्षात्कार से औरों को बल मिलेगा। इस पर कैंची चलाने का पाप मैं नहीं करूँगा। आपकी नर्मदा पदयात्राएँ चलती रहें और आपके यात्रा-वृत्तांतों में नर्मदा-सौंदर्य का पारावार उमड़ता रहे, यही कामना है।

•

1836, राइट टाउन, जबलपुर-2 म.प्र.
फोन 0761-4016867, 2410434

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अकाल
अच्छे कामों और विचारों का भी
अनुपम मिश्र

आग लगने पर कुआं खोदना पुरानी कहावत है।

अकाल की आग लगी। सरकार और समाज ने भी कुआं खोदना शुरू किया। कहावत में तो कुआं खोदने पर शायद पानी भी निकलता है पर इस बार अकाल में कुआं खोदने पर पानी नहीं मिला। टैंकरों से, रेलों से और तो और गुजरात में पानी के जहाज़ से पानी पहुंचाया गया। सिर्फ़ हवाई जहाज़ रह गया।

जिस 21वीं सदी में भारत को ले जाने के लिए हमारे सभी दलों के सभी राजनेता पिछले 20 बरस से बहुत आतुर दिख रहे थे उस 21वीं सदी का यह पहला अकाल है। और जिस सूचना की क्रांति का इतना हो-हल्ला हो रहा था, इस क्रांति के मान दूतों को, महान सपूतों को बिना सूचना दिए देश के आधे हिस्से में अकाल चुपचाप उतर आया है।

पर अकाल कभी चुपचाप नहीं आता। वह बिना तिथि बताए आने वाला अतिथि नहीं है। दिसंबर के अंत में जब मानसून ने अपने को समेटा था तब बहुत से हिस्से में उसने यह जानकारी, यह सूचना भी बरसा दी थी कि कहां-कहां औसत से कम वर्षा हुई है। पर कुछ अपवाद छोड़ कर न तो धरती के बेटों ने, किसानों ने और न कलेक्टरों ने इस सूचना को बटोर कर रखा। सब जगह गांवों में, खेतों में, शहरों में पीने का पानी, सिंचाई का पानी उसी ढंग से उलीचा जाता रहा। नतीजा यह हुआ कि छह सात राज्यों में जल स्तर लगातार नीचे गिरता गया। वह इतना नीचे गिर गया कि फिर बिजली के भी हाथ नहीं लग सका।

हर तरह की अनीति के इस दौर में सरकार का ध्यान जलनीति बनाने की तरफ़ भी गया है। इस नई जलनीति का एक प्रारूप अकाल से पहले भी बन चुका है। जिन टेबिलों पर जलनीति बनी है, उन्हीं टेबिलों से देश की सारी नदियों को एक दूसरे से जोड़ देने की सबसे ख़र्चीली और शायद सबसे भयानक, अव्यावहारिक योजना की भी बात लगातार आ रही है। ऐसी चर्चाओं को, वार्ताओं को अकाल भी असामयिक, असामाजिक नहीं बना पाया है। ज़िम्मेदार लोग, मंत्रीगण ऐसी ही गप्पों में व्यस्त रहें तो क्या कहा जा सकता है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कभी भी अकाल अकेले नहीं आता। अच्छे विचारों और अच्छे कामों का अभाव पहले आ जाता है। यहां विचार और काम दोनों में कोई अंतर नहीं है। यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज की नई शब्दावली से अलग है। इसमें एक्शन, फ़ील्ड वर्क, ग्रासरूट का काम कुछ ज़्यादा महत्व और वज़न लिए दिखता है और सोचना समझना एक घटिया दर्जे का काम माना जाता है। पर इसके विपरीत अच्छे विचार निकलते हैं और अच्छे विचारों से अच्छे काम। इन दोनों में से कोई भी 'टर्मिनेटर सीड' नहीं होता।

इस अकाल के बीच भी अच्छे काम और अच्छे विचार का एक सुंदर छोटा सा उदाहरण राजस्थान के अलवर क्षेत्र का है जहां तरुण भारत संघ पिछले बीस बरस से काम कर रहा है। वहां पहले अच्छा विचार आया तालाबों का, हर नदी, नाले को छोटे-छोटे बांधों से बांधने का। इस तरह वहां और आसपास के कुछ और ज़िलों के कोई 600 गांवों ने बरसों तक वर्षा की एक-एक बूंद को सहेज लेने का काम चुपचाप किया। इन तालाबों, बांधों ने वहां सूखी पड़ी पांच नदियों को सदानीरा का दर्जा वापस दिलाया।

अच्छे विचारों से अच्छा काम हुआ और फिर आई चुनौती भरे अकाल की पहली सूचना। नदियों में, तालाबों में, कुओं में वहां तब भी पानी लबालब भरा था। फिर भी इस क्षेत्र के लोगों ने, किसानों ने आज से सात-आठ माह पहले यह निर्णय किया कि पानी कम गिरा है इसलिए ऐसी फ़सलें नहीं बोनी चाहिए जिनकी प्यास ज़्यादा होती है। तो कम पानी लेने वाली फ़सलें लगाई गईं। इसमें उन्हें कुछ आर्थिक नुक़सान उठाना पड़ा पर आज यह क्षेत्र अकाल के बीच में एक बड़े हरे द्वीप की तरह खड़ा है। यहां सरकार को न तो टैंकरों से पानी ढोना पड़ रहा है न अकाल राहत का पैसा बांटना पड़ा है। लोग, गांव किसी के आगे हाथ नहीं पसार रहे हैं। उनका माथा ऊँचा है. पानी के उम्दा काम ने उनके स्वाभिमान की भी रक्षा की है।

अलवर में नदियां एक दूसरे से जोड़ी नहीं गयी हैं। यहां लोग, गाँव, नदियों से, अपने तालाबों से जुड़े हैं। यहां पैसा नहीं बहाया गया है, पसीना बहाया है, लोगों ने और अच्छे काम और अच्छे विचारों ने अकाल को एक दर्शक की तरह पाल के किनारे खड़ा कर दिया है।

गाँधी शांति प्रतिष्ठान, 221-223, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, दिल्ली-110002

फोन : 23237491

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कविता का जन्म

क्रिस्टोफर काडवेल

(स्पेन में फासीवादी जनरल फ्रैंको की सेना के विरुद्ध गृहयुद्ध में जन-मिलिशिया में भर्ती होकर लड़ते हुए काडवेल शहीद हो गये 12 फरवरी 1937 को! मात्र 29 वर्ष की कम उम्र जीवित रहने के बावजूद, अपने सिद्धांतों के लिए प्राणोत्सर्ग करने के साथ साथ साहित्य एवं विज्ञान में उनका योगदान कम नहीं था। उन्होंने अपने असली नाम ''क्रिस्टोफर सेंट जान स्प्रिग'' के नाम से 7 जासूसी कहानियों के अलावा 5 किताबें उड्डयन विज्ञान पर और साथ ही सैकड़ों कहानियाँ और कविताएँ लिखी। अपने भीतर खौलते ज्ञान को उन्होंने अपने साहित्यिक उपनाम ''क्रिस्टोफर काडवेल'' के नाम से दुनिया के सामने रखा— वे थी तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें— ''इल्युज़न एंड रियलिटी'', ''स्टडीज़ एंड फरदर स्टडीज़ इन डाईंग कल्चर'' तथा ''द क्राइसिस इन फीज़िक्स''। विज्ञान एवं साहित्य की दुनिया आज तक उनके इन कार्यों का वास्तविक मूल्यांकन नहीं कर पाई है, खासकर हिंदी में तो उन्हें लगभग भुला ही दिया गया है। प्रस्तुत है उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति ''इल्युज़न एंड रियलिटी'' के प्रथम अध्याय ''बर्थ आफ पोइट्री'' का संक्षिप्त हिंदी अनुवाद एवं रूपांतर)

कविता मानव मस्तिष्क के प्रारम्भिक सौंदर्य शास्त्रीय प्रयासों में से एक है, उस समय प्रारंभिक साहित्यिक विधाओं में कविता का एक अलग अस्तित्व नहीं हुआ करता था, वह समग्र साहित्य में निहित थी। कविता इतिहास, धर्म, जादुई कारनामों एवं नियमों की अभिव्यक्ति की एक उभयनिष्ठ माध्यम थी। सभ्य मनुष्यों के प्रारंभिक साहित्य जो सुरक्षित हैं, वे पूर्णतया काव्य-रूप में अर्थात् लयात्मक और छंदबद्ध हैं। यह कविता आधुनिक अर्थों में एक शुद्ध कविता नहीं है, हम इसे सामान्य बोलचाल की भाषा का 'विशिष्ट' व सुथरा हुआ रूप (Heightened form of ordinary speech) कह सकते हैं। यह सुथरापन या उच्चता छंद, तुक, तान, लय, अनुप्रास, समान अक्षरों वाली पंक्तियों समान बल स्वरों आदि-आदि के द्वारा प्राप्त होती है। भारतीय आर्य जातियों का आध्यात्मिक चिंतन (ऋग्वेद आदि) काव्य रूप में ही प्राप्त होते हैं।

आदिम समाज में विशेष अवसरों उत्सव आदि पर ही भाषा की उपरोक्त विशिष्टता को हम देखते हैं, किन्तु गद्य व वाक्य रचना के लिखित रूपों में वह अदृश्य हो जाती है। संगीत का प्रादुर्भाव भी उसी समय हुआ जबकि कविता का जन्म हुआ था। हाव-भाव, उछल-कूद, भाव-भंगिमाओं के रूप में प्रकट होने वाली शारीरिक लयात्मकता, और शोर-शराबे, निरर्थक उद्‌गारों, छड़ियों, पत्थरों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को बजाकर निकाली जाने वाली कृत्रिम आवाजें, ये सभी नृत्य, कविता और संगीत तीनों में समान रूप से पाई जाती थीं।

प्रारंभिक स्तर पर ''विशिष्ट'' भाषा में सामान्यत: संगीत व नृत्य का समावेश होता था। भाषा का यह विशिष्टीकरण एवं विभिन्नता का सभ्यता के विकास के साथ-साथ बढ़ते जाना सम्भवत: सभी सभ्य समाजों की खासियत रही है। सभ्यता के विकास क्रम में श्रम के निरंतर विभाजन की प्रक्रिया निहित है, जो सामाजिक अर्थ व्यवस्था का विरोध नहीं करता बल्कि वह एकाधिकार को जन्म देता है। इसे किसी भी सभ्यता की समग्रता में देखा जा सकता है, जिसकी आर्थिक आधार भूमि सुगठित एवं गुम्फित हो, उसकी सांस्कृतिक अधिरचना (Cultural superstructure) में क्रमश: बढ़ता हुआ वैभिन्य दिखाई देता है। आदिम सामाजिक अर्थ व्यवस्था में कविता सभी सामूहिक कार्यों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त थी, जबकि आधुनिक संस्कृति की समृद्ध संरचना में कविता एक ऐसा कर्म है, जो उपन्यास, इतिहास और नाटक के समकक्ष खड़ा होता है। इस प्रकार संस्कृति को आर्थिक उत्पादन से अलग नहीं किया जा सकता। संस्कृति और आर्थिक उत्पादन सामान्य जैविक गुणों (Boilogical instincts) के सूक्ष्म विरोध में खड़े दिखाई देते हैं।

आदिम समाज में प्रत्येक सदस्य अपने सामाजिक व आर्थिक कार्य लिंगभेद व अवस्थाभेद के अनुसार कर सकता था, बशर्ते कि वह जाति बहिष्कृत न हो। अत: आश्चर्य की बात नहीं है कि उनकी कला व भाषा दोनों विभिन्नतापूर्ण नहीं है तथा वह कविता या ''विशिष्ट'' भाषा सामूहिक बुद्धिमत्ता व कौशल की अभिव्यक्ति की साझी वाहक है।

अलयात्मक भाषा या साधारण बोलचाल की भाषा दूसरों में विश्वास प्रवर्तन की भूमिका निभाती है। एक व्यक्ति की इच्छाशक्ति (जिसका जन्म व्यक्तिगत कर्म में होता है) का विरोधाभास लयपूर्ण भाषा की सामूहिक आत्मा से होता है, जो अपनी समस्त शक्ति आदिम समाज में सामूहिक अभिव्यक्तियों से प्राप्त करती थी। कविता की लयात्मक प्रवृत्ति सामूहिक समारोहों, उत्सवों एवं अभिव्यक्तियों को अधिक सुगम्य कर देती है। जैसा कि प्रारंभिक कक्षाओं में बच्चे गणित को काव्यात्मक बनाते हुए पहाड़े की लयपूर्ण आवृत्ति करते हैं। अत: अलयात्मक भाषा प्रतिदिन की बोलचाल पर निर्भर करती है, वह निजी क्रियाओं की अभिव्यक्ति है एवं लयात्मक भाषा, सामूहिक भाषा, जनसामान्य की भावनाओं को वहन करने वाली होती है।

कविता ''विशिष्ट'' रूप में गीत (Song) होती है। गीत विशिष्ट रूप में, अपनी लयपूर्णता के कारण एक स्वर मेल में गाया जाता है, जो सामूहिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम होता है, किन्तु आदिम समाज को इस सामूहिक भावाभिव्यक्ति की आवश्यकता आखिर क्यों हुई? शत्रु या चीते के आगमन, वर्षा या भूकम्प आदि आने पर एक सामयिक व सामूहिक प्रतिक्रिया प्रवृत्यात्मक रूप से निकलती है। सभी डरे हुए रहते हैं, सभी भयभीत रहते हैं। किन्तु ऐसे उपकरण की आवश्यकता उस स्थिति में नहीं होती, जो उस सामूहिक प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करे, आदिम मनुष्य डरे हुए हिरणों की झुंड की तरह नि:शब्द प्रतिक्रिया व्यक्त करता था। लेकिन ऐसे उपकरण व माध्यम की आवश्यकता सामाजिक रूप से उस समय होती थी, जब कोई वास्तविक व दृश्यमान कारण न हो तथापि वैसा कारण ''सम्भावित'' (Potential) रूप में हो। इससे यह पता चलता है कि कैसे कविता का जन्म आदिम मनुष्य के आर्थिक जीवन से होता है और किस प्रकार ''वास्तविकता'' (Reality) से ''विभ्रम'' (Illusion) का जन्म होता है।

पशुओं के विपरीत आदिम मनुष्य के सामान्य जीवन में प्रयासों की शृंखला की आवश्यकता होती है, जो अभिवृत्यात्मक (Instinctive) नहीं होती, बल्कि वे अजैविक (Non-boilogical) आर्थिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उद्देश्यों की आवश्यकता की मांग की पूर्ति हेतु होती थी-उदाहरण के लिए फसलों की कटाई व एकत्रण। इस प्रकार अभिवृत्तियों को पैदावार एकत्रित करने की आवश्यकतानुसार सामाजिक यंत्र संरचना के द्वारा निर्देशित किया जाता था। इस संरचना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा सामूहिक समारोह होते थे, जो काव्य के आधात्री थे, और भावनाओं के भंडार को मुक्त करते उन्हें सामूहिक मार्ग की ओर प्रवाहित करते थे। वास्तविक वस्तु भौतिक उद्देश्य उपज की कटाई, सामूहिक उत्सव में एक काल्पनिक वस्तु (Phantastic object) हो जाती है।

इस प्रकार कविता नृत्य, धार्मिक क्रियाओं, संगीत से, मिलकर प्रकृत उर्जा का एक बड़ा सा ''स्विचबोर्ड'' बन जाती है और जिसे कविता सामूहिक क्रियाओं की ओर निर्देशित करती है, जिसके तत्कालिक कारण व परिणाम दृश्यमान क्षेत्र में नहीं दिखते एवं वे केवल अभिवृत्तियों द्वारा ही अपने आप निर्णित नहीं होते। शब्द, प्रत्येक व्यक्ति के सामान्य सामाजिक जीवन में भावनात्मक साहचर्य की प्राप्ति करते हैं। ये शब्द सावधानीपूर्वक चुने गए होते हैं और उनकी लयात्मक अवस्था उन्हें समवेत स्वरों में गाने योग्य बनाती है एवं सामूहिक अस्तित्व की सजीवता को भावनात्मक साहचर्य के रूप में मुक्त करते हैं। संगीत व नृत्य वास्तविकता से अलगाव (Alienation) उत्पन्न करने में सहायता करते हैं, जो समाज की पूरी मशीन को संचालित करता है।

आदिम समाज के त्यौहारों में कला के द्वारा सामूहिक भावना का संगठन होता था, क्योंकि वह कार्य को मधुर बना देती है और यह श्रम की आवश्यकता के कारण उत्पन्न होती है और वह श्रम में ही उसे पुन: हल्का बनाने के लिए विलीन हो जाती है। आदिम मनुष्य सामूहिक कार्यों को जैसे कुदाल चलाते हुए, नाव खेते हुए सम्पन्न करते हैं, जिसमें एक कलात्मकता होती है, जो कार्य को आवश्यकता से सम्बन्धित करती है और कार्य से संलग्न सामूहिक भावनाओं को अभिव्यक्त करती है।

अत: कला की दुनिया सामाजिक भावनाओं की दुनिया है-शब्द और बिम्बों की दुनिया हैं, जो सभी मनुष्यों के जीवन के अनुभवों एवं समान भावात्मक साहचर्यो के परिणाम स्वरूप एकत्रित हो गये होते हैं।

सामूहिक भावनाएं समाज के विकास के साथ बदल जाती हैं। आदिम मनुष्य भोजन की खोज, या शिकार करते हुए प्रकृति में अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए स्वयं को प्रक्षेपित करता है। आदिम समाज में प्रकृति की भूमिका के कारण श्रम के विभाजन की ओर वे प्रवृत्त हुए एवं मुखिया, पुरोहित व शासक वर्गों के प्रारूप निर्मित हुए। समूह नर्तक स्वयं को धार्मिक समारोहों से अलग करके अभिनेता-एक व्यक्ति बन जाता है। कला ईश्वर के साथ-साथ महापुरुषों का भी बखान करने लगी। समूहगान महाकाव्य (Epic) में परिवर्तित हो गया, जो व्यक्तियों के सम्बन्ध में सामूहिक कथा (मिथक) होती है। अंत में गीति काव्य (Lyric) के रूप में एक वैयक्तिक अभिव्यक्ति के रूप में बदल जाती है। मनुष्य सर्वप्रथम अपने शारीरिक अलगाव के प्रति चेतन था, फिर प्रकृति के साथ अपनी एकता के प्रति चेतन हुआ और अब अपनी आंतरिक विभिन्नता के प्रति चेतन है, क्योंकि पहली बार परिस्थितियां, उन आंतरिक विभिन्नताओं पर विचार करने की सुविधा देती है। श्रम का बढ़ता हुआ विभाजन, जो श्रम के संगठन को भी बढ़ाता चलता है, वह कविता के ठोस जीवन से दूर हटने का आंदोलन भी उत्पन्न करता है, जिससे कला कार्य के विरोध में खड़ी दिखाई देती है, वह आनंद व विलासिता को जन्म देती है। तब कवि एकांतिक व्यक्ति मात्र होता है, उसकी अभिव्यक्ति ''गीत'' (Lyric) के रूप में होती है। श्रम का विभाजन वर्गों में विभाजित समाज को जन्म देता है, जहां चेतनता केवल एक धुरी, शासक वर्ग पर एकत्रित हो जाती है,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिसका शासन अंतिम रूप से बेकारी व निष्क्रियता को जन्म देता है, जिसका खात्मा केवल वर्गों के अंत से ही हो सकता है। किन्तु तब तक आंदोलन एक समृद्ध तकनीक को विकसित कर चुका होता है।

पूंजीवादी व्यवस्था सभी स्वाभाविक गुणों और प्रतिभाओं को एक ''वस्तु'' (Commodity) के रूप में ''स्वतंत्र बाजार'' (Free market) के कठोर व निर्दय नियमों द्वारा संचालित करता है, जो व्यक्ति के स्वतंत्र विकास में बाधा पहुंचाती है, जबकि चाहे तो वह इसमें अपने विपुल उत्पादनों के द्वारा सहायता भी पहुंचा सकती है, और यही इस सभ्यता के द्वारा व्यक्ति की ''अभिवृत्तियों'' के ''दमन'' की शिकायत को जन्म देती है, जिसकी छानबीन फ्रायड, युंग व एडलर जैसे मनोविश्लेषकों द्वारा की गई है। सामाजिक चेतनता, सामाजिक श्रम की तरह ही, जिसका वह उत्पादक व सहायक है, मनुष्य की स्वतंत्रता का उपकरण है। वे समाज द्वारा ''दमित'' अभिवृत्तियां नहीं, बल्कि अविकसित अभिवृत्तियां ही मनुष्य को उसकी अंधी आवश्यकताओं व अवचेतन की प्रवृत्तियों की गुलाम बना देती हैं।

असल में कविता विशिष्ट रीति से अनुवंशिक अभिवृत्तियों के एक हिस्से को अभिव्यक्त करती है। इसके विपरीत उपन्यास व्यक्ति को एक अनुकूल ''टाइप'' के रूप में, एक सामाजिक चरित्र के रूप में अभिव्यक्त करता है। अत: इस रूप में ''कविता'' प्रकृति के शिशु के समान है, तथा उपन्यास आधुनिक समाज के स्वरूप परिवर्तित शिशु के समान है।

कविता मनुष्य के हृदय की अनंत इच्छाओं को परिवर्तित किए बिना ही हृदय को नये उद्देश्य के लिए अनुकूलित करती है। वह यह कार्य मनुष्य को कल्पना की, फैंटेसी की दुनिया में ले जाकर करती है, जो वर्तमान वास्तविकता व परिवेश से कहीं उच्च (Superior) होती है। वह उच्च वास्तविकताओं की दुनिया होती है। एक अधिक महत्वपूर्ण वास्तविकताओं वाली दुनिया, जो अब तक अनुभूत (Realised) नहीं की गई है, और जिसकी अनुभूति उस कविता की मांग करती है, जो काल्पनिक तौर पर उसे प्रत्याशित करे।

अनुवाद : शाकिर अली
छत्तीसगढ़ ग्रामीण बैंक आंचलिक कार्यालय, हाटकचोरा, जगदलपुर (छत्तीसगढ़)
मो. 09425596607

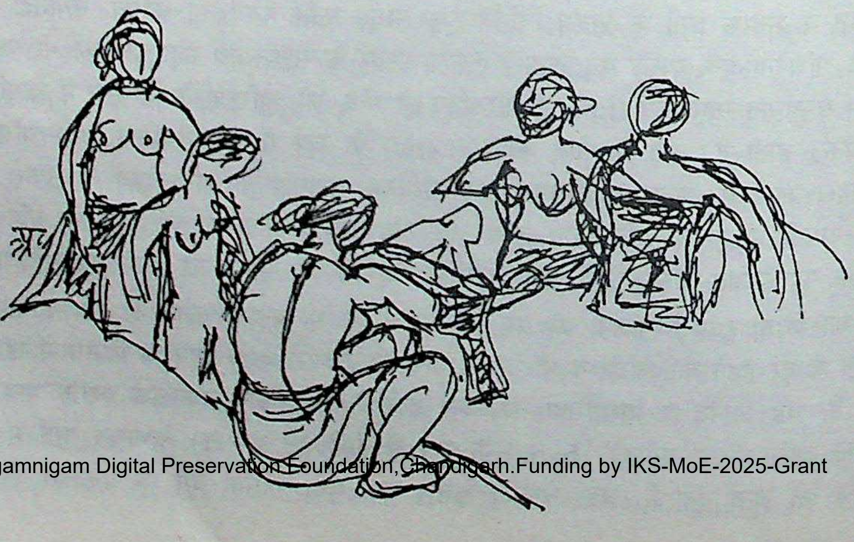

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मजबूती का नाम महात्मा गाँधी

पुरुषोत्तम अग्रवाल

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा के आमुख में एक बहुत ही मार्मिक घटना का उल्लेख किया है। उन्होंने आत्मकथा लिखने का निर्णय किया। गांधीजी लिखते हैं कि, एक निर्मल भाई ने मुझसे पूछा कि आत्मकथा लिखने की कोई परंपरा भारत में नहीं है। आत्मकथा एक ठेठ पाश्चात्य विधि है। आप क्यों आत्मकथा लिखने बैठ गए?' गांधीजी लिखते हैं कि 'मुझे उनकी बात में दम नजर आया। लेकिन फिर भी मैं ये आत्मकथा लिख रहा हूँ क्योंकि असल में ये कोई आत्म की कथा है नहीं। ये तो मेरे प्रयोगों की कथा है। और मुझे लगता है कि मेरे प्रयोगों से शायद दूसरों का भी कुछ लाभ हो। इसलिए मैं इसको लिख रहा हूँ।' और इस क्रम में गांधीजी ने अंतर किया अपने राजनीतिक प्रयोगों में और आध्यात्मिक प्रयोगों में। गांधीजी ने कहा कि मेरा जीवन इतना सार्वजनिक है कि मेरी राजनीति सब लोग जानते हैं उसकी जानकारी सबको है। अपने बहुत ही प्रसिद्ध लेकिन कम सराहे गए सेन्स ऑफ ह्यूमर के साथ गांधीजी ने लिखा कि अब तो मेरे राजनैतिक प्रयोगों की चर्चा सभ्य देशों में भी होने लगी है। और सभ्य शब्द को उन्होंने 'इनवर्टेड कॉमाज' में रखा। और मैं गांधीजी का वो वाक्य यहाँ पढ़ना चाहता हूँ, 'मैं आत्मकथा लिख रहा हूँ' गांधीजी ने लिखा, 'अपने आध्यात्मिक प्रयोगों को समझने और लोगों तक उन्हें पहुँचाने के लिए। मुझे अपने आध्यात्मिक प्रयोगों को, जिन्हें मैं ही जान सकता हूँ, और जिनसे मेरी राजनीतिक जीवन संबंधी शक्ति पैदा हुई है, उन प्रयोगों का वर्णन करना अवश्य भाएगा। ज्यों-ज्यों मैं विचार करता हूँ-अपने अतीत पर दृष्टि डालता हूँ, त्यों-त्यों अपनी अल्पता मुझे साफ दिखाई देती है।' मुझे लगा कि गांधीजी का ये वाक्य मेरे जैसे छोटे व्यक्ति के लिए भी दीपक का काम करता है। ज्यों-ज्यों अपने अतीत पर दृष्टि डालता हूँ, मुझे अपनी अल्पता साफ दिखाई देती है। और उस अल्पता के प्रयोगों को ही आपके सामने रखने की धृष्टता का परिणाम है ये व्याख्यान।

व्याख्यान का विषय मैंने स्वयं चुना था। 'मजबूरी का नाम महात्मा गांधी' ये मैं भी मानता था बहुत लम्बे अर्से तक। मैं भी इसे कहता था। अल्पता के बोध के साथ कह सकता हूँ कि तब 'रहहुँ अति की अचेत' जब कहा करता था कि मजबूरी का नाम महात्मा गांधी। धीरे-धीरे मैंने महसूस किया और गौर से सोचें तो हम सब महसूस कर सकते हैं कि असल में मजबूरी हिंसा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। हिंसा दृढ़ता और शक्ति को प्रकट नहीं करती। हिंसा मजबूरी को प्रकट करती है। मैं आज तक किसी ऐसे व्यक्ति विचार या सत्ता के सम्पर्क में नहीं आया हूँ जिसने हिंसा करते हुए ये न कहा हो कि हम तो हिंसा के लिए मजबूर थे। राज्यसत्ता हिंसा करती है क्योंकि उसे व्यवस्था बनाए रखने की मजबूरी है। क्रांतिकारी हिंसा करते हैं क्योंकि राज्य सत्ता ने उन्हें विवश कर दिया है उन्हें मजबूर कर दिया है कि वो हिंसा करें। अध्यापक हिंसा करते हैं क्योंकि बिना हिंसा और अनुशासन के बच्चों को सिखाया नहीं जा सकता। बच्चे हिंसा करते हैं क्योंकि हिंसा के बिना समाज सुनने को तैयार नहीं है। तो इस उलटबाँसी को हम आत्मसात किए बैठे हैं और केवल हम ही नहीं सारी दुनिया आत्मसात किए बैठी है कि अहिंसा मजबूरी का प्रमाण है और हिंसा ताकत का। मुझे लगता है कि बात उल्टी है। असल में; स्वयं हिंसा करने वालों पर अगर आप ध्यान दें चाहे वो सरकारी अफसर के तौर पर हिंसा करते हों, चाहे वो विचार में हिंसा को सही ठहराते हों, चाहे वो राज्यसत्ता के रूप में हिंसा करते हों। स्वयं हिंसा करने वालों पर अगर आप ध्यान दें, तो आप पाएँगे कि हर हिंसक व्यक्ति और विचार अपने आपको परिस्थितियों के मजबूर दास के रूप में प्रस्तुत करके ही अपने नैतिक संकट का समाधान कर पाता है।

मुझे इस बात का एहसास बहुत देर से हुआ. और इस एहसास को उपलब्ध कराने में बहुत सी चीजों का, बहुत से व्यक्तियों का योगदान था। और इसमें सबसे महत्वपूर्ण योगदान था एक मेरे मित्र का, मैं उनके इस योगदान को सार्वजनिक रूप से कृतज्ञता के साथ स्वीकार करना चाहता हूँ, मैं उन्हें शिक्षक और गुरु नहीं कहूँगा क्योंकि इन दोनों शब्दों पर अजीब-अजीब तरह के भार आज के जमाने में पड़े हुये हैं। हर कोई शिक्षक हो जाता है और गुरु लोग तरह-तरह के होते हैं। इसलिए शिक्षक या गुरु नहीं कहूँगा, लेकिन हिंसा का संबंध गहरी नैतिक मजबूरी बल्कि अपंगता से है इस बात का गहरा बोध मुझे अपने जीवन में कराया मेरे मित्र और सिखावनहार दिलीप सीमियन ने मेरे लिए ये गौरव का विषय है कि इस सभा में श्रोता के तौर पर मौजूद हैं। इस अल्पता और अल्पज्ञता के साथ मैं इस यात्रा को आपके सामने बाँटना चाहता हूँ-मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी से मजबूती का नाम महात्मा गांधी तक की यात्रा। जाहिर है कि ये यात्रा गांधी की नहीं है। ये यात्रा मेरी है। और इसलिए संकोच दूर हो सकता है कि 'वामपंथी होने के बावजूद' मुझे बुला लिया। आखिरकार ऐसी यात्रा करने का अधिकार तो वामपंथियों को भी है ही!

28 दिसम्बर 1986 को मैंने अपनी डायरी में लिखा, लिखा क्या था एक टिप्पणी नोट की थी। उसी दिन के 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में, एक लेख छपा था। शीर्षक था 'वायलेन्स दैट इज इण्डिया'। लेखक का नाम नहीं था। लेख विशेष संवाददाता के नाम से था। लेकिन जिन भी सज्जन या देवी ने वो लेख लिखा था, मानना होगा कि उनमें गहरी दूर दृष्टि थी। और दूर तक वो देख सकते थे या देख सकती थीं। उन्होंने लिखा था इस समय भारतीय समाज के मध्य वर्ग को परिभाषित करने वाला तत्व है भय और असुरक्षा। इस भय और असुरक्षा का परिणाम यह होने वाला है, बहुत पते की बात कही थी उस व्यक्ति ने कि एक तो इस समाज में स्वाधीनता का निरंतर वर्द्धमान क्षरण होगा। स्वाधीनता धीरे-धीरे समाज में घटती जाएगी। और दूसरा उन्होंने लिखा कि धीरे-धीरे इस समाज में आप देखेंगे कि बिरादरी परक अस्मितावाद का, पॉलिटिक्स ऑफ कास्ट आईडेन्टिटी का अभूतपूर्व उभार अगले कुछ वर्षों में इस देश की राजनीति में आएगा। आज 20 वर्ष बाद ये कथन भविष्यवाणी की तरह लगता है। मुझे नहीं पता कि यह कथन किसका था। लेकिन 28 दिसम्बर 1986 के दिन ये कथन मैंने अपनी डायरी में नोट किया था। 10 मई, 1987 को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैंने अपनी डायरी में कुछ लिखा था वह मैं आपके सामने हू-ब-हू पढ़ना चाहता हूँ, 'हम किस जगह ले आए गए हैं? कल रात मालवीय नगर से लौट रहा था कि पटेल चौक पर सफेद मारुति गाड़ी में बैठे तीन सरदारों ने मुझे आवाज दी। मेरी पहली, हालांकि सौभाग्य से संक्षिप्त, प्रतिक्रिया डर की ही थी। कोई भी अपरिचित इन दिनों डर का कारण बन जाता है। वे नेताजी नगर का रास्ता पूछना चाहते थे। उन्हें रास्ता बताने के बाद मैंने सिगरेट पी; घबराहट दूर करने के लिए।' और सुमन और सुधा से सुना कि 'अन इजी' उन्होंने भी महसूस किया।' ये 10 मई, 1987 को मैंने अपनी डायरी में लिखा था। उसके बाद 2 जून, 1987 को पुरानी दिल्ली के लालकुआँ इलाके के कटरा गुलाम मुहम्मद में घूमने के बाद जहाँ दंगे हुए थे, और जहाँ के मुसलमान बाशिन्दे स्थायी आतंक की छाया में रह रहे थे-मैंने अपनी डायरी में जो कुछ लिखा था उसका केवल एक वाक्य आपके सामने पढ़ना चाहता हूँ, 'ये मुसलमान झूठ नहीं बोल रहे और अगर झूठ बोल रहे हों तो इन्हें अभिनय का ऑस्कर मिलना चाहिए।' 17 जून, 1987 को मैंने उसी डायरी में लिखा कि '13 जून की रात दक्षिण दिल्ली में, सफदरजंग एंकलेव में आतंकवादियों ने 14 लोगों को कत्ल कर दिया। अब लगता है कि हमें जीवन भर इसी आतंक के साए में जीना है लड़ना है और प्यार करना है।'

मित्रो! 1989 में दिलीप और हमारे एक मित्र जुगनु रामास्वामी पंजाब गए थे, सड़क के रास्ते, कार में। पंजाब में दो अनुभव ऐसे हुए जिन्हें मैं जीवन भर नहीं भूल सकता। और दोनों ही एक अर्थ में आध्यात्मिक अनुभव थे। एक अनुभव था बटाला कस्बे के चौक पर। पहली बार मुझे मालूम पड़ा कि रीढ़ की हड्डी में ठण्डक दौड़ जाने के मुहावरे का वास्तविक अर्थ क्या होता है। हम लोगों के सामने जा रही एक कार एकाएक रुकी, उसमें से तीन-चार हट्टे-कट्टे नौजवान हाथ में बन्दूकें लिए हुए उतरे और मुझे लगा कि बस हम अभी शहीद होते हैं। दूसरे का शहीद होना बहुत रोमांचक होता है। खुद के शहीद होने की आशंका रीढ़ की हड्डी में ठंडक दौड़ा देती है। यह अनुभव मुझे उस समय पहली बार हुआ।

दूसरा और इतना ही मार्मिक अनुभव दमदमी टकसाल में हुआ। हम लोग जानते हैं कि दमदमी टकसाल खालिस्तानी आंदोलन का नैतिक और बौद्धिक केन्द्र था। हम लोग वहाँ गए। हमारी उस पंजाब यात्रा का उद्देश्य यही था, गांधीजी से बहुत ही तुच्छ, अपने जीवन में, विचार में, बहुत छोटी सी प्रेरणा लेते हुए कि समझने की कोशिश करें कि लोग क्यों मरने और मारने पर उतारू हो जाते हैं। इसलिए हम तरह-तरह के लोगों से मिले पंजाब में, कम्युनिस्टों से, काँग्रेसियों से, भाजपाइयों से और स्वयं उनसे जो स्वतंत्र खालिस्तान के आंदोलन को चला रहे थे। दमदमी टकसाल ऐसे लोगों का केन्द्र था। वहाँ जब हम गए तो उन्होंने हमें विस्तार से खालिस्तानी आंदोलन का तर्क समझाया। लस्सी पिलाई और खालिस्तानी आंदोलन के तर्क को समझाने के लिए लंबे-लंबे भाषण पिलाए। हम लोग काफी डरे हुए थे, काफी घबराहट थी। लेकिन दिलीप अपनी आदत के मुताबिक बहस पर उतारू थे और बहस चल रही थी। उस बहस के बीच एकाएक, उस बैठक में जो सबसे ज्यादा मुखर थे, जो सबसे ज्यादा व्यवस्थित रूप से अपनी बातों को कह रहे थे और बहुत सलीके से हमें ये समझाने की कोशिश कर रहे थे कि खालिस्तानी आंदोलन की सफलता के लिए हिंसा और आतंकवाद क्यों अपरिहार्य हैं; वे एकाएक बिना किसी वजह के, बिना किसी पूर्वापर क्रम के बोले, 'वैसे जी एक बात है। अगर गांधीजी होते तो पंगा सुलट जाता।' हमें यह बात समझ में नहीं आई। पूछा कि आपके कहने का मतलब क्या है? कैसे सुलट जाता पंगा, गांधीजी के होने से? बोले देखो जी ऐसा है कि अगर वे होते तो सारे आतंकवाद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और सारी गोलीबारी के बावजूद आते और अमृतसर में भूख हड़ताल पर बैठ जाते। मेरे लिए ये एक आध्यात्मिक अनुभव था। मैं ऐसा कुछ नहीं कह रहा हूँ कि ये कहने वाला व्यक्ति हिंसा का विरोधी हो गया। मैं ये भी नहीं कह रहा हूँ कि ऐसा कहने वाला व्यक्ति गांधी-मार्ग का पथिक या गांधीवादी हो गया। लेकिन गांधी की राजनीति, गांधी का सामाजिक जीवन, गांधीजी का राजनैतिक जीवन उनके घोर विरोधी के मन में भी संवाद के प्रति आस्था उत्पन्न करता था और करता है। मित्रो! ध्यान देने की बात ये है कि जिस भय की चर्चा मैंने अपनी डायरी के अंशों के हवाले से की वो भय सबसे पहले संवाद की संभावना को ही समाप्त करता है। और उस भय का यह काम केवल एक अनौपचारिक या अनायास काम नहीं है ऐसा भय, संवादहीनता को संभव करने वाला भय— हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए— जान-बूझकर और प्रयत्न पूर्वक उत्पन्न किया जाता है। ये केवल संयोग नहीं है। पिछले 20 बरस में हम जो और अधिक डरे हुए समय में रह रहे हैं; एक ऐसे समय में कि पिछले दिनों लिखी गई एक प्रसिद्ध पुस्तक को याद करें, मार्क युरगेंसमेयेर की पुस्तक, ऐसे समय में जब कि परमात्मा तक के मानस में आतंक का राज है— 'टेरर इन दि माइण्ड ऑफ गॉड।' एक ऐसा समय जिसमें परमात्मा तक आतंकित है और ऐसे समय में मित्रो, इस बात को समझने की और इस बात पर विचार करने की जरूरत है कि हिंसा और अहिंसा; मजबूरी और मजबूती के अन्तः संबंध क्या हैं?

दमदमी टकसाल का जो संस्मरण मैंने सुनाया, उससे ऐसा लग सकता है कि गांधी की महत्ता केवल उनके आत्मबलिदान में है। ऐसा नहीं है। गांधी की महत्ता उनके आत्मबलिदान में, उनके साहस में निश्चित रूप से है लेकिन वो महत्ता उससे कहीं आगे जाती है। गांधी की महत्ता है उनके विचार में, उनकी अन्तर्दृष्टियों में और उनके विवेक में। हमें इस बात को समझना चाहिए। आज के व्याख्यान का जो विषय मैंने चुना 'मजबूती का नाम महात्मा गांधी' उस पर थोड़ा-सा हम ध्यान दें। मजबूत शब्द जबत से बनता है । धीरज, सहन करना, धैर्य के साथ खड़े रहना। मजबूत अनिवार्यतः आक्रमक व्यक्ति को नहीं कहते हैं। मजबूत उस व्यक्ति को कहते हैं जिस व्यक्ति में धीरज हो जिसमें विवेक हो। इस अर्थ में गांधीजी की मजबूती प्रेरणाप्रद है और शिक्षाप्रद है।

मित्रो हमारा समय क्रूर हिंसा के साधारणीकरण और विकेन्द्रीकरण का समय है। और चीजों का विकेन्द्रीकरण हुआ हो या न हुआ हो, सत्ता का, धन का, उद्योग का; लेकिन अपने आसपास के समाज को आप देखें-क्रूरता और हिंसा का अभूतपूर्व विकेन्द्रीकरण हुआ है। अब क्रूरता और हिंसा पर केवल राज्यसत्ता का एकाधिकार नहीं है आज के क्रांतिकारी भी केवल सफाया नहीं करते विधिवत और व्यवस्थित रूप से विस्तृत रूप से यातनाएँ भी देते हैं। वे केवल वर्ग शत्रुओं का सफाया नहीं करते, वे स्कूली बच्चों से भरी हुई बस को भी बमों से उड़ा देते हैं। वे मुखबिरों के हाथ-पाँव काटकर उन्हें जीवन भर तड़पने के लिए छोड़ देते हैं। हिंसा और क्रूरता का ये विकेन्द्रीकरण और हिंसा का ऐसा अभूतपूर्व साधारणीकरण— मार्टिन लूथर किंग की उस प्रसिद्ध चेतावनी की याद दिलाता है। यह एक करुण विडम्बना है कि जिस भाषण में मार्टिन लूथर किंग ने ये बात कही थी, वह उनका अन्तिम भाषण था। मार्टिन लूथर किंग ने कहा था जिस मोड़ पर हम पहुँच चुके हैं उस मोड़ पर दुनिया के लिए चुनाव अब नॉन-वायलेन्स और वायलेन्स के बीच में नहीं है। अब चुनाव नॉन-वायलेन्स और नॉन-एग्जिस्टेंस के बीच में है। आप हिंसा और अहिंसा में से एक को नहीं चुन सकते। आपको अहिंसा और सर्वनाश के बीच में से एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को चुनना है।

गांधीजी ये बात बार-बार कहा करते थे कि 'सत्य और अहिंसा— मैं कोई नयी बात नहीं कह रहा हूँ। सत्य और अहिंसा तो शाश्वत हैं। टुथ एण्ड नॉन वायलेन्स आर ऐज ओल्ड एज हिल्स।' मैं सत्य के बारे में अभी नहीं कहना चाहता मित्रो! कुछ भी। विषय और समय दोनों की सीमा है। लेकिन अहिंसा के प्रसंग में मैं ये दृढ़तापूर्वक कहना चाहता हूँ कि उनका यह कहना कि- अहिंसा का विचार शाश्वत है, मैं कुछ नया नहीं कह रहा-ये गांधीजी की विनम्रता है और इसे शब्दशः नहीं लिया जाना चाहिए। जिस अर्थ में गांधीजी अहिंसा की बात करते हैं वह मानवीय विचार के इतिहास में सर्वथा अभूतपूर्व और मौलिक है। गांधीजी की अहिंसा केवल परंपरा से चली आ रही धार्मिक अहिंसा का विस्तार भर नहीं है। इस बात को कुछ अच्छी तरह हमें समझना चाहिए. हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि संसार के सभी धर्मों में अहिंसा अन्ततः एक आदर्श है, एक आइडियल है। जिसे पाने का आपको प्रयत्न करना चाहिए, और जिसको न पाने की स्थिति के जस्टिफिकेशन हमेशा आपके पास तैयार रहते हैं। गांधीजी के लिए अहिंसा केवल आदर्श नहीं है। गांधीजी के लिए अहिंसा आपके दैनंदिन जीवन की— सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन की— बुनियादी कसौटी है। गांधीजी के लिए अहिंसा केवल आइडियल नहीं है। गांधीजी के लिए अहिंसा बुनियादी जीवन मूल्य है। और इस दृष्टि से गांधीजी की अहिंसा पारंपरिक धार्मिक अहिंसा से कहीं आगे की चीज है।

हमें ये भी समझना चाहिए कि संसार के सभी धर्मों में पवित्र और अपवित्र दो प्रकार की हिंसा पाई जाती है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' यह बात किसी न किसी रूप में, अपने किसी न किसी सांस्कृतिक अनुवाद में संसार की हर धर्म परंपरा में पाई जाती है। पिछले दिनों मैंने एक फ़िल्म देखी थी। बोरिस्लाव सरावियेव-बल्गारिया के फ़िल्मकार हैं, उनकी फ़िल्म थी— 'बोरिसः दि लास्ट-पेगन।' आज के बल्गारिया का कोई राजा था, आठवीं-नवीं सदी में, जो क्रिश्चियन हो गया था और इसलिए वह था— लास्ट-पेगन। उसके बाद क्रिश्चियनिटी का राज हो गया— बल्गारिया में। ये बोरिस जब क्रिश्चियन हो जाता है, तो उसके बाद जाहिर है कि सभी को चाहिए कि क्रिश्चियनिटी स्वीकार कर लें, कन्वर्ट कर लें। और एक दृश्य है फ़िल्म में हम देखते हैं कि बहुत सारे लोगों को यातना दी जा रही है, बहुत सारे लोग-पीड़ित हैं, बोरिस अपने सेनापति से कहता है-'तुम ने तो कहा था, सभी को छोड़ दिया गया है, सभी ईसा की शरण में आ गए हैं।' सेनापति जवाब देता है, 'हाँ मैंने कहा था कि सभी ईसा की शरण में आ गए हैं। मैंने मनुष्यों के बारे में कहा था। ये लोग तो असल में शैतान की औलाद हैं, दे आर पजेस्ड बाई डेविल।' जो मनुष्य थे, आल द पीपुल हेव कनवर्टेड— जो डेविल द्वारा पजेस्ड हैं वो कनवर्ट क्या करेंगे— और इसलिए उनके साथ होने वाला अत्याचार जायज है। श्रीलंका के इतिहास में और लोक कथाओं में एक बहुत ही मार्मिक दृष्टान्त मिलता है। एक बौद्ध राजा अपने साम्राज्यवादी युद्ध के बाद के पछतावे में घिर गया कि ये मैंने क्या किया वो भी बौद्ध होते हुए। तो उसके बौद्ध धर्माचार्यों ने उसे समझाया कि असल में इस युद्ध में केवल दो ही मनुष्य मारे गए हैं क्योंकि वही दो थे जो कि संघ के शरण में आए थे। बाकी जो मारे गए हैं उनके मरने जीने की चिन्ता आपको नहीं करनी है। ऐसे उदाहरण संसार के हर धर्म से दिए जा सकते हैं संसार का हर धर्म पवित्र और अपवित्र हिंसा के बीच अंतर करता है। संसार का हर धर्म वध और हत्या के बीच अंतर करता है। हत्या अस्वीकार्य है, वध न केवल स्वीकार्य है बल्कि कई स्थितियों में करणीय है। गोडसे के बयान का अर्थ समझना चाहिए। गोडसे जब भी हिन्दी या मराठी बोलता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

था, कभी वो हत्या शब्द का प्रयोग नहीं करता था। गोपाल गोडसे की पुस्तक का शीर्षक ही है 'गांधी वध आणि मी'। वध नैतिक रूप से स्वीकृत, नैतिक रूप से मान्य प्राणहरण की चेष्टा है जो कि कई बार जरूरी हो जाती है। और इसलिए अहिंसा वहाँ तक ठीक है जहाँ तक कि वो हमारे विचारों, हमारी धारणाओं, हमारी आस्थाओं के अनुकूल हो। अहिंसा अपने आप में कसौटी नहीं है। बल्कि ऐसी प्रविधि है, ऐसी मान्यता है जिसे हमें आस्था की कसौटी पर कसना है।

तीन-चार बरस पहले समाजशास्त्री बैरिंग्टन मूर ने बहुत ही विचारोत्तेजक अध्ययन किया है, 'मॉरल प्यूरिटी ऐंड पर्सिक्यूशन इन हिस्ट्री'-इतिहास में नैतिक शुद्धता और उत्पीड़न। उस अध्ययन को करते हुए बैरिंग्टन मूर खास करके एकेश्वरवादी धर्मों के प्रति बहुत सख्त निष्कर्ष पर पहुँचे हैं वे लिखते हैं, तुलना करते हैं पूर्वी धर्मों के साथ एकेश्वरवादी धर्मों की, और उसमें जो बात वे कहते हैं, उसमें से कम से कम एक वाक्य ऐसा है जिस पर उन लोगों को खास करके ध्यान देना चाहिए, जो अपने आप के हिन्दू होने को बड़े आक्रामक गर्व का विषय बनाते हैं। बैरिंग्टन मूर लिखते हैं अपनी पुस्तक के निष्कर्ष के रूप में-'इस लेखक को सर्वाधिक चकित कर देने वाली मुख्य खोज यही है कि नैतिक शुद्धता की सैद्धान्तिकी और उसका व्यवहार एकेश्वरवादी धर्मों यहूदी, ईसाइयत और इस्लाम तक सीमित है। पश्चिम के सम्पर्क में आने के पहले पूर्वी समाजों में नैतिक शुद्धता प्रेरित उत्पीड़न था जरूर लेकिन बहुत कम। लेकिन जैसा कि माओवाद के तीव्र विकास ने दिखाया है विश्वास और सामाजिक संगठन की पूर्वी व्यवस्था का पतन नैतिक शुद्धता के सर्वाधिक क्रूर रूपों की जमीन तैयार कर देता है। ऐसे नैतिक शुद्धता प्रेरित उत्पीड़न की संभावना सिद्धान्ततः जहाँ सबसे कम है उस हिन्दू धर्म में भी, जैसे क्रूरता में दूसरों को पीछे छोड़ देने की होड़ शुरू हो गई है। उस घिसी पिटी भविष्यवाणी— कि पूर्व और पश्चिम कभी नहीं मिलेंगे— को जैसे झुठलाते हुए पूर्व और पश्चिम बीसवीं सदी में मिल गए हैं इतिहास की सर्वाधिक क्रूर हिंसा और भयानक यंत्रणा को संभव करने के लिए।'

यह बैरिंग्टन मूर ने सन् 2000 में लिखा। 'मॉरल प्यूरिटी ऐंड पर्सिक्यूशन' में। बैरिंग्टन मूर स्वयं एकेश्वरवादी परंपरा के भीतर हैं इसलिए उस परंपरा के प्रति उनका आक्रोश समझ में आता है। एकेश्वरवादी परंपराओं के बाहर के लोगों को इस आक्रोश से अपने अच्छे चालचलन के प्रमाणपत्र नहीं खोजने चाहिए। बल्कि ऐसे ही विवेक और आक्रोश के साथ अपनी परंपरा पर उतना ही निर्मम दृष्टिपात करना चाहिए जितना बैरिंग्टन मूर ने किया है।

एक बात स्पष्ट है कि और मामलों में हो या न हो, लेकिन पवित्र हिंसा और अपवित्र हिंसा के बहुत शुद्ध विभाजन के मामले में संसार के सभी धर्मों में सचमुच सच्चा सर्वधर्म समभाव पाया जाता है। सभी धर्म पवित्र और अपवित्र हिंसा में भेद करते हैं। और केवल धर्म ही नहीं धर्मनिरपेक्ष विचार भी। पवित्र हिंसा पर केवल धर्मों की कोई बपौती, कोई एकाधिकार नहीं है। अलजिरिया में चल रहे स्वाधीनता संग्राम के दौरान थाँज फैनन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक लिखी थी 'रेचेड ऑफ दि अर्थ' उसकी सबसे महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक स्थापना थी 'उत्पीड़ित की हिंसा उसकी खोई हुई मानवता को फिर से वापस लाने का अनुष्ठान है। और इस अर्थ में वह अत्यन्त पवित्र और जरूरी है।' फैनन एक मायने में बहुत मौलिक

OC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बात कह रहे थे। लेकिन एक मायने में वो समूची वामपंथी परंपरा को उसके स्वाभाविक नैतिक निष्कर्ष पर पहुँचा रहे थे। वर्ग संबंधों के रूपांतरण के लिए, क्रांति के लिए हिंसा अपरिहार्य है। यह एक बुनियादी मान्यता है जिसको फैनन ने बहुत ही चार्ज्ड एटमॉसफीयर में एक नए नैतिक चार्ज के साथ भर दिया।

मित्रो, फैनन हों या कार्ल मार्क्स हों या कोई और इनमें से कोई भी व्यक्तिगत रूप से कोई क्रूरकर्मा व्यक्ति नहीं था। ये लोग हिंसक या हत्यारे लोग नहीं थे। ये सब डीसेन्ट लोग थे। बहुत ह्यूमन लोग थे। और इसीलिए हिंसा की समस्या ज्यादा गहरे विचार की मांग करती है। इस बात को भी हम लोग याद करें कि जिसे हम चिन्ताजनक हिंसा मानते हैं, मानव के इतिहास में देखें तो उससे कहीं ज्यादा चिन्ताजनक हिंसा वह है जिसे हम बड़ी स्वाभाविक और पवित्र हिंसा मानते हैं। अगर समूचे मानव इतिहास में हुई हिंसा-हत्याओं, वधों, बलात्कारों, लूट-पाटों— का कोई विवरण तैयार किया जाय तो व्यक्तिगत उन्माद के कारण हुयी हिंसा किसी न किसी श्रेष्ठ और पवित्र, उद्देश्य के लिए हुई हिंसा के पासंग भी नहीं है। सारे साल में किसी प्रांत में छः या सात सौ से ज्यादा कत्ल हो जाते हैं तो पुलिस और गृहमंत्री के पीछे जनमत पड़ जाता है। लेकिन एक नगर में तीन दिन में जब 2700 लोग मार डाले जाते हैं क्योंकि वो गलत धर्म से ताल्लुक रखते थे, तो यह उस तरह से कानून और व्यवस्था और नैतिक चिन्ता का विषय नहीं है। लोकतांत्रिक देश के प्रधानमंत्री को सार्वजनिक रूप से यह बात कहने में इक्कीस वर्ष लगते हैं कि जो सन् 84 में हुआ, वह शर्मनाक है। शर्मनाक तो वो सन् 84 में भी था, लेकिन यह कहने का साहस जुटाने में इस समाज को, इस राज्यतंत्र को इक्कीस साल लगे।

इसलिए हिंसा गहरे विचार की माँग करने वाला विषय है। संगठित और सोद्देश्य हिंसा की असल में एक प्रतीकात्मक शक्ति होती है। हमारे एक मित्र बहुत ही रोचक चुटकुला सुनाते हैं; बड़ा मानीखेज चुटकुला है— एक मजिस्ट्रेट की अदालत में एक थानेदार साहब ने एक चोर को पेश किया। कहा हुजूर मैंने इसको पकड़ा है। चोर था एकदम छरहरा, फुर्तीला और थानेदार साहब थे खूब मोटे, थुलथुल। मजिस्ट्रेट को यह देखकर हँसी आ गई। उन्होंने कहा कि इस चोर को आपने पकड़ा है। ये जो भागने लगे तो कहीं का कहीं पहुँचेगा और आपके लिए एक कदम भी उठाना मुश्किल है। आपने कैसे पकड़ लिया इसको? तो थानेदार साहब ने कहा, हुजूर हुकूमत दौड़ कर नहीं चलती इकबाल से चलती है। मैंने एक बार कह दिया खबरदार। खड़ा रहना, हिलना नहीं। इसकी मजाल थी कि हिल जाता अपनी जगह से। संगठित और सोद्देश्य हिंसा असल में इकबाल का मामला है। हिंसा की सजेस्टिव पावर महत्वपूर्ण होती है। और गांधीजी की मजबूती की बात जब हम करते हैं तो बहुत सीधी सी बात हमारे सामने है, गांधीजी की और लाखों असफलताओं की चर्चा की जा सकती है। गांधीजी के बहुत सारे काम विवादास्पद रहे हों। एक इतने लंबे सार्वजनिक जीवन में विवाद होना स्वाभाविक है। लेकिन इस बात से तो संभवतः गांधीजी का घोर विरोधी, घोर आलोचक भी इन्कार नहीं करेगा कि गांधीजी ने इंपीरियल पावर की हिंसा की सजेस्टिव ताकत को, उसके इकबाल को खत्म कर दिया। तोड़ दिया उन्होंने हिंसा की उस ताकत को।

हिंसा— संगठित और सामूहिक हिंसा— इकबाल इसलिए बन पाती है, सजेस्टिव पावर वो इसलिए अख्तियार कर पाती है कि अन्ततः हिंसा मनुष्य की आत्म-निर्वासन की, उसके सेल्फ ऐलिनियेशन की [illegible] और सार्वजनिक आत्मघातीकृत अभिव्यक्ति है। अपने आप से अलग हुए बिना, अपनी मनुष्यता से दूर हुए बिना आप न हिंसा कर सकते हैं और न हिंसा को उचित ठहरा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सकते हैं। इसीलिए आपको कहना पड़ता है कि क्या करें हम मजबूर हैं। हमें ग्यारह लड़के मार डालने पड़े गोली चला कर 30 सितम्बर के दिन क्योंकि हम मजबूर थे। हम नार्थ ईस्ट जैसे सेन्सेटिव प्रान्त में, सेन्सेटिव जगह में, मेघालय जैसे सेन्सेटिव प्रांत में स्टेट की सिक्यूरिटी के लिए कोई रिस्क नहीं लेना चाहते थे। हमें निर्दोष लोगों से भरी हुई बस को बम से उड़ा देना पड़ा क्योंकि हम मजबूर थे; हमारी जमीन पर किसी विदेशी साम्राज्य ने कब्जा कर रखा है और हम मजबूर हैं हमारी कोई सुनने वाला नहीं।

इस मजबूरी को सचमुच सहानुभूति से समझने की जरूरत है। ये मजबूरी इस बात की ओर संकेत करती है कि हिंसा सेल्फ एलिएनेशन की सर्वाधिक सघन अभिव्यक्ति है। हिंसा आत्म-निर्वासित मनुष्य की सबसे करुण अभिव्यक्ति है। इसलिए भी इस बात पर गहराई से विचार करने की जरूरत है कि हिंसा क्या है और क्यों है? जाहिर है कि सवाल यह भी उठता है कि अहिंसा क्या है? बहुत से लोग कुछ इस तरह बात करते हैं जैसे कि गांधीजी इतने भोले रहे हों कि इतनी मोटी सी बात भी न जानते हों कि जीवै जीव अहारा! कुछ लोग ऐसे बात करते हैं कि अहिंसा कैसे संभव है? शाकाहारी लोग इस बात का दावा कर सकते हैं कि हम अहिंसक हैं लेकिन प्राण तो वनस्पति में भी होते हैं। तो भोजन करना हिंसा है। कहीं उठना और बैठना हिंसा है। सभी जगह हिंसा भरी हुई है आप कैसे अहिंसा की बात करते हैं। कुछ लोग अहिंसा को खुद एक तरह की आक्रामकता में तब्दील कर देते हैं। पशु प्रेम और शाकाहारवाद इतनी भयानक चीज बन जाती है कि मेरे जैसे शाकाहारी को उससे उलझन होने लगती है। ऐसे ही लोगों में से कुछ लोग गांधीजी को दूसरों की नैतिक न्यूनता दिखाने के दर्पण में बदल देते हैं। बजाय इसके कि दूसरों को उनकी संभावनाएँ दिखाने वाली विधि के रूप में आप गांधीजी को बदलें, आप दूसरों को उसकी नैतिक न्यूनता दिखाने, उनको नैतिक आत्मविश्वासहीनता के रोग का मरीज बनाने के काम में गांधीजी को लाते हैं। अरे आप कैसे गांधी की बात कर सकते हैं आप तो सिगरेट पीते हैं। आप कैसे गांधी की बात कर सकते हैं आप तो मिल के कपड़े पहनते हैं। आप कैसे गांधीजी की बात करते हैं आप तो ऐसे करते हैं। वैसा करते हैं। आप कैसे गांधीजी की बात करते हैं आप तो वामपंथी हैं!

इस तरह की स्थितियों से मैं समझता हूँ कि गांधीजी स्वयं गहरे में वाकिफ थे। उन्होंने बारंबार दो बातों को स्पष्ट किया है। एक यह कि अहिंसा और कायरता पर्यायवाची नहीं हैं। कायरता की मूल प्रेरणा वस्तुतः वही है जो हिंसा की मूल प्रेरणा है। आक्रामकता किसी भी कीमत पर अपने आपको बचाए रखने की प्रेरणा से उत्पन्न होती है। और इसी प्रेरणा से कायरता उत्पन्न होती है। जब आप दूसरे को ध्वस्त करके अपने आप को नहीं बचा सकते तो भाग करके अपने आपको बचा लें! हिंसा और कायरता परस्पर पूरक हैं। गांधीजी गहरे में इस बात को जानते थे। बिलकुल ठीक जानते थे कि अहिंसा और कायरता पर्यायवाची नहीं हैं बल्कि दोनों परस्पर कतई विरोधी नैतिक मनोदशाएँ हैं।

(गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली में 2 अक्टूबर 2005 को दिए गए व्याख्यान पर आधारित)

(शेष अगले अंक में)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विचार

सामयिक समाज के अन्तर्द्वन्द्व और हमारी भूमिका

मुहम्मद कमाल

समाज का अस्तित्व, अर्थ और महत्व उसकी सामाजिकता में है। सामाजिकता को अक्षुण्ण और चिरन्तन बनाये रखने के लिए सबसे बुनियादी शर्त है-मानवीयता। मानवीयता से रहित समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मानवीयता की प्राणशक्ति का संपूर्ण सम्भार जिन पर टिका हुआ है, उनमें मुख्य हैं-इतिहासबोध, वैचारिकता और संवेदनशीलता। भूमण्डलीकरण एक प्रकार का नया विश्व-साम्राज्यवाद या विस्तारवादी पूँजीवाद है, इसमें दो राय नहीं हो सकती। इसके विस्तार-मार्ग में इतिहास और विचारधारा सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। इसलिए इस विस्तार का प्रारम्भ ही इतिहास और विचारधारा के अन्त की उद्घोषणाओं के साथ हुआ है। इतिहास और विचारधारा की उपस्थिति जब शून्य हो जायेगी तो भूमण्डलीकरण की शैतानी शक्तियाँ अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप देश और दुनिया के समाज को गढ़ पायेंगी। वह समाज कैसा होगा? निश्चित रूप से ऐसा होगा जिसमें संस्कृति, संवेदना और विचारशीलता की जगह पर अन्धी व्यावसायिकता, संकीर्णता और घनघोर विषमता होगी। गोया वह समाज बाज़ार होगा और उसका मनुष्य होगा-उपभोक्ता-मात्र। ज़ाहिर है, ऐसे बाज़ारीकृत समाज का न तो कोई अन्तः होगा और न कोई अन्तर्द्वन्द्व ही। उसमें सहयोगिता नहीं होगी, प्रतियोगिता होगी। प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्द्धा का मारा हुआ मनुष्य भीतर से इतना बदल जायेगा कि वह फिर से असभ्य और बर्बर हो जायेगा। मनुष्य के लिए नयी आचार-संहिताएँ गढ़ी जायेंगी, जिनमें मनुष्य विषमता और बर्बरता पर लज्जित नहीं, गर्वित होगा। विचारहीनता विचार होगी और संस्कृति-विहीनता संस्कृति हो जायेगी। समाज और मनुष्य का ऐसा भयावह विद्रूप अब धीरे-धीरे प्रकट हो रहा है।

भूमण्डलीकरण के मूल में उत्पादन-पूँजी नहीं, वित्तीय पूँजी का अर्थशास्त्र है। यह पूँजी अपने चरित्र में बहुत चंचल, शोख और आवारा क़िस्म की होती है, जो किसी देश की सीमा नहीं मानती, सम्पूर्ण विश्व में 'उदारीकरण' (?) से सम्बलित होकर व्याप्त है। इस वित्तीय पूँजी की दुर्दमनीय अपेक्षाओं ने एक तरफ़ यदि बाज़ार को सर्वशक्तिमान् बनाया है, तो दूसरी तरफ़ राष्ट्र-राज्य के वर्चस्व को महिमा-मण्डित किया है। बाज़ार और राष्ट्र-राज्य के पारस्परिक मायावी (जटिल) सम्बन्धों ने ऐसी अर्थ-व्यवस्था का निर्माण किया है, जिसे यदि 'क़र्ज-व्यवस्था' का नाम दिया जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए। एक ज़माना था, जब क़र्ज़ लेना दुःख और दुर्भाग्य का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूचक हुआ करता था। लेकिन आज के दौर में कर्ज़ सुख और सौभाग्य का प्रतीक है। ऐसे दिनों में दुर्लभ है वह व्यक्ति जिसने कर्ज़ न लिया हो। कर्ज़ और सूद को निकाल दीजिए, अर्थ-व्यवस्था व्यर्थ हो जायेगी। मौजूदा अर्थ-व्यवस्था के भीतर जो तंत्र या संजाल है, वह कर्ज़ की कालिख से लिखा हुआ या पुता हुआ है। इस अर्थ-व्यवस्था की सारी चमक-दमक और शान-शौकत क़र्ज़ के दम से है। कोई किसान अपने महाजन से कर्ज़ लेता है तो लिखित रूप से कई शर्तों को स्वीकार कर लेता है। फिर धीरे-धीरे वह कर्ज़ उसके लिए फाँसी का फंदा बन जाता है। गोदान का होरी कर्ज़ का मारा हुआ है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद और देशी सामन्तीय तंत्र की छत्रछाया में पलने-पुसने वाले छोटे-छोटे सूदखोर महाजन होरी-जैसे किसानों के लहू की एक-एक बूँद निचोड़ लेना चाहते हैं। होरी की मौत कर्ज़ की बलि-वेदी पर होती है, जो वस्तुतः अकेले होरी की नहीं, चालिस के दशक में मज़दूर या भूमिदास (बँधुआ) हो जाने के लिए अभिशप्त भारतीय किसानों की मौत है। यह मौत प्रायोजित हत्या की तरह है जिसका षड्यंत्र तत्कालीन ब्रिटिश राज-सत्ता और औपनिवेशिक व्यवस्था ने रचा था। आज भूमण्डलीकरण के भयावह पंजे में फँसा हुआ सारा हिन्दुस्तान होरी-जैसा ही लग रहा है। समाज का प्रायः हर वर्ग क़र्ज़ की गिरफ़्त में है। लेकिन, इसका सबसे विनाशकारी परिणाम भोगना पड़ा है-निम्न-मध्यवर्गीय किसानों को। दुःखद आश्चर्य का विषय है कि आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब आदि जो देश के अपेक्षाकृत समृद्ध प्रदेश हैं, उनमें असंख्य किसानों ने क़र्ज़ की परेशानियों से तंग आकर आत्महत्याएँ की हैं। आत्महत्याओं का यह भयानक सिलसिला सरकारी उपक्रम और घोषणाओं के बावजूद जारी है। होरी-जैसे किसानों की मृत्यु जिसे समाजार्थिक कारणों से महाकाव्यात्मक कहा गया है, का वास्तविक अर्थ अब खुलने लगा है। प्रेमचंद की प्रासंगिकता क्या है? अब समझ में आने लगा है। भूमण्डलीकरण का यह अर्थ-तंत्र (क़र्ज़-तंत्र) सम्पूर्ण रूप से किसान-मजदूर वर्ग का विरोधी ही नहीं जानलेवा है। तथाकथित विश्व-ग्राम वस्तुतः विश्व-नगर है जिसमें व्यापारी, उद्योगपति, नौकरशाह, नौकरीपेशा, शेयरदलालों, फटकेबाजों आदि-आदि के लिए तो जगह है, लेकिन किसानों-मजदूरों के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। महाग्राम कहे जाने वाले देश की प्राणशक्ति रहे हैं-ये किसान जो भूमण्डलीकरण की अनर्थ-व्यवस्था से बिल्कुल बाहर हैं। आज ये किसान जितने अकेले और असहाय हुए हैं, उतने पहले कभी नहीं हुए थे, प्रेमचंद के समय में भी नहीं। पूरी सभ्यता को इतिहासविहीन, स्मृतिविहीन और विचारविहीन बनाने के साथ-साथ किसान-मज़दूरों के उत्पादक-वर्ग को जीवनविहीन कर देने का सबसे बर्बरतापूर्ण आयोजन कर रहा है यह भूमण्डलीकरण। आज तीसरी दुनिया के अधिकांश देश क़र्ज़ के शिकंजे में फँसे हुए हैं। उन देशों की हालत बहुत-कुछ उन भारतीय किसानों से मिलती-जुलती है। मार्ग्रेट कैनेडी नामक जर्मन महिला ने एक किताब लिखी जिसमें उन्होंने कहा है कि आज दुनिया पर वित्तीय पूँजी का जो प्रभुत्व चल रहा है। उसकी सबसे बड़ी ताकत है- 'कंपाउंड इंटरेस्ट' जिसे हिंदी में चक्रवृद्धि ब्याज कहते हैं। यह ब्याज इतनी तेज़ी से बढ़ता है कि आप उससे कभी पार नहीं पा सकते। अन्तर्राष्ट्रीय क़र्ज़ की गिरफ्त से छुटकारा दो ही स्थितियों में मिल सकती है-एक तो यह कि जब आपके सारे संसाधन समाप्त हो जायेंगे, तो वित्तीय पूँजी अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर चली जायेगी। अपना तो वह कुछ लायी थी नहीं, खोदा-खादा और जब कुछ न बचा तो वहाँ रफुचक्कर! बहुत से अफ़्रीक़ी और लैटिन अमेरिकी देशों का अनुभव कुछ ऐसा ही रहा है। दूसरी स्थिति यह हो सकती है कि जिन्होंने हमें क़र्ज़ के शिकंजे से जकड़ रखा है, उन से हम कह दें कि भैया, हमारे ऊपर आपका कोई कर्ज़ बकाया नहीं आता। अब सवाल यह उठता है कि यदि आप विदेशी क़र्ज़ की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE 2025 Grant.

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समाप्ति के लिए इकतरफ़ा घोषणा करते हैं तो क्या अमेरिकी विमान आपके ऊपर बम बरसाने आ जायेंगे? उसके बारे में यह है कि जब ऐसा होगा, तब देखा जायेगा। लेकिन अन्ततः आपको यह मानने से इन्कार करना होगा कि आप पर कोई क़र्ज़ नहीं है। अन्यथा, बमबारी न होने पर भी आप मारे जायेंगे, क्योंकि वित्तीय पूँजी का एकमात्र उद्देश्य है-संसाधनों पर क़ब्ज़ा करना और मानव-शक्ति का शोषण करना। यह काम वह बाजार के माध्यम से करती है। यदि बाज़ार की पकड़ से संसाधनों को न बचाया गया तो वे गरीब देशों के हाथ से निकल कर अमीर देशों के हाथों जाते रहेंगे और इस तरह वित्तीय पूँजी शक्तिशाली बनी रहेगी।

वित्तीय पूँजी की शक्ति का आधार बाज़ार है। पूँजीवाद का पुराना सपना रहा है कि सारे विश्व को बाजार के रूप में देखा और संचालित किया जाय। वह सपना साकार होता नज़र आ रहा है। वित्तीय पूँजी ने बाज़ार के माध्यम से विश्व-विजय कर लिया है। नव-उदारवादी आर्थिक विकास का मार्ग अपनाने से समाज के अंदर और देश के विभिन्न क्षेत्रों में विषमता बढ़ रही है। इस विषमता, को महिमामण्डित किया जा रहा है। मार्ग्रेट थैचर ने कभी स्पष्ट शब्दों में कहा था कि हमें विषमता के कारण शर्म नहीं, बल्कि गर्व महसूस करना चाहिए, क्योंकि इसके कारण, प्रतिभा और योग्यताओं को कोटिक्रम से मान्यता दी जाती है। विकास की प्रक्रिया में समाज के जो लोग और देश के जो क्षेत्र पिछड़ रहे हैं, उनकी क़िस्मत पर रोना या फिर उन्हें ऊपर लाने के लिए प्रयास करना निरर्थक है। धीरे-धीरे यह स्वीकार किया जाने लगा है कि दुनिया में दो सभ्यताएँ पैदा हो रहीं हैं। एक सभ्यता वह है जो साबइरस्पेस के इलेक्ट्रानिक दरवाज़े के अंदर है तो दूसरी उसके बाहर। दोनों में विषमता और अलगाव बढ़ने से टकराव अवश्यम्भावी है। फ्रिडमैन ने मिस्र में जो अनुभव किया, उसे एक देश, दो दुनिया का नाम दिया। इन दो दुनिया के बीच लगभग चार हजार वर्षों का फ़र्क़ है। मिस्र की अधिकांश जनसंख्या 2000 ई. पू. में है तो थोड़े से लोग इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश कर चुके हैं। यह फ़र्क़ अपने देश में भी क्या नई दिल्ली और बस्तर, बंगलोर और कालाहांडी तथा हैदराबाद और उससे थोड़ी दूर पर स्थित रामागुंडा गाँव के बीच नहीं है? ऐसा नहीं है कि यह विषमता पहले नहीं थी। लेकिन अभी यह जितने भयानक रूप में है, उतना पहले कभी नहीं थी। कहना न होगा कि इसी कारण पूँजी की ताक़त और निरंकुशता में भारी वृद्धि होती है और आम जनता विशेषकर श्रमजीवी वर्ग की स्थिति कमज़ोर हो जाती है। वे राज्य के सामने भी कोई गुहार नहीं लगा सकते, क्योंकि राज्य बाज़ार के समक्ष एक नपुंसक संस्था है। ऐसी स्थिति में अगर आतंकवाद, धार्मिक कट्टरता और अपराध पनपें तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। जब युवक-युवतियों को अपनी क्षमता और योग्यता के अनुसार अर्थव्यवस्था में योगदान करने और जीविकोपार्जन करने का अवसर नहीं दिया जाएगा तो वे क्या करेंगे? नब्बे के दशक के प्रारम्भ में जब से भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई है, निजीकरण तेज़ हुआ है, रोज़गार के अवसर घटे हैं, बेरोजगार युवक-युवतियों की संख्या बढ़ी है, तमाम दावों के बावजूद आर्थिक संवृद्धि की दर घटी है। माफ़िया पूँजीवाद का दबदबा बढ़ा है। क्षेत्रीय और सामाजिक विषमता बढ़ी है। मण्डल आयोग की सिफारिशें निरर्थक हो गयी हैं। गरीबी-निवारण के कार्यक्रम ठंडे बस्ते में चले गये हैं। छोटे और घरेलू उद्योग बंद हो रहे हैं। अनेकानेक भारतीय स्वामित्व वाली औद्योगिक इकाइयों में ताला लग चुका है। भ्रष्टाचार हावी होता जा रहा है। शिक्षा और स्वास्थ्य-सेवाएँ आम आदमी की पहुँच से बाहर जा रही हैं। परम्परागत शिक्षा व्यर्थ होती जा रही है और नये कौशल देने वाली शिक्षा निम्न-मध्यवर्गीय परिवार के बच्चों के बूते से बाहर है। प्रायः विद्वान और अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में आर्थिक संवृद्धि का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो कार्यक्रम चल रहा है, उससे देश की अर्थ-व्यवस्था कमज़ोर हुई है और समाज में विषमता बढ़ी है। इस विषमता ने एक नये मध्यवर्ग को जन्म दिया है, जो अपने चरित्र में अत्यन्त स्वार्थी और असंस्कृत है। बीसवीं शताब्दी में पूँजीवाद के चरित्र में परिवर्तन हुआ और वस्तुओं के उत्पादन का भाग सकल राष्ट्रीय उत्पादन में घटने लगा और सेवाओं का अनुपात बढ़ने लगा। उत्पादन के क्षेत्र में हुए इस परिवर्तन के कारण सामाजिक संरचना का स्वरूप भी बदला। परम्परागत या पुराने मध्यवर्ग का महत्व घटा और नवोदित मध्यवर्ग का सितारा चमका। इस नये मध्यवर्ग में सेवाओं के उत्पादन से जुड़े लोग शामिल थे। जैसे-क्लर्क, सुपरवाईज़र, तकनीकी कर्मी, अध्यापक, डॉक्टर, वकील, सरकारी अधिकारी, वैज्ञानिक आदि। इस नये मध्यवर्ग के उदय पर हेरॉल्ड पर्किन ने अपनी पुस्तक 'द थर्ड रिवोल्युशन: प्रोफेशनल एलिट्स इन द मॉडर्न वर्ल्ड लंदन, 1996' में विस्तार से लिखा है। उनके अनुसार मानव इतिहास में अब तक तीन प्रमुख क्रान्तियाँ हुई हैं। पहली थी नव पाषाण क्रान्ति जिसके परिणामस्वरूप लोगों ने अपना घुमन्तू जीवन छोड़ा और एक जगह बस कर खेतीबारी शुरू की। कालक्रम में दस्तकारों, पुरोहितों, योद्धाओं और शासकों का उदय हुआ। नगर बसे तथा सभ्यता का विकास हुआ। दूसरी थी औद्योगिक क्रान्ति जिसके कारण राष्ट्रीय उत्पादन तथा कुल श्रम-शक्ति में कारखाना आधारित औद्योगिक उत्पादन, परिवहन और शहरी सेवाओं का अनुपात बढ़ा। तीसरी क्रान्ति बीसवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुई, जो अब भी जारी है। इस क्रान्ति से कृषि और उद्योग के क्षेत्रों में उत्पादकता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इस कारण सेवाओं के क्षेत्र का अकल्पनीय विस्तार हुआ है तथा एक नये पेशेवर (प्रोफेशनल) समाज का निर्माण हुआ है। इस समाज में सेवाओं के क्षेत्र से जुड़े अत्यन्त दक्ष लोगों का दबदबा है। ये लोग प्रशासनतंत्र और प्रबन्धन से लेकर मेडिसिन, शिक्षा, अवकाश, मनोरंजन तथा वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्षेत्रों से जुड़े हुए हैं। इनका जीवन-स्तर इतना ऊँचा है और इनको ऐशोआराम की जो चीज़ें प्राप्त हैं उनकी कुछ दशकों पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

निजी क्षेत्रों में कार्यरत पेशेवर लोग इतने प्रबल हुए कि उन्होंने शेष समाज को जीत लिया है। हम अपने यहाँ सूचना और प्रबंधन-प्रौद्योगिकी से जुड़े लोगों के बढ़ते महत्व को देख रहे हैं। विश्वविद्यालय में अध्यापन करते हुए करीबन सात-आठ वर्ष हो रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों से यह अनुभव हो रहा है कि अब विद्यार्थियों की महत्त्वाकांक्षा आई.ए.एस. या प्राध्यापक बनने की नहीं रही। वे सूचना और प्रबंधन प्रौद्योगिकी की ओर अधिक आकृष्ट हो रहे हैं। इसीलिए परम्परागत विषयों जैसे-साहित्य, इतिहास, दर्शन, राजनीतिशास्त्र, वनस्पति शास्त्र, रसायनशास्त्र आदि की पढ़ाई वे बाध्य होकर ही करते हैं। आज के मध्यवर्ग से आये छात्र-छात्राओं में प्रतिभा-पलायन की प्रवृत्ति चरम पर है। प्राय: छात्रों का स्पप्न यूरोप और अमेरिका में बसा रहता है।

आज राष्ट्रीय आय का बड़ा हिस्सा नये पेशेवर लोगों को ही मिल रहा है। आज इन्हें जो वेतन और भत्ते मिल रहे हैं उनकी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। यह एक खतरनाक प्रवृत्ति है, क्योंकि इससे समाज में आय और सम्पत्ति के वितरण में विषमता बढ़ती है जो तरह-तरह के अपराधों को जन्म दे सकती है। यह एक तरह से समाज के लिए आत्मघाती या स्वविनाशकारी प्रवृत्ति है. अभी जिन पेशेवर लोगों का समाज पर दबदबा बढ़ रहा है उनकी शक्ति, प्रतिष्ठा, प्रभाव और ऊँची आय का राज है- शिक्षा, प्रतिभा, अनुभव और ज्ञान पर अधिकार। यह एक बड़ी मानव-पूँजी है, जो एक विरल संसाधन है। इस पेशेवर वर्ग की ऊपरी परत को कुछ विद्वानों ने 'कॉस्मोक्रेट्स' की संज्ञा दी है। इस टाइप के लोग प्राय: बहुराष्ट्रीय निगमों या उनसे जुड़ी कम्पनियों में काम करते हैं और ये लोग स्थानीय समाज से वैसे ही कटे होते हैं, जैसे कम्पनियाँ या निगम होते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं। दावा यह किया जा रहा है कि 'कॉस्मोक्रेट्स' के रूप में एक 'भूमण्डलीय शासक' वर्ग पैदा हुआ है। उस रूप में भूमण्डलीकरण ने एक नये कुलीन और अभिजात वर्ग को जन्म दिया है जिसकी निष्ठा किसी देश या समाज के प्रति नहीं है। उसकी रूचि अन्तर्राष्ट्रीय तथा दृष्टिकोण यूरोपीय या अमेरीकी है। ये वे लोग हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय विमान सेवाओं में पहले दर्जे में पड़ते हैं और कम्पनियों में अधिकारी होते हैं। कॉस्मोक्रेट्स व्यवसाय के अलावा अन्यत्र भी होते हैं, जैसे वाशिंगटन, जेनेवा, न्यूयार्क, रोम, पेरिस-जैसे महानगरों में स्थित अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों में सेवारत अधिकारी। 'कॉस्मोक्रेट्स' पश्चिमी मूल के ही नहीं होते। इनमें काफ़ी बड़ी संख्या भारतीय और चीनी मूल के लोगों की भी है जिनकी कम्पनियों में भारतीय या चीनी रक्त भले ही हो, लेकिन रूचि, विचाराधारा, नैतिक दृष्टि और बुद्धि में ये यूरोपीय और अमेरिकी हैं। सरोकारों में अपने देश और समाज के लिए कोई स्थान नहीं होता।

नया मध्यवर्ग सर्वदेशीय है अर्थात् उसकी जड़ें किसी देश-विशेष की धरती में नहीं हैं। नये मध्यवर्ग के सदस्यों का मूल स्थान कोई भी रहा हो टेलिविजन में कमोबेश एक ही तरह के कार्यक्रम देखते हैं, एक ही तरह की पोशाक पहनते हैं, एक ही तरह का भोजन करते हैं और एक ही प्रकार की भाषा-शैली का इस्तेमाल करते हैं। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप वे कहीं भी जायें, उन्हें अपनी जीवनशैली बदलने की ज़रूरत नहीं होती। वे फ़ैक्स, फोन और इंटरनेट के ज़रिये ख़रीदारी करते हैं। पैसे का लेन-देन भी इन्हीं माध्यमों से होता है पश्चिम में अब दफ्तर की पुरानी अवधारणा बदल गयी है। मोबाइल और पाम पाइलट ने बहुत भारी परिवर्तन ला दिया है। कहा जा रहा है कि यदि यह परिवर्त्तन जारी रहा तो सारा विश्व एक संस्कृति में सराबोर हो जायेगा और अन्य संस्कृतियाँ धीरे-धीरे ओझल हो जायेंगी। विश्व की लगभग चार हज़ार भाषाओं की जगह केवल चार सौ भाषाएँ रहेंगी अंग्रेजी सम्पर्क भाषा के रूप में काम करेगी। इस प्रगति का अग्रदूत नया मध्यवर्ग है।

यह नया मध्यवर्ग बड़ा लालची और भ्रष्ट है। अगर मौक़ा मिले तो वह बिना परिश्रम किये करोड़पति बनना चाहेगा। लगभग चालिस देशों में चल रहा 'कौन बनेगा करोड़पति?' कार्यक्रम इस तथ्य को रेखांकित करता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ आज के दौर में भ्रष्टाचार के सबसे बड़े स्रोत हैं। यद्यपि अमेरिका-जैसे पश्चिमी देशों ने उनके रिश्वत देने पर कानूनी पाबन्दी लगा दी है फिर भी वे रिश्वत देते और यह काम बड़ी चालाकी से किया जाता है। जैसे-भारत में रिश्वत उनके देशी एजेंटों के द्वारा दी जाती है जिन्हें निगम अनेकानेक मदों में अपेक्षित रक़म दे देते हैं। इस प्रकार भारत का नया मध्यवर्ग भ्रष्टाचार का माध्यम बनता है।

इस नये मध्यवर्ग की उक्त चारित्रिक विशेषताओं को देखते हुए यही अहसास होता है कि वर्तमान देश और समाज को इससे कोई आशा और अपेक्षा तो रखनी ही नहीं चाहिए। इस वर्ग के लिए तो कल्याणकारी राज्य, 'सामाजिक न्याय और सुरक्षा,' यहाँ तक कि राष्ट्रीयता, लोकतंत्र और समाजवाद भी कूड़ेदान में डालने के लिए है। औद्योगिक क्रान्ति, फ्रांस की राज्यक्रान्ति, भारतीय पुनर्जागरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन में मध्यवर्ग की जो महत्वपूर्ण ऐतिहासिक भूमिका रही है, उससे इक्कीसवीं शताब्दी के इस नये मध्यवर्ग का दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं है। नयी कविता के आत्मसंघर्ष को सामाजिक संघर्ष से जोड़ने वाले यथार्थवादी कवि मुक्तिबोध ने आधुनिक मध्यवर्ग में आत्मनिर्वासन को ही देखा और लिखा था, लेकिन इस नये मध्यवर्ग में तो 'आत्म-ध्वंस' और 'आत्म-विसर्जन' की भयावह स्थिति दिखाई पड़ रही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह स्थिति उत्पन्न की गई है जिसमें ट्रस्ट-राज्य-सम्बन्ध और बाज़ारवाद की सत्ता और व्यवस्था की भूमिका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कविता

ज्ञानेन्द्रपति

घोषणा

रात ढुलकी है ओस ढेर-सी
बहुत मुलायम हो गया है सूर्य
शीतकाल है यह नगर-द्वार पर

सुनी मैंने यह प्रीतिकर घोषणा
पायों में रात का रंग लगी चारपाई पर लेटा
सुबह-सुबह
टंकार में धनुर्धर धुनिये के धनुष की
रुई के गालों-सी उड़-उड़ कर जो ढँक लेती
तन-मन
लो, उतर आयी ग्रीष्म की खूँटी पर
टँगी हुई धुनिये की धुनकी
स्वागत में शीतागम के

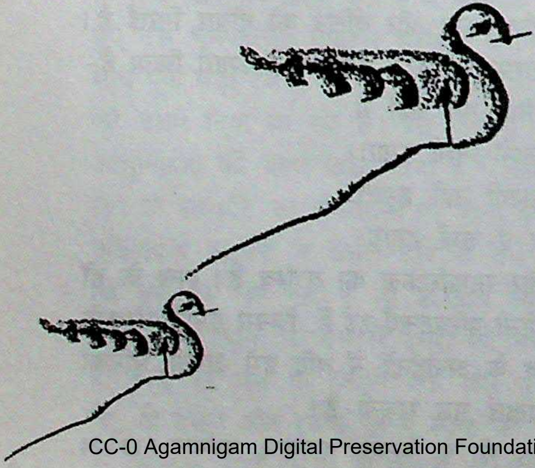

अब उठ खड़े होओ बिस्तरे से
आओ बाहर
चाहे न धुनवानी हो तोशक-रजाई
धुनकने दो सूरज को लहू
भरने दो गर्माहट
करने दो तरोताज़ा जी-बदन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चुनौती : चुनौटी

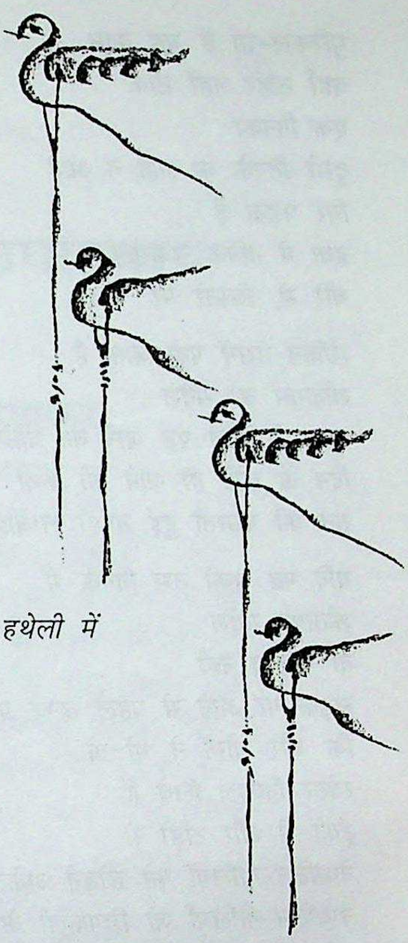

वर्षों से मेरे वक्ष में बंद
एक शब्द-बीज
अकस्मात्, आहिस्ते से
अँखुए की आँख खोलता है
झकोरे के साथ
सिहर जाता है तन
ट्रेन के ग्रामीण सहयात्री
सर्द हवा की चुनौती के विरुद्ध
हमेशा की तरह
कुर्ते की थैली से निकालते हैं
नन्ही-सी चुनौटी
हर चुनौती को चुनौती देती चुनौटी
खैनी-चूने से उज्जर चुनार की मिट्टी सरीखी सख़्त अपनी हथेली में
धरती की तरह बड़ी-कड़ी किसान हथेली में
जो पत्थर को पिसान कर दे मसल कर

शीतागम-संदेश

रेडियो-टी.वी. की मौसमी भविष्यवाणियों से पहले
महल्ले के कपासकेश पुरनियाँ के
एक सूर्यमुखी मानव-फूल में बदल उठने से भी पहले
शीतागम का संदेश
देती है एक नन्ही चिड़िया
वह एक फुर्तीली गौरैया
चोंच में दबाये घास का एक सूखा तिनका
शीतावास ढूँढती तुम्हारे घर में
शय्या के सिरहाने करीब-करीब
खुली खिड़की पर
पर्दे के पीछे
जहाँ
अंदर आये बगैर
वह बाहर को पीठ दे सके

[कवि ज्ञानेन्द्रपति को इस वर्ष के 'पहल सम्मान' और 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' दिए जाने की घोषणा हुई है। हार्दिक बधाई।]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुश्किल-सा है यह काम
वहाँ ठाहर नहीं ठीक
एक तिनका
दूसरे तिनके के आते न आते
गिर पड़ता है
हवा में तनिक चकराता
धीरे से, बिस्तरे पर

लेकिन उसमें पढ़ा जाता है
शीतागम का संदेश
सूरज के पीले पड़ जाने का वाक़िया
दिन के छोटे हो जाने की कथा
रात की पसरती हुई ठण्डी लम्बाई

यदि पढ़ सको उस तिनके में
शीतागम-संदेश
तो ज़रूरत नहीं
सड़क पर आने से पहले छज्जे पर से हुलक कर देखने की
कि और लोगों ने भी तो
स्वेटर निकाल लिये हैं
ट्रंकों से और टाँड़ों से
नेप्थलिन-गोलियों को छोड़ते अकेली और उदास—
नेप्थलिन-गोलियाँ जो छिपकली के अंडों का भरम देंगी
धीरे-धीरे गलती-घुलतीं हवा में
और उनके आस-पास ही
शीतनिद्रित पथरायी पड़ी रहेंगी छिपकलियाँ
बितातीं निस्स्पंद, शीतकाल

बी-3/12, अन्नपूर्णानगर, विद्यापीठ मार्ग, वाराणसी-221002
फोन-2221039

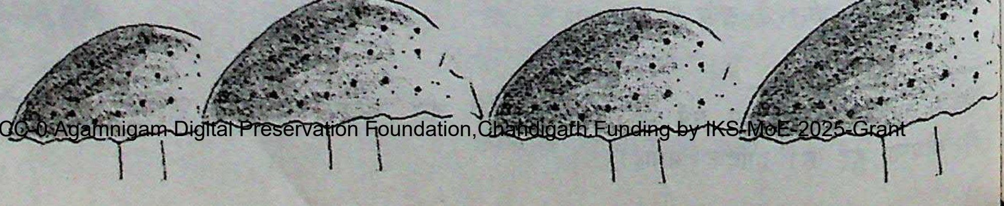

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजेन्द्र उपाध्याय

अनाड़ी फोटोग्राफर

मेरे जैसे अनाड़ी फोटोग्राफर
आपको हर जगह मिल जायेंगे।
कई लोगों के मैंने फोटो खीचें हैं
अपने कैमरे से और दूसरों के कैमरे से भी
देखिए यहां से ऐसे कीजिएगा 'क्लिक'
युवा पर्यटक दंपत्तियों के फोटो उतारते वक्त
मेरा ध्यान उसकी पत्नी पर अधिक रहता था
मैं उसे बार बार मुस्कराने को कहता हूं
और वह हाथ में फूल लेकर मुस्कराती है।

यह फोटो पता नहीं कब कहाँ किन शहरों के
अंधेरों में धुलते होंगे
पता नहीं कहाँ किन शहरों के ड्राइंग रूम में लगे होंगे।
गृहिणी शान से बताती होंगी उन्हें
और मेरा ध्यान भी न आता होगा।
कभी कभी किसी पूरे एक परिवार का
फोटो उतारने को मुझे कहा जाता है.
और मैं पूरे परिवार को एक साथ बिठाने में
असमर्थ रहता हूँ।

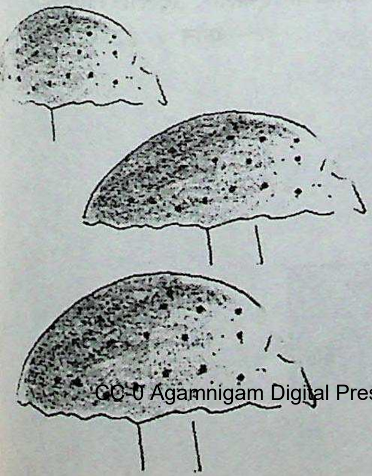

जैसे तैसे खींचे गए उस फोटो में
हो सकता है मंझली बहू कहीं कट गई हो
या उसका बेटा या बेटी का चेहरा आधा ही आया हो
हो सकता है जब वह धुलकर आए
कोई कहे-कौन था यह
अनाड़ी फोटोग्राफर

मेरे जैसे अनाड़ी फोटोग्राफर
आपको हर जगह मिल जाएंगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक कवयित्री के घर

दो बसें बदल दो घण्टे खड़े रहकर
मैं पहुंचा एक कवयित्री के घर
उसने नहीं पहचाना
मेरा नाम सुनकर फूल नहीं खिले उसके भीतर घुंघरू नहीं बजे।
'ये मेरे भाई हैं रंगीन टीवी लाये हैं
ये मेरे पति बड़ी कंपनी में अफसर हैं
ये मेरे बच्चे 'अनुराग' और 'सौरभ' है
अंकल को नमस्ते करो!'
चाय बनाऊं या शिकंजी
बिस्कुट तो लीजिए
हम तो अभी लेके उठे हैं
दरअसल अब तो खाने का टाईम हुआ जाता है
पूरी तल दूं एक आम तो काट ही दूं

भाईसा और पतिदेव कनखियों से घूर रहे थे उसे
क्या जरूरत है एक हिन्दी कवि की इतनी खातिर करने की

कविता लिखना कोई घास काटना थोड़े ही है—
उसने कहा
उसने कहा मुझसे—
प्रकाशक किताब छपाओ तो पैसे मांगता है
आपसे कितने पैसे मांगे थे भाईसाहब।
लिफ्ट तक छोड़ने आई मुझको वह
पति ने पीछे से कहा, अभी खाना बनाना है
बच्चे सो रहे हैं।

62, ब-लॉ अपार्टमेंट्स, ए.जी.सी.आर.एन्क्लेव, दिल्ली-110092
फोन : 22372615

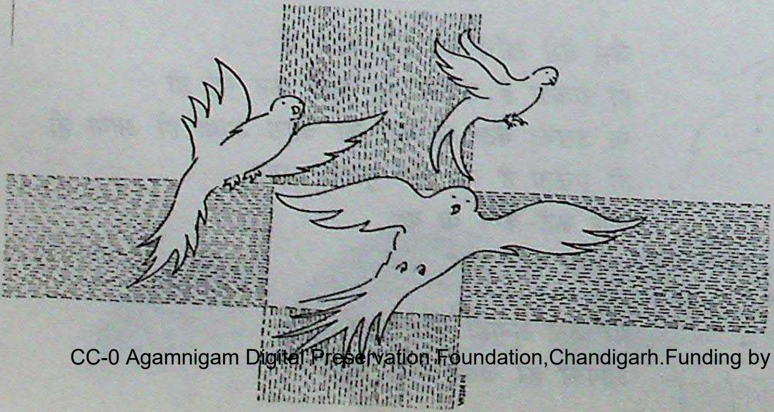

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

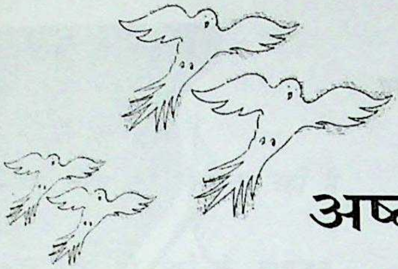

अष्टभुजा शुक्ल

दो शब्द

दो शब्द
खोजते खोजते
साँझ हो गई
इतनी देर में किसी क्षुधातुर को मिल गया कहीं कौरा
झख मारने वालों को बर्तन भर रोहू
मधुमक्खियों ने तैयार कर लिया पूरा छत्ता
डॉक्टरों ने वसूल लिया हजारों रुपये फीस
बच्चे लौट आए स्कूलों से

मैंने कबूतरों के एक जोड़े को देखा
देवताओं की युगल मूर्तियाँ देखीं
एक युवती के वक्षों को देखा और सोचा
कि उन्हें लिख कलम से
लेकिन हठ की तरह
वे वहाँ से हटने को तैयार नहीं थे
जैसे शब्दों में आ जाने पर
वे शब्दों से छोटे बन जाने से आशंकित थे

शब्दों के बारे में न्याय क्या कहता है
क्या कहता है व्याकरण
क्या कहता है मीमांसा
क्या कहता है साहित्य और अर्धनारीश्वर ?

इतने फोन हुए दुनिया में
इतने फैक्स भेजे गये
इतने सान्ध्य, मध्याह्न और प्रभात खबर वाले
अखबार छपे
इतने अंकों का जोड़ घटाना हुआ
साँझ तक-लेकिन मुझे दो शब्द नहीं मिले
या तो मैं हर चीज को शब्द समझ लेता
या हर शब्द को कोई चीज

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं ऐसा नहीं कर सकता था
दीपक, कपूर, लालटेन, बल्ब, ज्योतिदंड, चन्द्रमा
सबके सब जले
खोजते खोजते साँझ हो गई
लेकिन मुझे दो शब्द नहीं मिले

जहाँ भी दो चीजें मैंने एक साथ देखीं
मुझे लगा कि अब साँझ होने को है

अंत में
मैंने उस कमीज की ओर देखा
जिसके सारे बटन टूट चुके थे
और जो सूई और डोरे की ओर
कातर भाव से देख रही थी

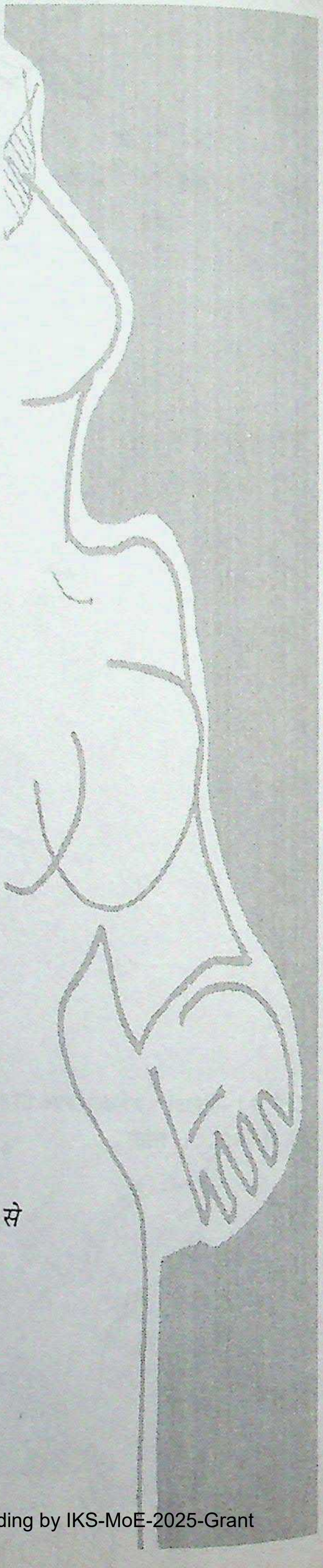

अफसोस

कम खर्च करना चाहिए पानी
आग की तो वैसे भी बचत करनी चाहिए
जमीन तो खर्च की ही नहीं जा सकती

अपने हिस्से भर के आकाश में
कोई तारामंडल बनाना चाहिए
हवा का अपव्यय तो कोई कर ही नहीं सकता
हाँ, दो चार साँसों की कटौती की जा सकती है

पैसे तो वैसे भी कम खर्च करने की मजबूरी है
प्यार तो निखर्चे पर ही चलता रहा
जाने कैसा एक आदमी
अपनी आँखों की सारी रोशनी
इस दुनिया को देखने में खर्च कर डाला

कुछ लोगों का सोचना था
कि दिमाग, पैसा, सेवा, पेट्रोल, चाय, नम्रता या चापलूसी में से
क्या खर्च कर दिया जाय तो क्या मिल जाएगा
जबकि जोड़ घटाने से अलग वह दोस्त
ज्यादा से ज्यादा खर्च करके
निहाल हो जाता था

इस तरह तो
सब कुछ ठीक ठाक है अपनी जगह
बस इधर जीवन ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुछ अधिक खर्च हो रहा है
पाँच में से
दो बैट्री तो चली ही गई
अफसोस किसी चीज का विकल्प नहीं है
लेकिन अफसोस
कि इतना कुछ खर्च हो जाने के बावजूद
खर्च करने का शऊर नहीं आया

अब जो कुछ बचा है
उसकी खुशी में
अपने पैरों से अपनी पीठ ठोंकनी चाहिए
और इसके पहले
कि कोई गला पकड़ ले
जोर से चिल्लाना चाहिए
नाद बन जाना चाहिए
मिट्टी में मिट्टी मिल जाने से पहले

व्यापार

कन्नौज में इत्र का व्यापार होता है
रामपुर में चाकू का
रामनामी अँगोछे का व्यापार तीर्थस्थानों में होता है
तो कफन का हर बाजार में
देह का व्यापार घर घर में होता है

कार्ड के
दाहिने या बाएँ पैर की ओर
नाम छपने का भी व्यापार होता है
सड़ी गली सोपारी का व्यापार अलग होता है
पीछे पीछे चलना भी एक व्यापार है
मुस्कराना व्यापार की अर्वाचीन मुद्रा है

किसी व्यापार में
जलपान के लिए नमक का टुकड़ा नहीं परोसा जाता
व्यापार में किसी को खाली हाथ नहीं लौटाया जाता
कभी कभार लागत में भी घाटा उठा लेता है व्यापार
देश प्रेम और देवी देवताओं के नाम पर
फूलता फलता है व्यापार
पक्का व्यापार
किसी नंग धड़ंग पागल की, पश्म छील लेने में भी

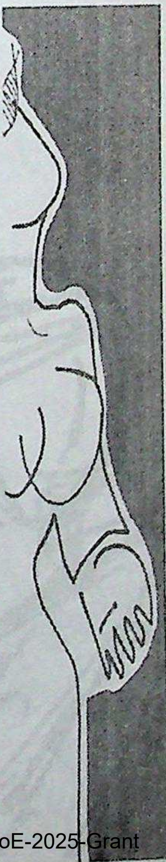

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कोई संकोच नहीं करता
मरने में, महकने में, हलाल करने में
सहवास में, नशे में या होश-ओ-हवास में
कुत्ते की तरह हँसता शेर की तरह रोता है
और कोई हँसी-खेल नहीं है जनाब!
व्यापारी व्यापारी
और व्यापार व्यापार होता है

गुब्बारे का धरम न पूछो

इस सपाट गुब्बारे में
है एक कपाट
होंठ लगाकर फूँकोगे
तो कुनमुनाएगा धीरे धीरे

बिन्दीदार अल्पना वाली
एक मुलायम देह सिहरती पाओगे
यदि सादे हाथों से रूक रूककर सहलाओगे

कान पकड़ ले आयेगा यह
तेरी खुशियाँ बाहर
भीतर से गुब्बारे जैसा ही
हल्के हो जाओगे
और हाथ से निकल निकल जाओगे
गुब्बारे का
दाम न पूछो
काम न पूछो
बिगड़ जाएगा तो मिस्त्री का धाम न पूछो
निस्संज्ञक का नाम न पूछो

जनम न पूछो
मरम न पूचो
एक आधिभौतिक लीला का
धरम न पूछो

संस्कृत महाविद्यालय चित्राखोर, पोस्ट-बरहुआ,
जिला-बस्ती (उ.प्र.) पिन : 272123
मो-09415356433

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नीलेश रघुवंशी

दोष

बारिश में पहली बारिश में भीगना चाहती हूँ
आकाश में पसरी धूल और धरती की तपन से उठते भभके में
बारिश के साथ कदमताल करना चाहती हूँ
लेकिन मैं ऐसा कर नहीं पाती इसमें मेरा क्या दोष है
मेरा क्या दोष है जो मैं जी भर के बारिश को देख भी नहीं पाती हूँ
बारिश का भी क्या दोष है जो वो मेरे बिना बरसती बरसती ही जाती है
उनका भी क्या दोष जिनके घरों को अपना घर बना लेती है बारिश
टीन टपरों के संग अपने बर्तनों को बहते देख कोसते हैं जो जी भर के बारिश को
कोसते हैं सो कोसते हैं अब इसमें कोस का भी क्या दोष है
खेत को जब पानी चाहिए तब नहीं होगी बारिश
जब नहीं चाहिए तब बरसेगी झमाझम
खेत का क्या दोष जो माँगता है अपने हिसाब से पानी
गाय का क्या दोष
जो बारिश से पहले पहुँच नहीं पाई अपने ठिए पर
अब सिर को झुकाए सींगों को उठाए बारिश से बचने की जुगत में
खदेड़ी जाती इधर से उधर
किसी की परवाह न करते होती है बारिश झमाझम
बाद भी इसके सूखती ही जा रही हैं नदियाँ
क्या सबका दोष अपने सिर मढ़कर
बचे खुचे पानी के संग इसीलिए बहती जाती हैं नदियाँ

छड़ी

पिता बूढ़े हुए
बिना सहारे के चल नहीं सकते अब
मैंने पिता को छड़ी दी
छड़ी के सहारे चलते हैं पिता बिना मेरे कंधों के
जमाने भर का बोझ ढोते मेरे कंधे
जब पिता के न हुए तो मेरे क्या होंगे
वे तो उचकते फिरते हैं शॉपिंग मॉल में
दुनियादारी उन पर बैठी हँसती फिरती है गली गली
छड़ियाँ लुभाती हैं हमें शॉपिंग मॉल में सजी रोशनियों के बीच
कंधे कंधे कंधे पर्याय नहीं कोई कंधों का

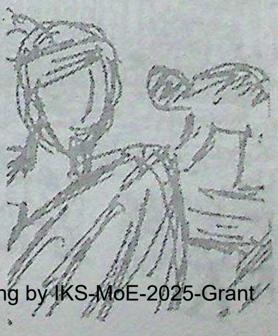

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घात लगाए बैठा था अजगर
मार तुरूप का पत्ता कहा उसने कंधे याने छड़ियाँ
हा हा हा...
ऐसी वीभत्स हँसी न हँसो अजगर
निगल लिए तुमने मेरे कंधे...

शोर

कानफोड़ू शोर से तड़कती हैं नसें
जाने कितनी कीलें गढ़ती हैं मेरे भीतर
यह शोर मेरी नसों को फाड़ डालेगा
संग मेरे धरती भी काँपती है
दीवारें... वे भी इस शोर के आगे नतमस्तक हैं
सारे के सारे वृक्ष ढूँढते हैं अपने लिए कोई और ठिया
आकाश खुद से मुँह छिपाता रेंगता फिरता है
रो रहे हैं सारे प्रतीक इस शोर में आसान नहीं इससे पार पाना
यह शोर धर्म का शोर है...

ए 40 आकृति गार्डन्स, नेहरू नगर, भोपाल- 0755 2775062
मो. 9826701393

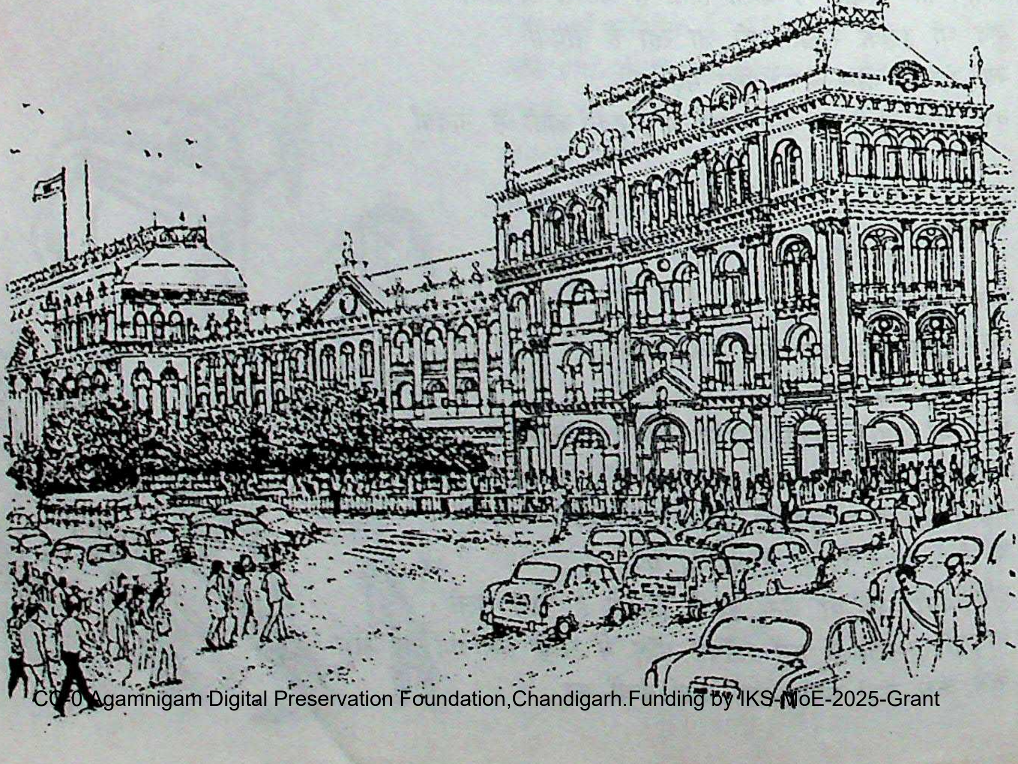

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुधीर रंजन सिंह

हावड़ा पुल से गुजरते हुए

उसपर से गुजरना
यह समझ से जरा बाहर था
नदी के ऊपर से कि समुद्र के ऊपर से

गुजरना था
मिट्टी बह रही थी
हुगली के धूसर पानी में
इस अनुभव के सहारे कहा जा सकता था
उसपर से गुजरना

जमीन पर ही चलना था
समझा जाता है जैसे जमीनी चीजों को
उसपर से पैदल गुजरते हुए
समझा जा सकता था पानी को जमीन
नावों की कतारों को छोटी-सी बस्ती
और हुंकारते हुए जहाजों को
बड़े मजे में समझा जा सकता था

किसी प्रागैतिहासिक विशाल जन्तु के रूप में
मगर भनभना कर उसपर से गुजरती मोटर गाड़ियों का
मतलब नहीं था कुछ खास
बस थोड़ा लोहा बढ़ गया था

जैसे बढ़ जाती है चर्बी देह में
उसपर से पैदल गुजरते हुए
जाना जा सकता था
सरकारी नामकरण से यह
रवीन्द्र सेतु है
कि उसके खंभों पर
अशुद्ध नागरी वर्तनी में

महाकवि का नाम चस्पाँ था
उसपर से पैदल गुजरने वाले
अधिकतर लोगों को
क्या पता होगा
कौन रबिन्दर!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नींद एक जगह है

नींद एक जगह है...
जैसे मवेशियों के लिए चारागाह एक जगह है
जैसे पानी के लिए प्यास एक जगह है
जैसे बहती हुई नदी के ऊपर
पुल एक जगह है
जैसे फैला हुआ पंख चिड़िया का

अंतरिक्ष में एक जगह है
इस पृथ्वी पर नदियां और सागर हैं
मन को मोह लेने वाले बर्फ के पहाड़ हैं
लेकिन पृथ्वी का सबसे सुन्दर टुकड़ा

और कुछ नहीं नींद है
प्लेटफार्म पर दौड़ते हुए लोगों से बचकर
बूटों की चोटें सहती देह के भीतर
सीने में दबी और बाईं बांह पर टिकी हुई

नींद आकाशगंगा की तरह दिखाई देती है
जब मर जाता है अन्न में स्वाद
और खत्म हो जाता है सुन्दरता पर विश्वास
यही जगह है जहाँ बासी भात
नमक के साथ खाया जा सकता है
बिरयानी की तरह
और किसी सड़े-गले चकले में घुसकर

अपूर्व स्त्री को चूमा जा सकता है
यहाँ भीख के कौर से संतुष्ट होकर
थोड़ी देर के लिए राजा हुआ जा सकता है
कि पलक झपकते काट लिया जा सकता है

किसी चक्रवर्ती सम्राट का सिर
इसलिए देखने में आया है
कि कोई क्रूर तंत्र
किसी को मारने से अधिक
उसकी नींद छीनने में यकीन करे।

एफ- 93/70, तुलसीनगर, भोपाल-462003

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आलेख

आलोचना की भाषा में सृजन

रेवतीरमण

हिन्दी का उत्तर आधुनिक साहित्य संरचना में विविध रूपात्मक है और अन्तर्वस्तु के स्तर से बहुध्वन्यात्मक। यह पूरा परिदृश्य विभिन्न रंगों और ध्वनियों के टकराने और मिलने से बना अद्‌भुत और आकर्षक परिदृश्य है, श्रव्य का दृश्य में संतरण और अन्ततः दृश्य-श्रव्य की दिशा में अग्रसर। इसमें हर प्रस्तुति की पृष्ठभूमि में एक व्यवस्थित प्रायोजन है। दृश्य को यह प्रायोजन बड़ा करके दिखाता है। लेकिन कुछ प्रस्तुतियाँ आत्मदान की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती हैं। कर्मयोग की सुपरिचित भारतीय मुद्रा। एक स्व-निर्मित, आत्म-निर्भर मनुष्य और मनीषी का नाम है डॉ.प्रभाकर श्रोत्रिय। ऐसे समृद्ध व्यक्तित्व में शीशे में उतारने की कोई भी कोशिश आसान नहीं है। पिछले चार दशकों से प्रायोजन की संस्कृति से दूर स्वाध्यायनिरत श्रोत्रिय जी ने जो कुछ लिखा है, उस सबका, उन्हीं की शैली में कैसे मूल्यांकन किया जाय, यह एक समस्या है।

डॉ. श्रोत्रिय का रचनात्मक संघर्ष बड़ा है, कठिन है। उसके कई रूप और स्तर हैं। कुल जमा उनका मोर्चा संस्कृति का ही मोर्चा है फिर भी। क्या यह कम बड़ी बात है कि नामवर सिंह, अशोक वाजपेयी, सुधीश पचौरी आदि के बावजूद वह एक महत्वपूर्ण आलोचक बने रह सके हैं। खासतौर से कविता और कवि-व्यक्तित्व अनन्य संगी और आत्मीय उद्‌घाटक के रूप में। हिन्दी की कथा-आलोचना दलित-विमर्श होकर रह गई है तो इसकी खास वजह है प्रमुख आलोचकों के पास समय का अभाव। श्रोत्रिय जी की आलोचना को भी मुख्यतः काव्यालोचना ही मान लें तो भी कहना पड़ता है कि उसकी निजी रंगत है। उनका अलीकपंथी होना 'मेघदूत : एक अन्तर्यात्रा' में भी स्पष्ट दिखाई देता है। 'अतीत के हंस : मैथिलीशरण गुप्त', 'जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता', 'शमशेर बहादुर सिंह', 'नरेश मेहता', जैसी कृतियों को व्यावहारिक आलोचना की कृतियाँ कहना, एक खास ढंग से सुविधा की शरण लेना ही है। आजकल व्यवहार के पीछे सिद्धान्त की उपस्थिति अनिवार्य नहीं मानी जाती। एक कॉमन सेन्स काम करता है। आलोचक संगठन से संबद्ध है तो सैद्धान्तिकी सुपरिचित होगी। अलग से उसकी चर्चा बेमानी है। मार्क्सवादी रामविलास जी थे और मार्क्सवादी नामवर सिंह भी हैं। पर दोनों में कितना फर्क है? श्रोत्रियजी का आलोचना-साहित्य रचनात्मक भाषा में लिखा गया है। वह जिस कृति या कृती पर केन्द्रित है उसकी अर्जित की हुई भाषा से होड़ लेती हुई आलोचना-भाषा है। उन्होंने ज्यादा व्यक्तित्व-संपन्न कवियों पर ही लिखा है। अपनी ओर से किसी को थोपने का प्रयास नहीं किया है पर जिस ढंग से लिखा है, वह उनका अपना है। 'क्या कहा गया है' से कम महत्व 'कैसे कहा गया है' का नहीं है। इस आग्रह ने नामवर जी की भाँति श्रोत्रिय जी को भी हिन्दी का एक गद्य शैलीकार बना दिया है।

विवेचन-विश्लेषण की प्रक्रिया में श्रोत्रियजी का अध्ययन बोलता है। वह एक समर्पित शिक्षक रहे हैं, शास्त्रों का उन्होंने गहरा अध्ययन किया है। पर उनकी आलोचना अध्यापकीय नहीं है। सपाट बयानी और फतबेबाजी के लिए उनकी आलोचना में कोई जगह नहीं है। 'सुमन : मनुष्य और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्रोत्रिय जी का आलोचक प्रयोक्ता है और नवोन्मेष-सजग भी। मैथिलीशरण गुप्त हों या जयशंकर प्रसाद, शमशेर हों या नरेश मेहता, सुमन हों या त्रिलोचन, कालिदास हों या अज्ञेय—इनकी महत्ता से अनभिज्ञ शायद ही कोई हो। पर श्रोत्रिय जी की लेखनी ने इनसे संबद्ध कृतियों में इनके उस पक्ष को भी दिखलाया है, जिनपर इनके कथित विशेषज्ञों की दृष्टि नहीं पड़ी, यह श्रोत्रिय जी की आलोचना की शक्ति है जो कॉमनसेन्स की अंडरस्टैंडिंग से टकराती है।

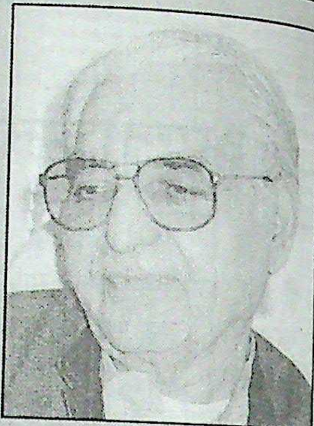

स्रष्टा' श्रोत्रिय जी की एक आरंभिक कृति है, पर जिस किसी ने उसका अध्ययन किया है, मानेगा कि श्रोत्रिय जी सर्जक व्यक्तित्व को सर्जना की मूल्यांकन-प्रक्रिया में एक क्षण के लिए भी ओझल नहीं होने देते। ज्ञान और संवेदना मिलकर ज्ञानात्मक संवेदना में ढल जायें तो भोगने वाले व्यक्ति और रचने वाली मनीषा में अन्तर करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। तब सिद्धांत और व्यवहार का फर्क भी मिटने लगता है। अभिव्यक्ति आचरण में तब्दील हो जाती है। श्रोत्रिय जी का मनुष्य हर साँस से स्रष्टा भी बना रहा है और जितना उन्होंने लिख दिया है, वह कुछ अचरज में डालने वाला है फिर भी उन्होंने कभी कोई ऐसा वाक्य नहीं लिखा है, जिसके न लिखने से काम चल जाता। आलोचना में मितकथन का अभ्यास उनकी आलोचना को कला के स्तर तक ले जाता है। रचना की स्वायत्तता उनका पक्ष भले न हो। श्रोत्रिय जी कलावादी भले न हों। उनकी रूपासक्ति विलक्षण है। बावजूद इसके वह आलोचना को रचना की सहचरी ही मानते हैं।

श्रोत्रिय जी आलोचक हैं तो अन्त तक सिर्फ आलोचक ही नहीं बने रहते। आलोचना अपने अन्त:करण का आयतन विस्तीर्ण करती जाती है, वह सभ्यता-समीक्षा और संस्कृति-विमर्श के स्तर तक पहुँचती है। यानी आलोचक का भी विकास-क्रम है। अचानक या शुरू होते ही आज के श्रोत्रिय को देखना संभव नहीं है। कुछ लोग दबे स्वर में कहते भी हैं, व्यक्ति छूट गया है कृतित्व बड़ा हो गया है। व्यक्ति बड़ा कैसे होता है? हिन्दी में मुख्यधारा का गहरा आतंक है। संगठन में जाकर महान कलावादी-व्यक्तिवादी सहज ही समाजवादी कहलाने लगते हैं। श्रोत्रिय जी अध्यवसाय-समर्पित रहे हैं। अध्ययन और लेखन के अतिरिक्त उनका रचनाशील समय सजग रहा है। नहीं रहता तो इतनी संस्थाओं से वह कैसे जुड़ पाते? वह जितनी संस्थाओं के सदस्य, सलाहकार, संरक्षक, विशेषज्ञ, सचिव, निदेशक आदि रहे हैं, उनमें से कोई एक ही सारी प्रतिभा के अभिनन्दन समारोह के लिए पर्याप्त है। उन्हें सम्मान-पुरस्कार भी कम से कम ग्यारह मिल चुके हैं और अभी जीवन पड़ा है। श्रोत्रिय जी ने 'नॉर्वे' को छोड़ अधिक विदेश यात्राएँ नहीं की हैं तो अब उसके भी अवसर हैं। मैं कहना यह चाहता हूँ कि इतनी गैर रचनात्मक व्यस्तताओं के बावजूद श्रोत्रिय जी ने पर्याप्त से भी अधिक गैरमामूली लेखन किया है। उनकी अलीकपंथी वक्तृता के अनेक दृष्टान्त हैं। व्यक्तित्व और व्यवहार में इतने संतुलित और सुसंस्कृत कि मिलने वाले के हृदय पर उनकी छाप सदा के लिए अमिट हो जाती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रसंग आलोचना का है तो 'कविता की तीसरी आँख'; 'कालयात्री है कविता'; 'रचना एक यातना है' और 'हिन्दी कविता की प्रगतिशील परम्परा' का जिक्र अनिवार्यतः करना चाहिए। 'कविता की तीसरी आँख' सैद्धांतिकी है। भारतीय काव्यशास्त्र के गंभीर अध्येता ने इसमें कुछ पश्चिम की आलोचना-शास्त्र का भी अभ्यास किया है। बिम्ब को उन्होंने 'कविता की तीसरी आँख' कहा है और सौन्दर्य, कल्पना, प्रतीक आदि पर गंभीर विमर्श किया है। 'रचना यातना है' श्रोत्रिय जी की स्पष्ट अवधारणा है। यह सुख है तो सृजन का सुख है। इसमें प्रसव-वेदना से गुजरना होता है। एक महान लक्ष्य को समर्पित जीवन उपभोग के अवसरों से अक्सर वंचित रहे, यही स्वाभाविक है। श्रोत्रिय जी उत्तर आधुनिक दौर के समर्थ नागरिक हैं, आज के बौद्धिक विश्व की नई से नई हलचलों से वह परिचित हैं किन्तु उनकी दिनचर्या एक साधक की है, उन्हें हम आधुनिक बोध से संपृक्त एक संत कह सकते हैं। वह सच्चे साहित्यकार व्यवहार में भी हैं। मनुष्य के जो निषेधात्मक मनोविकार होते हैं, उनसे अधिकतम बचे हुए। भारत की आर्य प्रज्ञा के सान्निध्य ने यह निर्मल, स्वाभिमानी, सहृदय व्यक्तित्व सिरजा है। उपलब्धियाँ उनकी व्यक्तिगत भी कम नहीं हैं, पर वह आत्मोपलब्धि का पर्याय नहीं है।

श्रोत्रिय जी ने खुद को तराशने में जितना समय और श्रम खर्च किया है, उससे कहीं ज्यादा भाषा की संस्कृति को समृद्ध करने में लगाया है। समाज में साहित्य के लिए जगह बची रहे तो भाषा की रचनात्मक संभावनाओं की कोई सीमा नहीं। जो अभी नहीं है, कल संभव है। मुझे नहीं लगता कि श्रोत्रिय जी से अधिक किसी अन्य को चिन्ता है-नवोदितों के उन्नयन की। एक संपादक के रूप में उन्हें आगे भी याद किया जाएगा। पत्रकारिता के इतिहास में पं.महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं.बनारसीदास चतुर्वेदी, रघुवीर सहाय,वात्स्यायन आदि की चर्चा अलग-अलग संदर्भों में की जाती है। श्रोत्रिय जी में नवोन्मेष की विकलता स्पृहणीय है। उन्होंने 'आज' को टटोलने के साथ एक मर्यादा दी है सही, पर उनकी चिन्ता में साहित्य का 'कल' भी सदैव मौजूद रहा है। वह चाहे हिन्दी के बहाने हो प्रेमचन्द के बहाने हो। संपादकीय लिखकर समाज को विभाजित करने वाले संपादक 'हंस' की सवारी कर रहे हैं। और भी उनके सहचर हो सकते हैं, लेकिन साम्राज्यवादी सांस्कृतिक आक्रमण का क्या स्वरूप है, हम कैसे उसका सामना करें और जातीय स्वाभिमान और स्वतंत्रता की रक्षा करें-यह एक बुनियादी चिन्ता है। श्रोत्रिय जी ने साहित्यिक पत्रकारिता के स्तर से समाज के सांस्कृतिक प्रशिक्षण का कार्य किया है। 'साक्षात्कार', 'अक्षरा', 'वागर्थ', और 'नया ज्ञानोदय'के संपादक के रूप में श्रोत्रिय जी की एक विशिष्ट छवि है। उन्हें नवीन प्रिय है, प्राचीन से एलर्जी नहीं है। इस मामले में कोई उन्हें पिछड़ा कह सकता है कि वह हिन्दी के ज्यादा अपने हैं। बात-बात में विदेशी चिन्तकों-लेखकों का नाम नहीं लेते। पर आज हिन्दी में कितने आलोचक बचे हैं, जिन्हें संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से लेकर हिन्दी के विभिन्न साहित्यिक रूपों और भाषा-शैलियों की परम्परा का सटीक संज्ञान है? हिन्दी में लिखने वाले अब ज्यादा वे हैं जो हिन्दी के नहीं हैं। हिन्दी के जातीय स्वाभिमान और संस्कृति-संपदा से अनभिज्ञ आलोचक हिन्दी वालों की हैसियत बताने में लगे रहते हैं।

उत्तर आधुनिक साहित्यिक परिदृश्य में विशिष्टता का रोग संक्रामक हो चला है। दो-चार कविताएँ एक -दो पुस्तकें लिखकर लोग अपनी दृष्टि में महान बने फिर रहे हैं। सीधे मुँह बात नहीं करते। रचना के स्तर से संवाद कर नहीं सकते, पर विशिष्ट हो गये हैं। मीडिया से साँठ-गाँठ है। मिलते-जुलते रहने से बात बन जाती है। श्रोत्रिय जी ने कई ऐसों को भी उपकृत किया होगा। यह उनका उदारतावाद हो सकता है। पर खास यह नहीं है। खास बात यह है कि उन्होंने रचना-संभावना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर दृष्टि केन्द्रित की है। उनके संपादन में निकली पत्रिकाओं का कोई भी अंक ऐसा नहीं, जिसमें किसी न किसी नई प्रतिभा से पाठकों का परिचय हो। रचना के आग्रह ने उनके आलोचक को सदा विनम्र और जीवन्त बनाये रखा है और आलोचना को स्थूल अराजक और आक्रामक होने से बचाया है। आलोचक हैं तो वह भी 'आलोचना' आदि का संपादन कर सकते थे। पर उन्होंने सर्जना को बराबर तरजीह दी है। इसका यह अर्थ नहीं कि श्रोत्रिय जी आलोचक होने के बावजूद आलोचना के शत्रु हैं। जो विचार को प्रबन्धात्मक विस्तार दे सकते हैं उनके लिए उन्होंने अलग से व्यवस्था की है, आस्वाद-प्रविधि से समझौता न करते हुए।

श्रोत्रिय जी का आलोचक प्रयोक्ता है और नवोन्मेष-सजग भी। मैथिलीशरण गुप्त हों या जयशंकर प्रसाद, शमशेर हों या नरेश मेहता, सुमन हों या त्रिलोचन, कालिदास हों या अज्ञेय—इनकी महत्ता से अनभिज्ञ शायद ही कोई हो। पर श्रोत्रिय जी की लेखनी ने इनसे संबद्ध कृतियों में इनके उस पक्ष को भी दिखलाया है, जिनपर इनके कथित विशेषज्ञों की दृष्टि नहीं पड़ी, यह श्रोत्रिय जी की आलोचना की शक्ति है जो कॉमनसेन्स की अंडरस्टैंडिंग से टकराती है। वह एकदम से आलोचक की निजी संरचना नहीं होती, पर प्रायोजित सच से भिन्न अवश्य होती है। परम्परा के अनुशीलन ने आलोचक को परम्परावादी नहीं बनाया है, बल्कि वैयक्तिक प्रतिभा को उर्वर जमीन उपलब्ध करायी है। उन्होंने नरेश मेहता के प्रसंग में लिखा है कि 'उनके भीतर ज्वलित जाग्रत आधुनिकता थी जो अपनी जड़ों से नया जीवन-रस खींचती रही, जैसे फूल खींचता है, फल खींचता है। धधकती समयाग्नि के अभाव और असुरक्षा का एकांत भोगती फिर भी स्निग्ध सौम्यता से आप्लावित करती नरेश मेहता की आत्मा का भूगोल, लगता है भारत के सांस्कृतिक उपादानों ने खुद रचा है।' क्या यही बात हम प्रभाकर श्रोत्रिय के बारे में नहीं कह सकते! उनकी इतिहास-दृष्टि में धर्मवीर भारती आते हैं तो इन्दौर वाले रामविलास शर्मा भी। हिन्दी कविता की परम्परा कबीर, तुलसी, मीरा की परम्परा है और मैथिलीशरण, प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी ने उसे अपने देश-काल के संदर्भ में आगे बढ़ाया है। मुक्तिबोध हैं तो अज्ञेय भी हैं। नागार्जुन हैं तो वीरेन्द्र कुमार जैन भी हैं। भवानी प्रसाद मिश्र ने ही क्या गुनाह किया है कि उन्हें छोड़ दिया जाय? श्रोत्रिय जी त्रिलोचन को भी याद करते हैं—'तुलसी बाबा भाषा मैंने तुमसे सीखी'—त्रिलोचन के 'दिगन्त' की एक अविस्मरणीय पंक्ति है। यह एक सवाल है जो जेहन में अक्सर उभरता है। शमशेर पर सबसे अच्छी आलोचना किसकी है? नरेश मेहता ही नहीं कबीर, मीरा, नागार्जुन पर किसने सबसे सतर्क टिप्पणी की है? 'कवि परम्परा : तुलसी से त्रिलोचन' पढ़कर इन सवालों के जवाब में एक ही नाम लिया जा सकता है, प्रभाकर श्रोत्रिय। इनमें कुछ वे भी हैं, जिनके बल पर प्रगतिशील काव्यालोचन मुख्यधारा के नियमन और संचालन का दावा करता रहा है।

हिन्दी आलोचना की दुर्दशा का अन्दाज़ा एक इस बात से भी लगाया जा सकता है कि इसमें अधिक लिखना या लगातार लिखना खुद को उपहासास्पद बनाना है। आलोचना का शिखर बोलकर ही कब्जे में किया जा सकता है। एक मंच पर जो बात कह दी गई या आलोचक के श्रीमुख से स्वतः निःसृत हो गई, दूसरे मंच पर सुनने वालों की मानसिकता के दबाव में उलट दी गई। आखिर आत्मालोचन का हक आलोचक को भी तो है। श्रोत्रिय जी भी आत्मालोचन को महत्व देते हैं, पर अपनी बात पर कायम रहकर। उनके आलोचक के कम लोकप्रिय होने की एक यह वजह हो सकती है। उनकी एक जिद है, एक संस्कार है। वह आर्थिक साम्राज्यवाद की कलई खोलते समय भी जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, उसमें भदेस के लिए अवकाश नहीं रहता। शास्त्र का आधार सुदृढ़ हो तो लोक का पक्ष अक्सर दब जाता है। श्रोत्रिय जी के काव्याभ्यास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ने लोक का पक्ष कहीं कमजोर नहीं होने दिया है। उनका आलोचक भाष्य और टीका की भारतीय परम्परा से अपरिचित नहीं है। पर वह सृजन का महत्व जानता है। वह रचना और आलोचना के पूर्वा पर संबन्ध को लेकर कभी भ्रम में नहीं रहा।

कहना न होगा कि हिन्दी के अन्य कई आलोचकों की तरह श्रोत्रिय जी भी आरंभ में कविता लिखते थे, गीत रचते थे। कविता में लय और छन्द का पूरी तरह निषेध उन्हें पसन्द नहीं। यानी उनकी एक अपनी सौन्दर्याभिरुचि है, लोक सामान्य भाव-भूमि से अनुकूलित। एक बड़ा आलोचक रचना के दोष-गुण-दर्शन में निपुण हो, यह स्वाभाविक है। वैसे, चूक मम्मट से भी हुई है, भामह से भी हुई है। श्रोत्रिय जी आलोचना को पुनर्रचना के स्तर तक ले जाते हैं। उनके भीतर सर्जक की उपस्थिति सदैव महसूस की जा सकती है। यों, अब उनका सर्जक आलोचक से अधिक चिन्तक की छवि प्रस्तुत करने लगा है। आलोचक सब समय शुद्ध साहित्य-विमर्श में ही कैसे डूबा रह सकता है? पर एक साहित्य-समालोचक के रूप में उनकी मान्यताएँ स्पष्ट हैं। यह उन्हीं का कथन है,—'मैं आलोचना को भी सृजन मानता हूँ। किसी भी सिद्धान्त से जिरह करना पसन्द करता हूँ। ... लेकिन किसी भी विचारधारा, चाहे वह देशी हो या विदेशी, मैं उसके हाथों अपनी सृजन-चेतना को सौंपने से इन्कार करता हूँ।... आलोचना के लिए भी संवदेना कविता की तरह अपरिहार्य है। आलोचना केवल प्रतिभा और संवेदना की ही नहीं, पांडित्य और विद्वत्ता की भी माँग करती है और सृजन की गहरी समझ की भी। वह केवल भाषा की साधना नहीं है, भाषा का सृजन-कर्म है।' (कान्हा-प्रसंग) बहरहाल, 'रचना एक यातना है' से लेकर 'सर्जना का अग्नि-पथ' तक श्रोत्रिय जी आलोचना की जो समझ विकसित करते हैं उसमें आत्म-दान का साहस है। सब कुछ दे देने और प्रतिदान में कुछ न लेने की आकांक्षा स्वाभिमान सर्वोपरि है। 'आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत्' का अद्भुत मनोबल। बिना इस संज्ञान के कुछ उल्लेखनीय संभव नहीं है। जिसका मार्ग साधना का मार्ग है, सुविधा का नहीं उसे झुकाया नहीं जा सकता।

श्रोत्रिय जी पत्रकार हैं, संपादक रहे हैं। उन्होंने बड़ी संख्या में आलोचना की पुस्तकें लिखी हैं। उनके संपादकीय लेखों के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'संवाद' की एक नई शैली विकसित की है। इस दौरान उन्होंने तीन अच्छी नाट्य कृतियाँ दी हैं। 'इला' की मंचीय सफलता आज के रंगकर्म की हकीकत है। उनकी गतिविधियों और कृतियों की सूची काफी लम्बी-चौड़ी है। विख्यात कथा-लेखिका उर्मिला शिरीष ने उन पर केन्द्रित एक महत्वपूर्ण पुस्तक 'आलोचना की तीसरी परम्परा' संपादित की है। इससे इतना तो पता चल ही जाता है कि श्रोत्रिय जी को चाहने वाले देश भर में बड़ी संख्या में हैं। उस पुस्तक में ज्ञानरंजन का एक पत्र छपा है। उनके पत्र की आखिरी पंक्ति है- 'मुझे आपके अन्दर का डेमोक्रेट और आपका साहित्य-विवेक हमेशा प्रिय रहा है।' (पृ.-517)

यह सच है, दिल की बात है। पर मुझे इस वक्त शेमशेर याद आ रहे हैं—'मुझको मिलते हैं अदीब और कलाकार बहुत। लेकिन इन्सान के दर्शन हैं मुहाल।' मेरा कहना यही है कि श्रोत्रिय जी लेखक बहुत बड़े हैं पर मनुष्य के रूप में भी कम बड़े नहीं हैं। देखने के लिए आँख चाहिए और स्वीकार के लिए साहस और ईमानदारी। उनका संपूर्ण कृतित्व उनके व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति है, उन्हीं के अन्तःकरण का विस्तार।

22, रीडर्स क्वार्टर्स, युनिवर्सिटी कैम्पस, मुजफ्फरपुर- 842001
फोन : 0621-2243087

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आलेख

इक्कीसवीं सदी का पराजित गाँधी

धर्मेन्द्र सिंह बघेल

प्रारम्भ में ही बता देता हूँ, यह कल्पना की उपज नहीं बल्कि एक सच्ची कहानी है। वह भी एकदम ताजा, इक्कीसवीं सदी की शुरूआत की कहानी। हमेशा नगर-महानगरों में रहे कुछ लोग भले ही कहें - 'आय डोंट बिलीव इट' पर उनके कहने से सच्चाई में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। यह कहानी पूरी भी हुई या नहीं, पता नहीं, उदय प्रकाश जानें या जानें कॉमरेड विजेन्द्र सोनी। हालाँकि पूरा होना क्या होगा? मोहनदास का मरना या बिसनाथ का जेल में होना? किंतु मोहन दास ने जो भुगता वह तो वापस हो नहीं सकता, न उसके और उसके परिवार द्वारा सही गई घनघोर पीड़ायें लौट सकतीं। अतीत के दंश से लहूलुहान मोहन दास परिवार सहित खत्म सा ही हुआ है तो अब कहानी खत्म होने में बचा भी क्या!

बड़ी-बड़ी कोयला खानों के लिये प्रसिद्ध मध्यप्रदेश के शहडोल जिले की कोयला खान क्षेत्र से जुड़ी है उदय प्रकाश की लंबी कहानी मोहन दास। पिछली शती के अंत में जिस तरह मध्यप्रदेश बँटकर दो राज्य बना, उससे बढ़कर शहडोल तीन जिलों में बंट गया। पता नहीं राजनेताओं को इस बँटवारे से क्या मिला, किन्तु प्रदेश विभाजन पर दोनों तरफ के लोग आज भी उसांसें भरते मिल जाते हैं, उनकी पीड़ा 1947 के बँटवारे की तुलना में कुछ ही कम होगी। इस विषयातिरेक पर चर्चा फिर कभी। बहरहाल यह कहानी नये बने अनूपपुर जिले के हिस्से मे आई। उल्लेखनीय यह है कि उदय प्रकाश इसी जिले में जन्मे। यह उनके गाँव के आस-पास की कहानी है। अनूपपुर अत्यंत पिछड़ा जिला था, अभी भी है। आजादी के साथ ही विगत पचास वर्षों में कोयला खानों के खुलते जाने से विकास और समृद्धि की आस बँधी थी। इन खदानों के खुलने से जिले की रेवेन्यू खूब बढ़ी, खनिज राजस्व आमदनी में आज प्रदेश में इस जिले का दूसरा-तीसरा स्थान होगा किंतु समग्र विकास की दृष्टि से देखें तो यह आखीर के कुछ जिलों में से होगा। कुछ कोयला पॉकेट्स को छोड़कर शेष जिला अभी भी वैसा ही पिछड़ा का पिछड़ा है। यदि यहाँ से अर्जित रेवेन्यू की आधी भी सचमुच यहीं खर्च होती तो यह पूरा क्षेत्र बल्कि अविभाजित तीनों जिले कम से कम भोपाल तो बन ही जाते। हाँ, जैसा कि औद्योगिक क्षेत्रों में होता है, विकास (?) के साथ-साथ त्रासदियाँ भी आती हैं। जहाँ नए-नए धनवान पैदा होते हैं वहीं वे गरीबों के नए शोषक के रूप में भी उभरते हैं।

इस कहानी मोहन दास में ऐसी ही एक त्रासदी उदय प्रकाश ने उठाई है कि दूसरे के नाम पर कोई और नौकरी करे। इस कोयलांचल में यह बहुतायत में है कि किसी और के नाम-पहचान को लेकर कोई दूसरे ही व्यक्ति कोयला खानों में नौकरी करते हैं। असल में होता यह है कि जिन ग्रामीणों की निजी भूमि के नीचे कोयला मिलता है उन्हें कोयला कंपनी मुआवजा तथा नौकरी देती है। [illegible] प्रकरण ऐसे हैं कि फिटनेस आदि न होने से अथवा अंडरग्राउंड खान में खतरे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के भय आदि से उत्पन्न अनिच्छा से मूल पात्रताधारी व्यक्ति यदि नौकरी नहीं करना चाहता था तो उसने अपना नाम और पहचान कुछ सौ या हजार रुपयों में दूसरे को बेच दिया या कहें लालच देकर दूसरे ने खरीद लिया। खरीददार स्थानीय व्यक्ति कम किंतु निकटवर्ती प्रदेशों से आए लोग ज्यादा रहे। उन्होंने जोड़-तोड़ से अपनी गलत की सही तस्दीक कराके नौकरी भी पा ली। मूल व्यक्ति को हासिल वे कुछ रूपये तो कब के खत्म हो गए, वह गरीब का गरीब ही रहा। इधर भूमिगत खानों में दिनों दिन सुरक्षा उपाय बढ़े जिससे क्रमशः जान गँवाने का भय खत्म हुआ तथा पगार भी बढ़ती गयी। अब वो गरीब जब दूसरे को अपने नाम से दस-बीस हजार रुपये महीने कमाते देखता है (कालरीज में जनरल मजदूर तक ओव्हर टाइम ड्यूटी से 10 से 20 हजार रुपये महीने कमा लेते हैं) तो वह मन मसोसकर रह जाता है। ज्यादातर तो अपने सादेपन से यह करने का सोच भी नहीं पाते कि लौटाएँ उसके दो-चार हजार रुपये और अपना नाम-नौकरी वापस ले लें, शायद इसलिये कि दूसरा उसका नाम लेकर स्थापित हो चुका होता है तथा कुछ हद तक पैसे से प्रभाव भी हासिल कर चुका होता है। दूसरे काफी समय निकल जाने के बाद उसकी आयु, फिटनेस आदि की पात्रता भी खत्म हो चुकी होती है (फिट तो वह गरीब पहले भी नहीं था तथा अभावों और उम्र बढ़ने के साथ वह आगे कभी फिट होगा यह सोचना भी अपराध है)। हो सकता है कि 'नयी हवा' पाए कुछ लोग ब्लैक-मेल कर कुछ रुपया धेला पा भी जाते हों पर उदय प्रकाश की कहानी इससे थोड़ा भिन्न है। यह नाम बेचने की नहीं बल्कि नाम और पहचान चुरा लिए जाने की कहानी है। यह कहानी उस चुराए नाम और पहचान को वापस पाने के संघर्ष की भी कहानी है। किंतु विडंबना यह है कि आखिर में मोहन दास जिसने कभी टॉप श्रेणी ग्रेजुएशन किया था वही शख्स अपना नाम और पहचान मिटाने के लिये हलफनामा तक देने को तैयार है। ऐसा नहीं कि वह लड़ा नहीं? यद्यपि ज्यादातर आसपास के लोग उस गरीब लाचार के खिलाफ हैं, फिर भी गिने-चुने सहृदय लोगों की मदद से वह लड़ा जरूर पर ताकत के सामने ढेर हो गया। स्वानुभूत यहाँ गौण है किंतु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि उदय प्रकाश (जो बरसों से दिल्ली रहते हैं) बचपन में देखी ग्रामीण वंचितों की छवियाँ उनके मन में बसी होंगी तथा अभी भी लगातार आते जाते नयी-नयी परिस्थितियाँ देखते-सुनते होंगे इसीलिये कहानी में शक्ति है।

यह कहानी सिर्फ इतनी ही नहीं है। यह वर्तमान व्यवस्था की विद्रूपताओं पर करारी चोट करती है। हमें बताती है कि विकास के नाम पर इतने सालों में क्या हुआ है। यह कहानी हमें डर, गरीबी, लाचारी, भूख, अन्याय, अपमान, वंचना, पीड़ा, असहायता, दुःख और तनाव के रंग दिखाती है, स्तब्ध करती है। व्यवस्था पर इतना आक्रोश कि सत्ताधारियों द्वारा प्रेमचंद की सौंवीं जयंती मनाना भी गवारा नहीं।

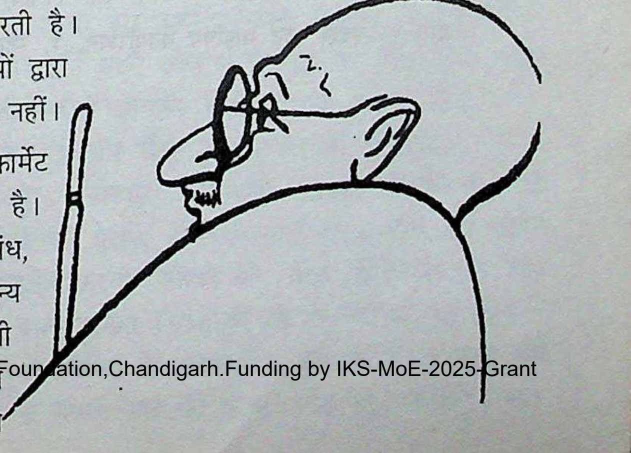

उदय प्रकाश को कहानी लिखने के स्थापित फार्मेट को तोड़ने वाला कहानीकार कहा जाता है। विविध लेखन यथा कविता, कहानी, निबंध, आलोचना, पत्रकारिता, फिल्म, टीवी, अन्य भाषा के ढेर अनुवादों ने उन्हें प्रतिभाशाली सिद्ध किया है। उपन्यास न लिख पाने का आरोप था किंतु 'चीना बाबा' आ ही रहा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। इनके आलोचक बहुत हैं पर इसे भी प्रतिभा और सफलता की निशानी क्यों न मानें। कहानियों में शिल्प के साथ नए-नए प्रयोग उदय प्रकाश करते आये हैं। यहाँ पात्रों के नाम महात्मा गाँधी के परिवार पर हैं किंतु वे स्वयं कहते हैं कि यह प्रतीक कथा नहीं असलियत है मामूली हेरफेर के साथ। फिर भी यह कहना शायद गलत न होगा कि यह कहानी इस दौर के हारे हुये गाँधियों की प्रतीति अवश्य कराती है और देखा जाए तो सैंतालिस की आजादी के बाद विभाजन की मार-काट को गाँधी ने अपनी हार ही तो माना था। शिल्प में प्रयोग का एक और नमूना यह है कि पुस्तक में उदयप्रकाश द्वारा कंप्यूटर पर बनाए गए चित्र भी प्रकाशित हैं और खासा प्रभावित भी करते हैं। कथा क्षेत्र सरगुजा सीमा से लगे विंध्यप्रदेश का है। यहाँ स्थानीय बघेली-सरगुजही-छत्तीसगढ़ी की एक मिश्रित बोली चलती है, जिसका प्रयोग कहानी को विश्वसनीयता प्रदान करता है। इससे यह भी ध्यान पड़ता है कि भाषाविदों, छात्रों के शोध के लिए भी यह मिश्रित बोली उपयुक्त है। 'मोहन दास' हंस में धारावाहिक प्रकाशित हुई थी। तब इस पर खूब चर्चा हो चुकी है। कुछ समीक्षकों द्वारा इसे महाकाव्यात्मक कहानी कहना तथा उदयप्रकाश को आज के कठिन समय के जटिल यथार्थ को सरलता से कह जाने वाला कथाकार कहना सटीक है। यह भी कहना चाहूँगा कि 'आउटलुक' के एक ताजा अंक में उदय प्रकाश को देश के वर्तमान में जीवित दस शीर्षस्थ साहित्यकारों में शामिल करने के औचित्य को यह कहानी पुष्ट करती है। यह ऐसी कहानी है जिसे पढ़ने के बाद लंबे समय तक इसके प्रभाव, एक अवसाद से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। यह भूलने वाली नहीं बल्कि याद रह जाने वाली कहानी है। यह हमें अपने आजू-बाजू देखने और यह आत्म विश्लेषण करने को विवश करती है कि कहीं हम भी 'मोहन दासों' को सताने वालों में जाने-अनजाने शामिल तो नहीं हैं?

कहानी पर कुछेक आपत्तियों की चर्चा जरूर की जानी चाहिए। जैसे कि कहानी के बीच अखबारी खबरें/सूचनाएँ देने का औचित्य? कहानी का बना-बनाया फार्मेट तोड़ने की तो यह भारी हिमाकत समझ में आती है। गौर किया जाये तो यह कहानी की घटना विशेष के समय में देश-दुनिया के दूसरे हिस्सों में ठीक उसी समय क्या चल रहा था उसके बरक्स देखने-दिखाने की अनूठी प्रक्रिया साबित होती है जो कहानी के प्रभाव को पैनापन तो देती ही है साथ यह भी बताती है कि विकसित और विकासशील देशों के मुट्ठी भर विकसित तबकों के अलावा सारी दुनिया के हाल लगभग एक जैसे हैं। हर जगह यातना-दुःख-त्रास के रंग एक जैसे हैं। ध्यान आता है कि क्या इस कहानी जैसा ही कुछ धनबाद, झरिया, रानीगंज, उड़ीसा सहित सभी कोयला क्षेत्रों में भी घटित हो रहा होगा? कौन पता लगाएगा।

द्वारा-मध्यप्रदेश स्टेट माइनिंग कार्पोरेशन, 1, स्टेट बैंक कॉलोनी, नैनागढ़ रोड, मुरैना (म.प्र.)

मो. - 09425373848

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गौरीनाथ की कहानी 'अन्है'

'अन्है' के बहाने गाँव में वापसी

पलाश विश्वास

'अन्है' के बच्चनबाबू का गांव अभी बसता होगा कहीं मैला आँचल या परती परिकथा में हमें तो जिन गाँवों से वास्ता पड़ता है, वहाँ नदियाँ या तो मर गयी हैं, बंध गयी हैं या फिर बिक गयी हैं। मछलियां मरी हुईं, सड़ी हुईं, इस कहानी की तरह चींटियों के हमले में जख्मी कंकालसार बाज़ार में ही उपलब्ध हैं। हमारे गाँववाले तनिक ई- हो गये हैं। खेतों तक बाजार का विस्तार। मारे मोबाइल का शोर। लोकगीत् अब किसी को याद नहीं। टी.वी. ने गाँववालों का 'आई क्यू' बहुत बढ़ा दिया है। कौन ससुरा उन्हें अब निरा मूरख मानेगा। कंप्यूटर तक उपलब्ध हैं। तमाम रीमेक्स और ब्लू उपलब्ध हैं। संस्कारों के कुसंस्कार और जात पाँत का रगड़ा-झगड़ा छोड़ दें तो गाँव कहीं है ही नहीं, न चारागाह है, न पशुधन। घोड़ा आदि की कौन कहें, गाय-भैंस तक नदारत, गोबर तक खरीदना होता है। घी खरीदेंगे काहे, पाउच में रिफाइन्ड हैं न? इस कहानी ने हमें अपने बचपन के दिनों में लौटा दिया। जब सचमुच गाँव होते थे। नदियाँ होती थीं, रिश्ते-नाते होते थे, ग्वालिन होती थीं। देवर भाभी की चुहलें मनोरंजन थी। अबहीं तो सीरियल का जोर है चौबीसों घण्टे लाइव। फिर इन्टरनेट भी।

'अन्है' के पात्र भी जाने-पहचाने मगर सदूर अतीत के लगते हैं। पढ़ते हुए लगा कि कहीं भाई गौरीनाथ ने बन्धु उदय प्रकाश की छतरियों पर उलट जादुई यथार्थ तो दे नहीं मारा!

सतीनाथ भादुड़ी का 'ढोढ़ई चरित' याद हो आया। राजकमल चौधरी भी बहुत दिनों बाद याद आये। और मिथिला की बात हो तो रेणु को क्योंकर भूलें?

दरअसल, माटी बचाने की जद्दोजहद में लहूलुहान है देश, कलिंगनगर से लेकर सिंगुर तक देश का नक्शा देख लें .... और बन्दूकों के बोल में लोकधुनों की औकात क्या? संवेदनाएँ मरी हुई कुछ मछलियों की तरह गन्धाती और बच्चनभाई का करिश्मा देखिये:

'मछली मरी हुई थी, मगर ताजा होने का आभास दे रही थी। बच्चन भाई की खुशी पर आघात हुआ था। मगर उन्होंने उम्मीद नहीं छोड़ी थी। नाक के पास ले जाकर सूँघा। बदबू नहीं थी। पेट पर बने सूराख से आंककर देखने लगे। अन्दर इस कदर खोखला हो गया था कि महीन-महीन काँटों का ढाँचा भर नजर आ रहा था। हाँ, ऊपरी आवरण पर पूँछ की तरफ कुछ मांसल हिस्सा बचा हुआ था। उन्होंने घास पर हौले-हौले झाड़कर सारी चीटियाँ अलग की।'

वाह! संवेदनाओं को सहेजने के लिए बच्चनभाई और गौरीनाथ को असंख्य धन्यवाद!

भूमण्डलीकरण ने देश का बण्टाधार कर दिया। बच्चनभाई क्या करते? ''घास पर बैठे-बैठे वह कभी कलकल करती बह रही नदी मिरचैया को देखते, कभी बरसाती गड्डे नाले की तरफ। नाले में जहाँ-तहाँ कीचड़ भरे लेढ़ को छोड़कर करमी, पनाकी और बेहया के जंगल उग आये थे, यहाँ बैठे-बैठे वह नदी में मछली की चाल परखते निराश हो रहे थे। कीचड़ भरे लेठों में सरसराती अन्है मछली को याद करके अपनी असमर्थता के अहसास से काँप उठे।'' संस्कृति और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

जड़ों से कटे हम क्या समर्थ हैं? तपेदिक ने बच्चन भाई की कमर मरोड़ दी, पर हमारे देह-

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मन में कौन-सी मरोड़ काम करती है? नदी के पास जाते हैं वे घिसटते हुए। मूक संवाद जारी है उनका। तमाम ध्वनि प्रदूषण के बावजूद हम किसी भी तरह के संवाद में सक्रिय हैं? बच्चनभाई को समझने के लिए आईनें में खुद को आंकना होगा। पाठक तो हिन्दुस्तानी ही हुआ आखिर। दो-चार पुश्तों के दरम्यान किसी न किसी समय में जो नदी या गाँव से जुड़ा रहा हो। हम तो विकलांग नहीं हैं बन्धु तो क्यों कोई गाँव हमारा नहीं होता, कोई नदी हमारी नहीं होती और मत्स्यराग हमें क्यों नहीं करता उत्तेजित? विकलांग होते हुए जितने सम्पन्न है बच्चनभाई, बहुमंजिली समृद्धि के बीच उतने ही विपन्न क्यों हैं हम?

गौरीनाथ ने यह कथा तृतीय पुरुष की जुबानी कही है। शिल्प के ताम-झाम के बगैर आजकल तो कथा सिर्फ भाषिक कौशल बन कर रह गयी है— चौबीसों घण्टे की 'वारदात' और 'सनसनी' की तरह कहर बरपाने वाली या फिर रैम्प पर फैशन शो को निकली सुन्दरियों की तरह। सारा फोकस देह पर, अंगप्रत्यंग पर। आत्मा तो है ही नहीं। शायद इसीलिए इस कहानी में कथा बची हुई है और उसकी अन्तरात्मा भी।

बेंतें मारकर सबक याद कराने वाला शिक्षक इस राष्ट्रीय परिदृश्य में कहीं नहीं है। वेतन नहीं, छात्रों के बनते-बिगड़ते भविष्य, मनुष्य की अगली पीढ़ी बनाने के ख़्वाब में जो निष्णात। अनाज और सब्जियाँ जिनके गुजारे का मुख्य साधन है। ट्यूशन और डोनेशन, कोचिंग सेंटर और निजी देशी-विदेशी विश्वविद्यालयों की रंगारंग दुनिया में कथाकार ने बच्चनभाई का आविष्कार कैसे कर लिया?

'अन्है' (मछली) का स्वाद हमने भी कभी चखा होगा। हमारे भी मास्साब बेंत से धुन दिया करते थे। सब्जियाँ और अनाज हम उनके डेरे में पहुँचाते थे, जिन्हें महीनों पगार का इन्तजार होता था। वह प्यार, वह स्नेह हम भी नहीं भूलें। पर ईमानदारी की बात-मास्साब की नाराजगी दूर करने के वास्ते अन्है का शिकार नहीं किया। मास्साब के हाथों पकाया खाते और साथ-साथ खाने का नसीब जरूर हुआ। पर नदी किनारे मछलियों की खोज, खेतों में तैरती मछलियाँ और कीचड़ उलीचकर अन्है का शिकार कृष्णसार हिरण या फुटपाथ वासियों के शिकार या फिर गैर इरादतन हत्या के बाद सेलिब्रिटी होने की खुमार और बाहुबली के जनप्रतिनिधित्व से निश्चय ही ज्यादा उत्तेजक है। जड़ों से कटे हम महानगरीय जीविका जीवन में प्रतिस्थापित, फास्टफूड, जंकफूड और देशी-विदेशी केसिपी में क्या अन्है को याद करें! पर वह स्वाद तो इस कहानी ने हमारी जीभ पर ला ही दिया!

वर्णव्यवस्था और मनुस्मृति के अभिशाप पर बनी समाज व्यवस्था को बदलने के लिए सिर्फ देह का गणित ही हथियार नहीं होता। जल चलाचल, छुआछूत, खान-पान, रहन-सहन, भूमि व उत्पादन सम्बन्धों में जो वैषम्य है, उसे अन्है जैसी क्षुद्र चीजों से भी अभिव्यक्त किया जा सकता है। गरीब, सर्वहारा के प्रति सवर्ण शासकीय दृष्टिभंगी को उजागर करने के लिए बच्चनभाई का यह सवाल काफी मौजूं है, ''जो लोग अन्है को साँप कहते, वह हमें मानुस नहीं समझते। तो क्या हम राक्षस हैं?''

जीवट का यह मत्स्यराग हारमोनियम मास्टर, ट्यूशन और घोड़ा घी तक विस्तृत है। यह बात अभी उम्मीद जगाती है कि किसी गाँव के कैनवास पर बच्चनभाई कबीर का पद गा रहे होंगे। और शायद कहीं किसी नदी की लेढ़ में कुदाल चलाते हुए अपने मास्साब को खुश करने के मकसद से अन्है की खोज में व्यस्त होंगे खोए हुए भारत के खोए हुए गाँव के खो गए बच्चे!

द्वारा/श्रीमती आरती राय, पोस्टऑफिस, सोदपुर, कोलकाता-700110

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अफ्रीकी कविता

टिमोथी वांगुसा

अनुवाद : दिविक रमेश

मालिक और रसोइया

कहाँ रहा तू लड़के? पूछा मालिक ने रसोइए से
कहाँ रहा तू, सुबह से शाम तक
क्या समझता है, किसने पकाया होगा मेरा नाश्ता,
दोपहर और रात का भोजन
जवाब दे कहाँ था पूरा दिन

मैं भीड़ के साथ था मालिक, उत्तर दिया रसोइए ने
मैं भीड़ के साथ था वहाँ जहाँ मिलते हैं तमाम रास्ते
केले के तंतुओं से बनाया हमने एक दैत्य मार गिराने लायक़
उसे जलाया और नाचे उसकी राख पर पूरा दिन

दूर हो जा मेरी नज़रों से, गुलाम!
ग़ुस्से से चिल्लाया मालिक रसोइए पर
दूर हो जा मेरी नज़रों से अपनी टिड्डा-टाँगों पर, एकदम
जा और जाकर जला असंख्य दैत्यों को,
जैसे जलाया केले के तंतुओं से बना दैत्य-
पर मत आना कभी रेंगते और रसोइया सा बखान करते
यहाँ जिससे संबंध है तेरा।

माटी गीत

कुछ नहीं इतना नज़दीकी जितनी कि यह माटी
नहीं मधु कोई इतना मीठा जितनी कि यह पृथ्वी
नहीं ख़ज़ाना इतना प्यारा जितनी कि यह गारा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

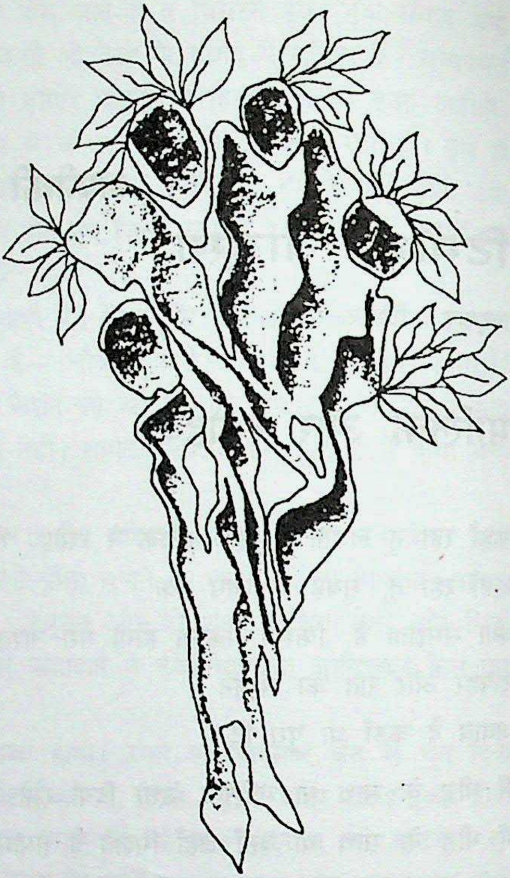

यह माटी शिशु मेरी माँ का
सच पर इसको कब जाना था
कि सार यह गारा मेरी देह की
खाकर जिसको प्राण बचाता
कि पलट घूम जो मुझको खाती
खाद बनाती इस दुनिया का।

रहस्यमय बूटी

आओ मेरे साथ संतप्त बच्चों
आओ मेरे साथ जीर्ण-शीर्ण पहाड़ की ओर
दिखाऊँगा मैं तुम्हें एक गुप्त स्थल
उगती है जहाँ एक ख़ास रक्तवर्णी बूटी
एक पुरातन शिला के बीच खोखल में।
तुम्हारे दादा-मेरे पिता ने दिखाई थी मुझे
और कहा था तुम्हें दिखाने को
इससे पहले कि चूस लिए जाएँ ये मेरे प्राण
और मेरा हश्र हो वही जो होता है बुझा दी गई मोमबत्ती का
और मैं लौट जाऊँ वहाँ जहाँ विश्राम करते हैं अस्त होकर सूर्य।
जा चुका हूँ जब मेरी मिट्टी के ढेर पर रखना
तीन पत्तियाँ उस बिरली बूटी की
तब सच जैसी लंबाई मेरे वर्षों की
लौटूँगा मैं तुम्हारे एक ख़ास सपने में
और फुसफुसाऊँगा तुम्हारे कानों में एक ऐसा रहस्य
कि बदल जाएँगे तुम्हारे आँसू एक सुखभरे गीत में...।

सड़क के किनारे

शिव मंदिर की उत्तरी दीवार
से लगी थी सड़क,
कहा जाता है : अग्रहारम, ब्राह्मण बस्ती।

हमने देखा : माँ-बाप, दादा-नाना
के झगड़ों की निशानी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुजराती कविता

अनिल रामनाथ जोशी

अनुवाद : स्वयं कवि

पत्ता

मेरी कई शाखाओं में एक भी पत्ता नहीं है
मुझे पतझड़ का डर मत दिखाओ
पंछी के साथ हवा भी मुझसे दूर भाग रही है
मैं सूखे हुए आम के पेड़ की लकड़ी हूँ
फिर भी मुझमें अभी तक पेड़ जाग रहा है
मैं घोंसला में रखा हुआ तिनका नहीं हूँ
मुझे बिजली का डर मत दिखाओ
मुझसे अब एक चींटीं का भी वजन
सहा नहीं जाता
एक के बाद एक शाखाएँ गिर रही हैं
मैं सोचता हूँ अब गिरने में कितनी देर है
मैं बर्फ में रखा हुआ पानी नहीं हूँ
मुझे सूरज का डर मत दिखाओ

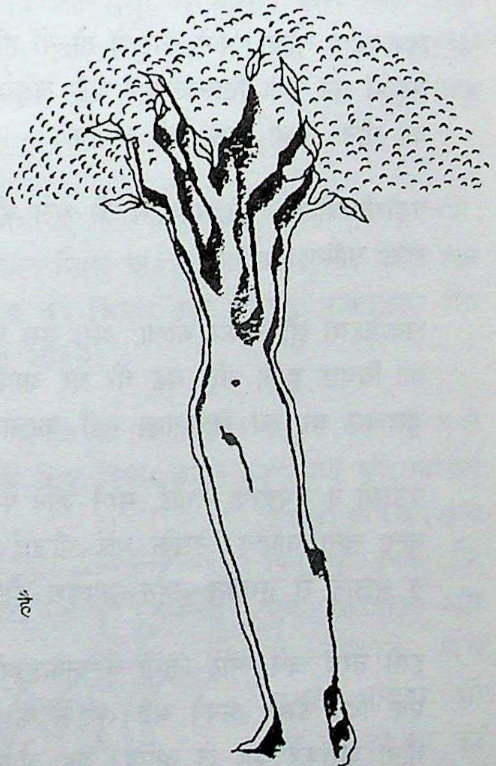

हवा

मैं हवाओं को अँगुली रखकर बता नहीं सकता
क्योंकि मैं खाली शकुन्तला की ऊँगली हूँ
शकुन्तला मुझसे भाग्यवान थी,
क्योंकि उसकी अँगूठी नदी की मछली के पेट में
चली गई थी और नदी किनारे मच्छीमार थे
लेकिन मेरी अँगूठी एक्वेरियम की मछली के पेट में है
और एक्वेरियम कोई मच्छीमार नहीं
मैं फागुन के दिनों में ऐसे गाता हूँ
जैसे जंगल में धुआँधार गुलमोहर बरस रहा है
शायद कौवा भी लाल हो जायेगा
अब मैं घर से बाहर निकल चुका हूँ
जैसे पारिजात के जंगल में गंधहीन पवन घूमता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मणिपुरी लोककथा

बहू-लक्ष्मी

एक लकड़हारा था। उसके सात लड़के थे। वे सभी बड़े आलसी थे। बाप निकम्मा और लड़के कपूत। उन्हें गाँव के ज़मींदार के यहाँ रोज़ एक-एक गट्ठर लकड़ियाँ देनी पड़ती थीं। उनके बदले में उन्हें एक-एक सेर अनाज मिल जाता था। वे लाचार होकर जंगल में जाते, लकड़ियाँ काट कर लाते, और मजबूरी में जमींदार के यहाँ से एक-एक सेर चना ले आते थे। शाम को जब वे अपने टूटे-टूटे झोंपड़े में आते, तो अपने-अपने चूल्हे पर चने भूनते और खाकर सोये रहते। इसी तरह उनके दिन कटते थे।

एक दिन लकड़हारे के पड़ोसी ने उससे कहा, 'तुम अपने लड़कों का विवाह क्यों नहीं करते?'

लकड़हारा बोला, 'अरे, घर में तो यों ही खाने का ठिकाना नहीं, लड़कों के विवाह कराकर बहुओं को क्या खिलाउँगा? बड़े लड़के का विवाह हुए पाँच साल बीत गये, किन्तु बहू का गौना अभी तक नहीं कराया।'

पड़ोसी बोला, 'हाँ भाई, मैं तो भूल ही गया था। तुम्हें बड़ी बहू का गौना अवश्य करा लेना चाहिए।'

लकड़हारा झुँझलाकर बोला, अरे, उस कलमुँही का नाम मत लो। जिस महीने बड़े लड़के का विवाह हुआ और बहू मेरे घर आयी, तभी मेरी घरवाली चल बसी। अब मैं उसे यहाँ बुलाकर घर का सत्यानाश नहीं करवाऊँगा।

पड़ोसी ने समझाया, 'भाई, मरने-जीने पर मनुष्य का क्या वश? तुम्हें अपनी बहू को अवश्य बुला लेना चाहिए। उसके भाई-भौजाई आखिर उसे कब तक अपने यहाँ रखेंगे? बहू को न बुलाने से तुम्हारा बहुत अपयश होगा।'

इसी तरह जब और लोगों ने लकड़हारे से बहू का गौना कराने को बार-बार कहा, तो एक दिन उसने अपने बड़े लड़के को बहू को लिवा लाने के लिए भेज दिया। लड़का गौना कराकर बहू ले आया। वह अपनी पत्नी को एक पड़ोसी के यहाँ छोड़कर जंगल में लकड़ी लाने के लिए चला गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

इधर पड़ोसिन ने दुल्हन को उसका असली घर दिखा दिया। घर के स्थान पर एक टूटी-

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फूटी झोंपड़ी खड़ी थी। वह भिखमंगों का अड्डा जैसा दिखता था। झोंपड़ी में आठ चूल्हे बने थे। घर ने कभी झाड़ू का मुंह नहीं देखा था। कहीं चने के छिलके बिखरे थे कहीं पर कूड़े-करकट का ढेर लगा था। घर की दशा देखकर दुल्हन को रुलाई आ गयी, पर उसने अपने भाग्य को नहीं कोसा। वह तुरन्त काम में जुट गयी। उसने एक चूल्हे को छोड़कर शेष सातों चूल्हे तोड़ डाले। एक झाड़ू बनायी और घर साफ करने में लग गयी। घर की सफाई कर वह सभी लोगों के आने का इंतज़ार करने लगी।

शाम को लकड़हारा अपने सातों लड़कों के साथ मज़दूरी लिए घर आ पहुँचा। आते ही जो घर की सफाई देखी, तो उन लोगों का जी खुश हो गया। पर जब उन्हें घर में अपने-अपने चूल्हे न दिखे, तो वे बिगड़ खड़े हुए। एक क्रोधित होकर बोला, 'यह तो आते ही आते घर का सत्यानाश करने पर तुल गयी। देखो न, अपने पति का चूल्हा तो बना रहने दिया और हमारे सभी चूल्हे फोड़ डाले। अब एक चूल्हे पर इतने चने कैसे भुनेंगे? इनके भुनने में घंटों लगेंगे। हमारा भूख के मारे दम निकल रहा है।'

दुल्हन सब कुछ सुन रही थी। उसने एक कठौते में हाथ-पैर धोने के लिए पानी दिया और बैठने के लिए एक चटाई बिछा दी। जाड़े के दिन थे। अत: उन सबके हाथ-पैर सेंकने के लिए उसने आग भी सुलगा दी। फिर वह ससुर से बोली, 'आप लोग हाथ-पैर सेंकें, तब तक मैं खाना बनाकर लाती हूँ।' यह कह कर वह चने लेकर पड़ोसिन के यहाँ चली गयी। उसने सारे चने पीसे। आधे आटे की रोटियाँ बना ली और आधा बचा लिया।

इधर ये लोग भूख के मारे छटपटा रहे थे, तभी दुलहन रोटी-साग लेकर घर आ गयी। बरसों के बाद इन लोगों को ऐसा स्वादिष्ट भोजन मिला था। रोटियाँ बहुत थीं। सबने खूब ठूँस-ठूँस कर खायीं। जब अघा गये, तब खाना बंद किया। अब तो बूढ़ा लकड़हारा और उसके बेटे नयी बहू की चतुराई पर फूले न समाये।

सुबह होते ही सभी लकड़हारे लकड़ियाँ लेने जंगल को जाने लगे। बहू ने रात की बची हुई रोटी का एक- एक टुकड़ा उनको नाश्ते के लिए दिया। इससे उन लोगों को आश्चर्य हुआ। पहले तो वे एक ही शाम को सारा चना फाँक लेते थे और फिर भी उनका पेट नहीं भरता था, परन्तु अब एक खानेवाला और बढ़ने पर भी उतने ही अन्न से उन्होंने खूब अघाकर भोजन भी किया और सुबह नाश्ता भी किया। उन्होंने उस लक्ष्मी-जैसी बहू की जी भर कर तारीफ़ की। शाम को जब लकड़हारे घर पहुँचे, तब उन्हें रोटी और बेसन की कढ़ी तैयार मिली।

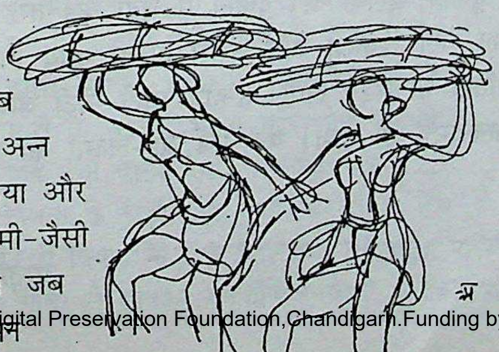

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह भोजन बहू ने रात को बचाये आधे आटे से बना लिया था। अब तो हाथ-पैर धोकर सभी तुरंत भोजन करने बैठ गये। वे सभी यह सोचने लगे कि ऐसी चतुर बहू को घर में न लाकर वे वर्षों व्यर्थ कष्ट उठाते रहे।

तीसरे दिन वे लकड़हारे जंगल को जाने लगे, तो बहू ने कहा, 'कि आप सब लोग थोड़ी-थोड़ी लकड़ी अपने घर के लिए भी लायें।' वे बहू-लक्ष्मी की बात को टाल नहीं सके। घर के लिए सभी लकड़ी का एक-एक छोटा गट्ठा लेते आये। इन लकड़ियों को बहू ने पड़ोसियों को बेचकर घर में नमक, तेल, मसाले आदि का इंतज़ाम कर लिया।

एक दिन बहू ने ससुर से पूछा, 'आप लोगों को ज़मींदार मज़दूरी में केवल चने ही देता है या दूसरा अनाज भी दे सकता है?'

ससुर बोला, ज़मींदार ने तो कोई भी अनाज एक-एक सेर देने की व्यवस्था कर रखी है। हमलोग तो अपनी सुविधा से चने ले आते हैं।

बहू ने कहा, 'तो अब से रोज़ नया-नया अनाज लाया कीजिए। आज मज़दूरी में चावल ले् आइए।'

'बहुत अच्छा', कहकर ससुर जंगल चला गया। उस दिन सभी मज़दूरी में चावल लाये। अब तो उन लोगों को भोजन में भात, कढ़ी, साग-रोटी भी मिली। ऐसा अच्छा भोजन भोज के सिवा इन लोगों ने कभी खाया ही नहीं था। वे सभी बहुत खुश हुए। बूढ़ा लकड़हारा अब उसे 'लक्ष्मी बहू' कहता और देवर उसे 'लक्ष्मी भाभी।'

लकड़हारे मज़दूरी में अनाज बदल-बदलकर लाते थे। अब उस घर में गेहूँ, चना, दाल तथा गृहस्थी का सभी सामान जुटने लगा। बहू रोज़ मज़दूरी के अनाज में से आधा अनाज बचाकर रखती थी। उसने मिट्टी के छोटे-छोटे कोठार बना लिए थे। अब उस झोंपड़ी में रौनक आ गयी थी।

कुछ महीने बाद बहू ने बूढ़े ससुर का मज़दूरी पर जाना बंद करवा दिया और उसे गाँव में ही एक छोटी-सी दुकान खुलवा दी। दुकान में बूढ़ा कई तरह की चीज़ें रखता और दिन-भर बेचता। दुकान चल निकली और उससे अच्छी आय होने लगी। अब गाँव में उन लोगों की मान-प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी। उन्होंने छोटी-मोटी जायदाद भी खड़ी कर ली थी। उनका जीवन आनन्दमय हो गया। यह सब बहू-लक्ष्मी की चतुराई और मेहनत से हुआ।

प्रस्तुति : श्याम चन्द्र कपूर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भोजपुरी लोकगीत

मटकोड़वा के गीत

कहवाँ के पीअर माटी, कथी के कुदार हे?
कहवाँ के पाँच सोहागिन, माटी कोड़े जास हे?
गंगाजी के पीअर माटी, सोने के कुदार हे।
अजोधा के पाँच सोहागिन, माटी कोड़े जास हे॥
केकर धरती उपराजल, दुभिया जमावल?
केकर होला मटकोड़, सोहाग के माटी?
रामजी के धरती उपराजल, दुभिया जमावल।
सुधांशु के होला मटिकोड़, सोहाग के माटी॥
हमरो सुधांशु भइया जरिये के राजा हे,
माटी के कोड़ाई भइया काहो देब दान हे?
हाथी देबो घोड़ा देबो रुपया पचास हे,
दूनू कान के बाली देबो माटी के कोड़ाई हे॥
हमरो हिमांशु भइया जरिये के राजा हे,
माटी के कोड़ाई भइया काहो देब दान हे?
साड़ी देबो साया देबो रुपया पचास हे,
हथवा के कंगन देबो माटी के कोड़ाई हे॥
हमरो चंदन भइया जरिये के राजा हे,
माटी के कोड़ाई भइया काहो देब दान हे?
टी.वी. देबो रेडियो देबो रुपिया पचास हे,
गलवा के हार देबो माटी के कोड़ाई हे॥
हमरो अरविंद भइया जरिये के राजा हे,
माटी के कोड़ाई भइया काहो देब दान हे?
गाय देबो बाछी देवो रुपया पचास हे,
हाथवा के घड़ी देबो माटी के कोड़ाई हे॥

'मटकोड़वा गीत' भोजपुरी क्षेत्र में विवाह के मौके पर गाया जाने वाला पारंपरिक गीत है। मिट्टी कोड़ने हेतु सवा बित्ता जमीन गोबर से लीपकर धूप,दीप,अगरबत्ती जलाकर पान-कसैली रख दिया जाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रस्तुत गीत का कथातत्व है-मिट्टी कोड़ने जाते वक्त सखियाँ पूछती हैं कि यह पीली मिट्टी कहाँ की है? कुदाल किस धातु की है और ये पाँचों सुहागिनें कहाँ की हैं जो मिट्टी कोड़ने के लिए जा रही हैं? इस पर उत्तर मिलता है-यह पीली माटी गंगा नदी की है, कुदाल सोने की और पाँचों सुहागिनें आयोध्या की है।

फिर दूसरा प्रश्न पूछा जाता है-यह उपजाऊ धरती कहाँ की है जिनमें दूब जमी हुई है और किसके सुहाग के लिए मिट्टी कोड़ी जा रही है? इस जवाब में सखियाँ अपने भाई का नाम लेती है और फिर बताती है कि यह उपजाऊ धरती भगवान राम की है।

इस लोकगीत के तीसरे प्रसंग में जब बहन, अपने भाई से यह पूछती है कि 'मैं जो आपके लिए मिट्टी कोड़ने जा रही हूँ उसके लिए आप क्या उपहार देंगे? भाई बहन के इस प्रश्न के जवाब में हाथी, घोड़ा, रुपया, कान की बाली, हाथ का कंगन, गले का हार, साड़ी, गाय-बछड़ा इत्यादि देने का वादा करता है।'

प्रस्तुति : भगवान सिंह भास्कर

मेरी लोकतंत्र की धारणा यह है कि इसमें दुर्बलतम व्यक्ति को भी वही अवसर उपलब्ध होना चाहिए जो सबलतम को प्राप्य है। यह अहिंसा के अलावा और किसी तरीके से संभव नहीं है। आज दुनिया का कोई देश ऐसा नहीं है जो दुर्बलों के प्रति कृपाभाव के अलावा कोई और अनुकूल भाव प्रदर्शित करता हो... पश्चिम में लोकतंत्र आज जिस प्रकार चलाया जा रहा है, उसे हम हल्क नाज़ीवाद या फासिस्टवाद ही कह सकते हैं। ज़्यादा से ज़्यादा, यह साम्राज्यवाद की नाज़ीवादी अथवा फासिस्टवादी प्रवृत्तियों को छिपाने का आवरण कहा जा सकता है। मेरा विश्वास है कि सच्चा लोकतंत्र केवल अहिंसा का परिणाम हो सकता है। ...पूर्ण लोकतंत्र तब तक संभव नहीं है जब तक वह पूर्ण अहिंसा द्वारा समर्थित न हो।

- महात्मा गाँधी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अरविंद कुमार अवस्थी

माँ! तुम कब आओगी

माँ! तुम्हारे जाने के बाद जाना
किं तुम्हारे होने का सच
घर के होने का सच था
हमारे होने का सच था
जब से गयी हो तुम
पथरा गई हैं पिता की आँखें
बहुत कम बोलते हैं अब
माँ! घर में अब वह
होते हुए भी नहीं होते।
और गुमसुम रहता है
शरारती बंटी
काँच की गोलियों, टी.वी. के कार्टून शो,
कॉमिक्स
और टॉफियों की ज़िद नहीं करता
वह पूरे दिन गाल पर हाथ टिकाये
सूनी-सूनी आँखों से टकटकी लगाये
उदास बैठा रहता है
अब खेलने भी नहीं जाता
पूरे दिन-दिन भर गायब रहने वाला बंटी
अब वह तनिक भी नहीं झगड़ता
स्वीटी से
और स्वीटी खो जाती है
सब्जियाँ काटते-काटते।
रोज ही तो
सब्जियाँ जला डालती है
तुम्हारी सीखी-सिखायी
प्यारी स्वीटी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कमर मटका-मटका
अब नहीं नाचती वह।
माँ!
तुम्हारे जाने के बाद
अब वह गौरैया नहीं आती
जिसके लिए तुम दानें डालती थी।
कबूतर अब छत पर नहीं उतरते
कभी-कभार ही बैठते हैं कौवे
घर की मुंडेर पर।
माँ!
सुबह-सुबह ओस से नहायी
वह नर्म और ठंडी हवा भी नहीं आती
मद्धम धूप अब हथेली पर नहीं खेलती
आसमान दोनों हाथ फैलाये
पड़ा है उतान
भिखारी की तरह।
छत तक आते-आते
बादल की हरेक बूँद
सूख जाती है
घर के बाहर सेमल के पेड़
उदास रहते हैं
पिछवाड़े लगी सब्जियों की क्यारियाँ
भरभरा आयी हैं और
आँगन में उगी नर्म दूब कुम्हला गई है
माँ!
पिछली गर्मियों में खिंचाये गये
तुम्हारे फोटोग्राफ्स
जिसमें तुम हो हँसती हुई
कंधे पर झूलता नटखट बंटी
स्वीटी, मैं पिताजी
और हमारा प्यारा घर
सब हँस रहे हैं।
मां!
हमेशा हँसने वाला मैं
अब चुप्पे-चुप्पे खूब रोता हूँ
पिता की डॉक्टरों से लम्बी फुसफुसाहटें
फर्श पर घिसटते बोझिल कदम-
बेचैनी और सूनेपन में डूबी आँखें

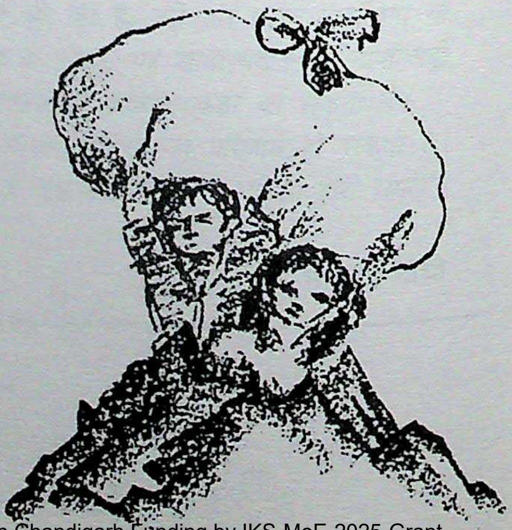

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और...
एक्सरे रिपोर्ट
दवाओं की पर्चियां, टेबल, गिलास,
शीशियाँ, टेबलेट की पत्तियाँ
और हम लोगों से छूटने के दर्द से भरी निस्पृह आँखें
काँपते बोल, पसीने से भरी ठंडी हथेलियाँ
बंटी को सीने से लगाती तुम्हारी सूनी बाहें।
मेरे चेहरे को सहलाती, थपथपाती, ढाँढ़स बँधाती
ममता में डूबी वो हथेलियाँ
फूट-फूट कर रोती स्वीटी के बालों पर तुम
हाथ फेरती चूमती
कमरे में फैले सन्नाटे को तोड़ती
एक-एक सुबकी
आँखों से टपकते-ढुलकते आँसुओं
को होठ भींच कर रोकने की नाकाम कोशिश
और...और...माँ!
वो श्मशान की लपटें
दिल में किरचों की तरह चुभती हैं
माँ! जानता हूँ
तुम कभी नहीं आओगी
फिर भी
पुकारता हूँ
तुम कब आओगी
कब आओगी
कब आओगी...।

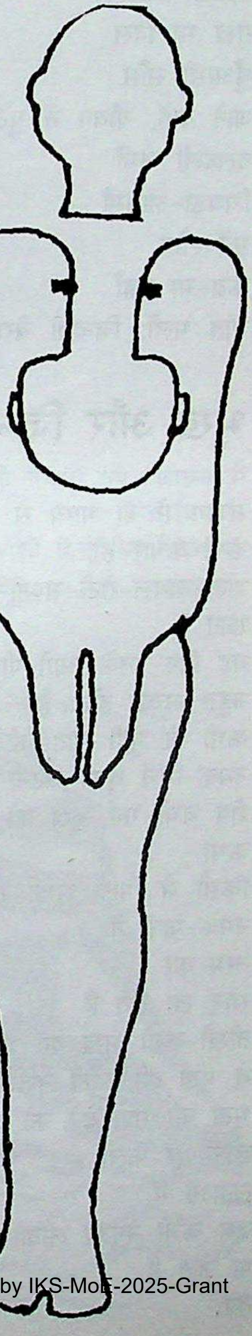

आत्महत्या से पहले किसान का बयान

ढहती दीवाल
टूटी-फूटी खपरैल
दो कमरों का
मेरा महल
पर आठ जनों में जगह ज़रा-सी कम है।
मनहूस चूल्हा
उदास बासन
बेरंग फागुन
सूखा सावन
पता है त्यौहार का मौसम है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फटी-सी आँख
फीका काजल
सूखे स्तन
सहमा आँचल
छोड़ो यह मां-बच्चे का गम है।
पानी-सा खून
गलता माँस
राख सा दिल
धुँआसी साँस
जाने क्यों, यौवन में घुटता दम है।
दलदली जमीं
चिथड़ा-आसमाँ
मुर्दे-लोग
कब्र-सा जहाँ
मौत भली, जिन्दगी बेरहम है।

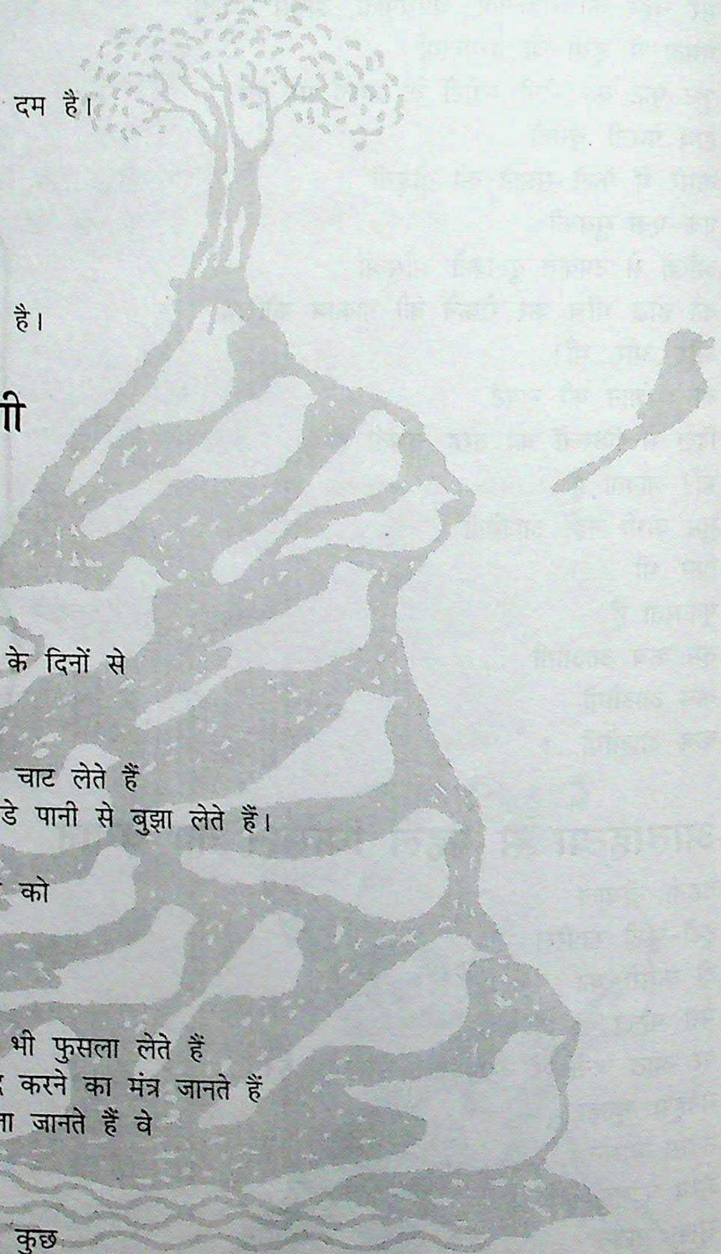

भूख और ज़िन्दगी

वे
संयोग से या भाग्य से
कभी-कभार ही
दाल-चावल-रोटी-सब्जी
खाते हैं
वह दिन उनके आगे-पीछे के दिनों से
बहुत अच्छा होता है
कभी दो मुट्ठी भात को
नमक-मिर्च बुकी चटनी से चाट लेते हैं
शेष बची गर्म भूख को ठंडे पानी से बुझा लेते हैं।
कभी
किसी से मिली सूखी रोटी को
नमक-पानी में
नरम कर
सान खा लेते हैं
तीखी-कड़ी भूख को यहाँ भी फुसला लेते हैं
वे भूख की आँखें नज़रबन्द करने का मंत्र जानते हैं
भूख को मात देने की कला जानते हैं वे
छानी पर फैली
लताओं में
जब कभी नेनुआ लौकी या कुछ
पा जाते हैं
तब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वे सब्जियाँ पकाने की सोचते है
वे बिना छौंक की सब्जियाँ खाते हैं
कभी छौंक भी लगती है तो
उतने ही तेल से जितना
एक बच्चे के कानों में डाला जाता है
उन्होंने
भूख के गहरे भँवर में स्वाद को डुबो दिया है
जगजाहिर है
चटक भूख में स्वाद के मायने धूमिल पड़ते हैं।
आश्चर्य
फिर भी सुखद आश्चर्य
कि वे हमसे (जो बिना घी की दाल को हाथ तक नहीं लगाते)
कहीं ज्यादा हृष्ट-पुष्ट हैं
आश्चर्य कि
वे जिन्दगी को
ऐसे लेते हैं
जैसे चिड़िया आकाश में अपनी उड़ान लेती है।

द्वारा : श्री रामाज्ञा राय (शिक्षक)
हिन्दी-विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

[25 वर्ष की आयु सीमा में आने वाले नए लेखक इस स्तम्भ के लिए अपनी रचनाएँ (कविता, गीत, गज़लें, दो-तीन पृष्ठों की छोटी कहानी, लेख, व्यंग्य आदि) भेजें।
आवश्यकतानुसार काँट-छाँट की जा सकती है।]

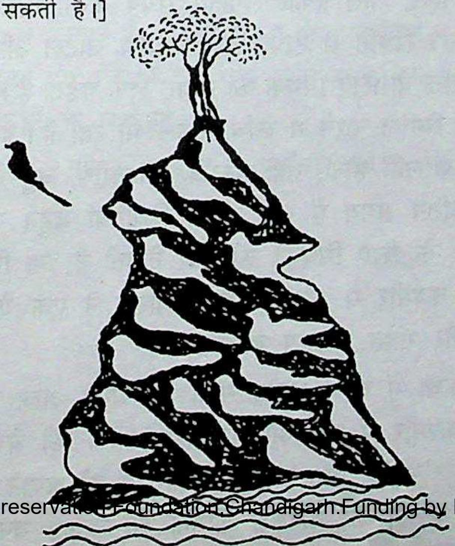

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने समय को समझने का साहस

कालवृक्ष की छाया में (कविता संग्रह) अग्निशेखर

सारांश प्रकाशन दिल्ली-110091, वर्ष-2006, मूल्य : 60 रु.

रमेश मोहन झा

'कालवृक्ष की छाया में' कवि अग्निशेखर का नया कविता संग्रह है। इस संग्रह में 'सतीसर' शीर्षक एक अद्‌भुत लंबी कविता के साथ 41 छोटी-बड़ी कविताएँ हैं।

समीक्ष्य संग्रह की कविताओं पर आने से पूर्व कवि के मानस-लोक में, अंतर्जगत में, झांकना होगा, तभी इन कविताओं का अभिप्राय जाना जा सकता है। कविता को समझने के लिए कवि के मन की छटपटाहट, उसकी पीड़ा को जानना आवश्यक है।

कवि का जन्म कश्मीर में हुआ है। विगत 17 वर्षों से लगातार निर्वासन में संघर्षरत जीवन बिता रहे हैं। वर्षों से जिहादियों की हिटलिस्ट पर हैं। धार्मिक आतंकवाद तथा विस्थापन के खिलाफ़ संघर्ष में सक्रिय भूमिका के साथ काव्य-रचना भी अनवरत चलती है। ये कविताएँ इनकी जिजीविषा को पोषण देती हैं।

'सतीसर' कविता प्रबंध काव्य की तरह नीलमत पुराण को एक आख्यान को लेकर बुनी गई है। कश्मीर के समृद्ध ऐतिहासिक, सांस्कृतिक स्मृतिकोष से निकले इस पौराणिक मिथक के माध्यम से कश्मीर की वर्तमान स्थिति, उसकी समस्याएँ एवं प्रवृत्तियाँ पूर्णतया उजागर हो गई हैं। वर्णित विषय है नागों के जीवन की विडम्बना, तथा इससे उबरने की चेष्टा। नागों को अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए किस प्रकार लगातार संघर्ष करना पड़ता है, इस पर प्रकाश डाला गया है। कश्मीर की वर्तमान स्थिति से उत्पन्न यथार्थ इतना जटिल और उलझाव भरा है कि कवि को अंततः अपनी अभिव्यक्ति के लिए मिथक का सहारा लेना पड़ता है। वर्तमान की इस कटु वास्तविकता को इसके माध्यम से चित्रित करने में कवि सफल भी रहा है। इस संबंध में राजेश जोशी लिखते हैं—'मिथक अनुरैखिक नहीं होता, वह एक बहु-संस्तरीय, बहु-केन्द्रित और बहुरूपी संरचना है, इसलिए एक ऐसे कठिन समय में जब यथार्थ स्थितियां बहुत जटिल और उलझी हुई होती हैं तब रचना अभिव्यक्ति के लिए मिथकों की ओर देखती है, या मिथक गढ़ने का काम करती है। विगत दो दशकों में कश्मीर में आतंक और निर्वासन ने एक ऐसी स्थिति को निर्मित किया है जिसमें 'विश्वास' और संदेह समरूप हो गए हैं।'

इस प्रकार सतीसर कथा में कवि अतीत गाथा की जगह आज की बात कर रहे हैं। यह कथा तो एक रूपक है। कश्मीर में बसे और निर्वासित लोगों की बेचैनी, छटपटाहट, आकुलता और इससे उबरने के लिए 'स्मृति' तथा 'जीवंत' परंपराओं को बचाने के लिए लगातार संघर्ष के साथ अपना विरोध जताने की पुरज़ोर कोशिश कविता को उत्कृष्ट बनाती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस लंबी कविता के बाद इनकी अन्य कविताओं कर जिक्र न करने से भी इस काव्य-संग्रह की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। फिर भी हम यहाँ कुछ अन्य कविताओं पर चर्चा करेंगे।

निर्वासन की पीड़ा से लबरेज इनकी कुछ कविताएँ काफी मर्मस्पर्शी बन पड़ी हैं। 'शरणार्थी शिविर', 'प्रधानमंत्री और मक्खी', 'स्मृति-वन', 'चौखट', 'छोटी-सी चुनौती', 'जेहाद' आदि कविताएँ इस श्रेणी में रखी जा सकती हैं। यह पीड़ा रोजी-रोटी की तलाश में उखड़े हुए लोगों की पीड़ा नहीं है, वरन् आतंकवादियों द्वारा जबर्दस्ती निर्वासित कर दिए लोगों की पीड़ा है। कवि का अनुभूत सत्य तथा उनका भोगा हुआ यथार्थ कविता को प्रामाणिक तथा संवैद्य बनाता है।

इसके अतिरिक्त 22 छोटी-छोटी कविताएँ द्रष्ट्व्य हैं। एक तरह से ये क्षणिकाएं कही जा सकती हैं। क्षण-भर में विद्युत कौंध की तरह शब्द प्रकट होते हैं और संकेत देकर आपको उद्वेलित कर देते हैं। देखें—

'सुई की आँख में /जैसे धागे की प्रार्थना
मेरे अंधेरे में / तुम्हारी प्रतीक्षा...।'

'पूरी उम्र जो मरता रहा/ सपने बचाने के गम में/
एक दिन सपने में मर गया/ इसी गम से।'

इस प्रकार विविध प्रसंग और घटनाओं पर अन्य कविताएं लिखी गई हैं। चुनौती का स्वर पूरे ज्वार पर है। कविताएँ विचार और भाव दोनों को संपोषित करती हैं।

'हत्याओं के खिलाफ' न्यूयार्क - 1+2, भगत सिंह की पुण्यतिथि आदि कविताएँ काफी कमजोर हैं। महज रिपोर्ट बनकर रह गई हैं। शब्द हैं मगर अर्थ ध्वनित नहीं होते।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि संग्रह पठनीय ही नहीं, वरन् कुछेक कविताएँ याद रखने लायक हैं। कविता की भाषा स्पष्टता, बेधकता, अचूकता और सार्थकता से परिपूर्ण है।

तमाम विपरीत परिस्थितियों में जीते हुए भी कवि की भाषा में कहीं भी आक्रोश या विचलन नहीं है, वरन् उनकी भाषा में एक सहजता, स्थिति की सम्यक चित्रांकन की क्षमता, परिस्थितिजन्य भाषा की चुप्पी, और अभिव्यक्ति का अद्‌भुत संयम है। साथ ही उनकी जिजीविषा मरी नहीं है, वरन् वह अपने पूरे उफान पर है। वे लिखते हैं- '...मैं सुनता हूँ/अपने दिल की दस्तकें/और उतारता हूँ दीवार के पार/तुम्हें टटोलता हुआ हाथ/जिसमें तुम थमा जाती हो/कविता के बीज/जिन्हें बचाकर मैं जाऊँगा नई शताब्दी में हताशाओं के बावजूद।'

सी-2, क्लस्टर-2, पूर्वांचल, साल्ट लेक, कोलकाता-700097

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सच को रचना ही रचना का सच नहीं है

नये घर में प्रवेश (कविता संग्रह) - नरेश अग्रवाल
सक्षम थीं लालटेनें (कविता संग्रह) - रंजना श्रीवास्तव
प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, मूल्य : 30 रु. (पेपर बैक)
सुधा बुक मार्ट, दिल्ली, मूल्य : 125 रु.

मोहनकिशोर दीवान

आज के परिवेश में, दिन ब दिन, लफ्फाजी का महत्त्व चूकता जा रहा है और शब्दों की स्फीति पर आश्रित रहने वाले कवियों के उद्यम के आगे नरेश अग्रवाल जैसे कवियों की सादे और सरल चेहरे वाली कविताएँ संवेदन के गहरे उत्खनन से उपर्जित लगती हैं। ऐसी कविताएं सीधी और सरल होने के बावजूद कोई अनुभूतिक सरलीकरण नहीं हैं। इसे सभी मानते हैं कि सरलता, साधारणता नहीं होती। किसी असाधारण अनुभव को साधारण शब्दों में व्यक्त करने के लिए शिल्पहीन कविता शायद वही कविता होगी जिसमें शिल्प का काम सर्वाधिक हो पर भी जो प्रकट न होता हो। ऐसी कविताओं के लिए यह समझना जरूरी है कि जो सरलता सतह पर प्रकट होती है उसका जन्म गहरे अनुभव की सघनता से ही होता है। नरेश अग्रवाल की कविता में आते ही जीवन के सारे स्थूल दृश्य अनुभव की सूक्ष्म इकाइयों में बदल जाते हैं। उनके अनुभव और अनुभूति जो वर्षों से बन्द दरवाजों पर दस्तक देते हैं तो वे स्वतः खुलते चले जाते हैं और नरेश सदा एवं नये घर में प्रवेश करते दिखते हैं जो महकने लगता है सब के लिए।

यह ठीक कहा गया है कि नरेश अग्रवाल के पहले कविता संग्रह पगडंडी पर गांव में सृजन और अभिव्यक्ति के धरातल पर स्थूलता और सूक्ष्मता का जो अन्तः संघर्ष दिखाई पड़ा था, वह उनके इस दूसरे संग्रह ***'नये घर में प्रवेश'*** में एक संगतिपूर्ण निष्कर्ष शामिल कर चुका है। *'मिले नहीं मुझे उतने कम शब्द। जिनसे रचा जाए छोटे में विराट को। या चुप रहकर भी कर दिया जाए। एक बयान गहनतम सुन्दरता का।'* नरेश अग्रवाल कम से कम शब्दों में अभिव्यक्ति की नई रंगतें छू लेना चाहता है अपने अनुभवों को एक नई काया, नई स्पिरिट देना चाहता है सादगी का मर्म समझते हुए। नरेश अग्रवाल अपनी स्वतन्त्र पहचान बनाने को उतावले हो रहे हैं। वे कहते हैं *'हम बढ़ते ही गए आगे और आगे। सारी दुनिया कम लगीं। वो रात कुछ ऐसी थी। अपनी अनन्त दूरी की चादर ले। सिमट कर आयी थी हमारे पास जैसे कोई संगीत की धुन बांधती है हमें। या कोई तस्वीर अचानक प्रवेश कर जाती है हृदय में।'*

नरेश अपनी पीढ़ी के उन विरले कवियों में से हैं जिन्हें समग्रता से पकड़ पाना मुश्किल है। समाज में व्याप्त मूल भूत संकटों और सवालों के साथ अपने समय की तल्खताओं को तीक्ष्ण अनुभूति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से उपजी बेचैनी उनके काव्य व्यक्तित्व के मुख्य अंग हैं। उनका सच वह सच था जो कभी दिखाई नहीं दिया। वह इतना कड़वा था। किसी ने उसे देखने की ज़रूरत भी नहीं समझी। लेकिन सच तो सामने ही था। आदमी की आखें बन्द थी।

नरेश का कहना है कि *'पूरी ज़िन्दगी भर। एक ही काम करते हुए। जैसे कोई नदी गुज़रती है। अपने सीमाबद्ध रास्तों से।'* उनकी कविता में आज के सन्दर्भ से उपजी प्रश्नाकुलता है, व्यंग्य है, पाठकों को साझीदार बनाने की गहरी तड़प है और कहीं-कहीं उद्घोषक बनने की मुद्रा भी है। आज के दोस्त और उनकी दोस्ती के बारे में नरेश कहते हैं- *'बहुत सारे दोस्त रहे मेरे/ कुछ उन कौओं की तरह थे / जो वक्त आने पर / शोर मचा सकते थे हित में मेरे / लेकिन भीतर से इतने कमजोर / हवा की थोड़ी सी धमक से / उड़ जाया करते थे मुझे छोड़कर / कुछ वैसे भी रहे / चील की तरह दूर से ही / मुझ पर दृष्टि जमाए हुए / जब भी मौका मिला / छीनकर ले गए खाना मेरा / और कुछ थे बेहद ऊबाउ / सूअर की थोथी नाक की तरह / हमेशा मुँह दिखलाते हुए।'*

नारी विमर्श और स्त्री लेखन के शताब्दी वर्ष में रंजना श्रीवास्तव ने अपने नए काव्य संग्रह ***'सक्षम थीं लालटेनें'*** में स्त्री-अस्मिता के हक में अपने स्वरों को दर्ज किया है। बीसवीं सदी के मध्य में सिमोन द बउवार या जर्मेन ग्रियर या वजीनिया वुल्फ ने नारी मुक्ति के सावल उठाये। भारत में स्त्रियों के लिए सहृदयता शुरु से रही। 'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवता' जैसी उक्तियों ने नारी को देवी के रूप में पूजने को स्थापित तो किया पर मनुष्य रूप में उसके सहज स्वभाविक मानवीय अधिकार देने में कृपणता रखी। पिछले कुछ समय से स्त्री प्रश्न केन्द्रीयता में आए और कथा साहित्य ने भारतीय समाज की इस मुखर होती स्त्री को रेखांकित किया। मन्नू भण्डारी की 'यही सच है' की दीपा के रूप में। कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी' ने। उषा प्रियम्वदा की 'पचपन खंमे लाल दिवारें' में। ममता कालिया की लैंडमार्क कहानी 'आप की छोटी बेटी' के रूप में।

नारी विमर्श की संकल्पना आधे विमर्श से या दोहरे मापदण्डों से नहीं हो सकतीं। रंजना मानती हैं कि स्त्री अगर परिवार समाज की एक इकाई है, तो सशक्तीकरण की प्रक्रिया को संपूर्ण रूप में स्थापित करना होगा। स्त्री न केवल घर, परिवार बल्कि समग्र समाज की एक स्तम्भ है। उसका अस्तित्व वैयक्तिक भी है और समूहगत भी। वह हाशिए पर नहीं बल्कि मुख्यधारा के साथ संघर्षरत रचनाकार है।

रंजना श्रीवास्तव की कविताओं को पढ़कर आभास मिलता है कि उनके द्वारा स्त्री संवेदना के आकाश में आशाओं और सम्भावनाओं के रंग भरे जा रहे हैं। एक नई सदी की दहलीज़ पर खड़ी रंजना की कविताओं में स्त्री-संताप की एक नई भाषा संवेदना सांस लेती दिखती है। *'जल रहा है दुःखों का अलाव / और पक रही है भूख / भात और दाल की जगह चढ़ा है/ चूल्हे पर / अकुलाती आंतों की / इच्छाओं का अदहन।'*

आज हम एक परिवर्तनशील दौर से गुज़र रहे हैं। सामाजिक सरोकारों के बारे में सोचने से संदर्भ बदल रहे हैं। आज का यथार्थ ज़्यादा विषमकोणीय और बहुभुज यथार्थ है। रचना संरचना में बदल रही है। ऐसी स्थिति में कविता भी किसी इकहरी प्रवृत्ति या सोच में बंध कर नहीं रह सकती। आज की कविता प्रतिरोध की कविता है। ऐसे में रंजना कहती है *'मैं चन्दन वन की कोई लकड़ी नहीं / जिसे तुम काटकर लाओ / और अगरबत्ती की तरह सुलगाओ / मैं सुलगती रहूँ / खुशबू*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बिखेरती रहूँ / और खुद को परिवर्तित करती रहूँ / राख के उस ढेर में / जो निरर्थक और स्पंदनहीन हो जाती है।'

रंजना जी की कविताओं में महिला-संघर्ष के सकारात्मक रूप बखूबी उभर कर आए हैं। दुःख-दर्द, संताप, व्यथा, आवेग, खालीपन, परायापन, कड़वापन, सुलगना, बिखरना, अवसाद, छटपटाहट, अवहेलना, उपेक्षा, हाशिए, शोषण, नृशंसता, बाजारवाद, उपभोक्ता-उत्पाद, रचना-संरचना, आस्था-निराशा यही सारे शब्द हैं जो स्त्री-अस्मिता की मुखबर कविताओं को पढ़ते हुए और उस पर विचार करते हुए हमारे भीतर एक बेहद गतिशील सा 'कोलाज' बनाते हैं। यह 'कोलाज' कई प्रवृतियों और प्रभावों का होता है, स्मृतियों और सम्भावनाओं का होता है। इसमें यूटोपिया भी है और उसका अंत भी, स्वप्न भी और स्वप्नभंग भी, सामूहिकता भी और आत्मलीन एकांतिकता भी, मोह भी और मोहमंश भी।

इक्कीसवीं शताब्दी में महिला संघर्ष का सच क्या है यह जानने के लिए सच को रचना ही रचना का सच नहीं है। रचना इस सच की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए भी एक बेहतर समाज, एक नए सामाजिक मूल्य की परिकल्पना के माध्यम से एक अकाट्य तर्क के रूप में उभरती मनुष्य की नियति के साथ तर्करत भी रहती है। रंजना ने ठीक कहा है कि *'एक साथ / इतने ज़ख्म समेटने में / कविता का अस्तित्व ही / बिखर जाएगा।'*

रंजना की कविता के मिज़ाज़ को समझने के लिए ***'सक्षम थीं लालटेनें'*** कविता का एक अंश का अनुशीलन आवश्यक है *'बाजार संस्कृति के / सम्मोहन-युक्त चौराहों पर / इंसानियत की तात्कालिक मृत्यु से / संवेदनाओं के घर में / मातमपुर्सी हो रही है / औपचारिकता की सांकलों की / खटखटाहट से हिलने लगे हैं / परम्पराओं के मज़बूत दरवाज़े / वे विकास का भ्रम पाले/ समृद्धियों के / अंकगणित में उलझ गए हैं / और घर-आंगन में / खिड़कियों से छन कर आती / धूप ने / अपना रास्ता बदल लिया है।'*

3, मिडलटन रो, कोलकाता - 700 071

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समय से टकराती कहानियाँ

गुफा का आदमी (कहानी संग्रह) संजीव
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, मूल्य : 100 रु.

आशुतोष पार्थेश्वर

संजीव हमारे समय के एक अत्यंत महत्वपूर्ण कथाकार हैं, बेहद संवेदनशील और गहन वैचारिक। 'अपराध' से आरम्भ हुई उनकी कथा यात्रा सदैव ही पाठकों का ध्यान आकर्षित करती रही है। 'कहानी' संजीव के लिए समाज से अपने जुड़ाव को साबित करने का जरिया मात्र नहीं है, यह जटिल से जटिलतर स्थितियों में भी 'ऐक्टिव' रहने और उनसे जूझने की तैयारी भी है। एक कथाकार के रूप में संजीव यह मानते हैं कि कहानी जहाँ से खत्म होती है, वहीं से उसकी वास्तविक शुरूआत होती है। इसलिए 'लिखना' संजीव के लिए 'फैशन' या 'पार्ट टाइम जॉब' नहीं है, यह संघर्ष के मोर्चे पर स्वयं को उपस्थित करने की उद्घोषणा है। इस तरह उनके रचनात्मक संघर्ष की इति कृति की समाप्ति में नहीं होती, वे रचना की सामाजिक सार्थकता तलाशने वाले कथाकार हैं।

'गुफा का आदमी' संजीव का ग्यारहवाँ कहानी संग्रह है, इसमें कुल दस कहानियाँ हैं। भिन्न-भिन्न अनुभव-खण्डों की ये कहानियाँ अपने समकाल पर उद्विग्न और तल्ख टिप्पणियाँ हैं। अनिश्चितता और दिशाहीनता के इस समय में आम आदमी की बेचैनी और अकुलाहट, छल-छद्म और प्रपंचों से भरे इस दौर में उसकी पीड़ा और प्राय: निरूपायता यही इस संग्रह का ठेठ स्वर है। यह 'संघर्ष' ही संजीव की कहानियों का स्थायी भाव है, ऐसे में इस उत्तर आधुनिक दौर में दुश्मन के लगातार चालाक होते जाने और हमारे औजारों के भोथरेपन को यह संग्रह शिद्दत से दिखलाता है।

'ज्वार' संग्रह की पहली कहानी है। इसमें दो मौसेरी बहनें हैं, एक बांग्लादेश में है, अणिमा से वह अंजुमन हो चुकी है, उसने इस्लाम स्वीकार लिया है, पर इतने से भी वह और उसका परिवार संदेह के घेरे के बाहर नहीं आ पाता है। भला 'धर्म भी भरोसेमन्द आइडेन्टिटी एवं सुरक्षा कवच कहाँ बनता है।' पर, धर्म अविश्वास और विभाजन का कारक जरूर बनता है। अंजुमन अपनी बहन से मिलते हुए इस आरोपित सत्य को दुहराती है 'तुम हिन्दू हो। हम मुसलमान।'- 'तुम हिन्दुस्तान, हम पाकिस्तान।' यह विभाजन की पीड़ा और फाँस है जो गहरे तक टीस मारती है, संजीव छोटे संवादों से उस यथार्थ को मूर्त कर देते हैं। हिन्दू-मुसलमान और इसी से हिन्दुस्तान-पाकिस्तान होने के 'सत्य' के अन्दर पीड़ा और बिछोह का लावा है, और जब वह बलबला उठता है तो उस ज्वार में दोनों बहनें सिर्फ बहन ही रह जाती हैं। हिन्दू-मुसलमान या हिन्दुस्तान-पाकिस्तान नहीं। कहानी प्रथमत: कहानी होती है फिर कुछ और, 'ज्वार' इसे खूबसूरती से सिद्ध करती है।

'योद्धा' कहानी में पतनशील सामंती ताकतें हैं और उन्हें झुका देने वाली नयी (अर्जित) शक्तियाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी। पर, नए दौर और नयी सामाजिक संरचना में इन (अवर्णीय) शक्तियों का नव सामंती-संस्करण तैयार हो रहा है, संजीव इस प्रश्न को यहाँ उठाते हैं 'बभनपना' ब्राह्मणों या ठाकुरों से आगे शक्ति, धन और प्रभावशाली बन रहे हर तबके में घुस रहा है। कहानी के अन्त में 'योद्धा' की यह पीड़ा यों व्यक्त है- 'हमारे अनजाने ही खुद बभनपने में समाते जाना-हमीं नहीं ज्यादातर लोगों का। युगों के इस बभनपने के मारे लोगों में तो बभनपना नहीं आना चाहिए था न।'

संजीव की कहानियों को पढ़ने के लिए ईमानदारी और अपने समय-समाज से बावस्तगी चाहिए। संग्रह की अधिकांश कहानियाँ जैसे 'बुद्धपथ', 'आविष्कार' , 'खयाल उत्तर आधुनिकी', 'बीहड़' आदि इस मुश्किल समय में जीवन स्थितियों में आयी जटिलताओं की ओर संकेत करती हैं। 'आविष्कार', 'धक्का' जैसी कहानियों का बाशिंदा तीसरी दुनिया का लाचार, निःशक्त और बहुराष्ट्रीय पूंजी के भ्रमों में चुंधियाआ व्यक्ति है। हमारे सपने, हमारी रोजी-रोटी, हमारी पहचान यहाँ तक कि विरोध के अस्त्र भी अब उनके कब्जे में है। 'आविष्कार' कहानी बहुत तीखे पर असहाय स्वर में भारत राष्ट्र के मूलभूत आर्थिक आधारों और उनके साथ श्रमशील तबके के तबाह होने की कहानी है। 'कायदे से जिस कारखाने को राष्ट्रीय निधि के रूप में संरक्षित किया जाना चाहिए था जो एक जीवित इतिहास था, उसे मिटाया जा रहा है। ये कौन लोग हैं, जिन्हें न इतिहास का पता है, न भूगोल का, जिन्हें यह भी पता नहीं कि कारखाना कहाँ है, उसमें क्या बनता है?' हालत यह है कि दो रुपये के नोट से 'भारत' गायब कर दिया गया है अलबत्ता 'इण्डिया' जरूर है। श्रम आधारित उद्योगों के स्थान पर बहुराष्ट्रीय पूँजी के भरोसे विकास का सपना देखना भारत राष्ट्र के आर्थिक संकल्पों का पूर्ण रूप से विपथन है।

संग्रह की कहानियां अपने समय से तीखे संवाद से उपजी हैं। 'राख' संग्रह की एक उल्लेखनीय कहानी है। यहाँ जोखन बहु एक स्त्री की पीड़ा तथा सामाजिक-आर्थिक-मानसिक प्रताड़ना सहते हुए जोखन के मरने पर उसकी चिता पर सती हो जाती है। अकारण नहीं कि यह कहानी कफन की याद दिलाती है, जो तन ढकने के लिए कपड़े नहीं देते वे बुधिया के कफन की व्यवस्था करते हैं, वे जो जोखन और उसकी पत्नी को प्रताड़ित करते हैं, वे ही उसका सती-चौरा बनाते हैं, गजब यह कि इस सती चौरा के समक्ष सर्वमंगला देवी के मन्दिर की चमक भी उदास हो जाती है। भारतीय समाज विशेषकर ग्रामीण समाज के अभी भी सामंती, मनुवादी और शोषक स्वरूप को यह कहानी प्रतिबिम्बित करती है।

'दस्तूर' कहानी ढहती हुई सामंती व्यवस्था की नंगई और खोखलेपन को तो 'बीहड़' राजनीति के छद्मों और मुखौटों को दिखाती है। बीहड़ की सिताबा आज एम.पी. है, जेल में सजा काट चुकी है, उसने अपने बलात्कारियों की हत्या की थी, पर अब उसका क्रोध, गुस्सा और स्वाभाविकता राजनीति के बीहड़ में गुम है। ऐसे में उसका खुद से प्रश्न है 'वह तब बीहड़ में थी या अब।'

'गुफा का आदमी' शीर्षक कहानी विकास की प्रक्रिया में आदिम गुफा से बाहर निकलकर तथाकथित 'सभ्यता' और 'आधुनिकता' की गुफा में प्रवेश की कहानी है। कहानी हमारी अपनी उपस्थिति को लेकर सवाल खड़ा करती है। 'सच-सच बताओ, तुम गुफा के अन्दर हो या बाहर।'

निस्संदेह 'गुफा का आदमी' संग्रह की कहानियां समकालीन यथार्थ को विभिन्न कोणों से सम्पूर्णता में देखने का प्रयास करती हैं। इस संग्रह से समकालीनता और यथार्थ पर संजीव की पकड़ पुनः प्रमाणित होती है।

बैंकमेन कॉलोनी, हाजीपुर, बिहार, पिन- 844101

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोकमत

परमानंद श्रीवास्तव (नई दिल्ली) : नवम्बर अंक में कवि लीलाधर जगूड़ी और अरुण कमल से लम्बी बातचीत कविता हमारी समझ को बढ़ाती है। जन्मशती, वैचारिकी जैसे स्तम्भ महत्वपूर्ण हैं। मैनेजर पांडे का लेख आलोचना की सैद्धांतिकी के दायरे में आता है। अन्यत्र छपी रचना की ओर ध्यान दिलाना भी पत्रिका का एक बड़ा काम है जैसे 'हंस' में छपी पंकज विष्ट की कहानी 'रूप कुंड और जंगल का रास्ता' पर वागर्थ में टिप्पणी। विनय बिहारी सिंह जैसे पाठक हमारे जरूरी साथी हैं।

फौजदार माली (इलाहाबाद) : वागर्थ का नवम्बर अंक देखा और पढ़ा। सभी रचनाएँ विशिष्टता लिए हुए पढ़ने को मजबूर करती हैं। वरिष्ठ कवि श्री लीलाधर जगूड़ी से साक्षात्कार समकालीन कविता से हमें रु-बरु कराता है।

शाकिर अली (छत्तीसगढ़) : नवम्बर अंक काफी प्रभावशाली लगा, अभ्यस्त चक्षुओं को बदला हुआ हरापन (मुखपृष्ठ) भा गया है। सामग्री नवम्बर अंक में जगूड़ी जी के इंटरव्यू, मैंनेजर पांडेय एवं विजय कुमारजी के आलेखों के कारण भी अविस्मरणीय बन पड़ा है।

दिसम्बर अंक पुनः ताजगी से भरा है पिता को पुनः प्रकाशित कर नयी पीढ़ी के प्रति आपने उपकार ही किया है, एक कमी रह गयी कि उसके साथ किसी बड़े आलोचक या ईमानदार पाठक की टिप्पणी भी हो तो क्या कहना था! शोभित वाजपेयी ने काफी परिश्रम से लिखते हुए एक दृष्टि विकसित की है, या दृष्टि विकसित करते हुए लिखा है - वैश्वीकरण पर, लेकिन लोक संस्कृति में भी कितना लोक परंपरा से जुड़ा है, और कितना प्रक्षिप्त है, यह भी ध्यान में रखना होगा, अरुण कमल जी की बातचीत ने तो जैसे सबका मन मोह लिया है। लघु पत्रिकाओं की भूमिका का आँकलन जैसा रमेश जी ने किया है, वैसा अब तक किसी ने नहीं किया है, लघु पत्रिकाओं की भूमिका एक महत्तर भूमिका है, उसने हमारों पाठकों को प्रभावित किया है, हजारों लेखक भी तैयार किया है, कई साहित्यिक आंदोलनों को जन्म दिया है, साथ ही साथ लघु पत्रिका आंदोलन मीडियाई साम्राज्यवाद के खिलाफ़ एक छापामार कारवाई भी है।

यश मालवीय (इलाहाबाद) : ज्ञानरंजन जी की अत्यंत संवेदनशील कहानी एक बार फिर पढ़ी। मन भर आया। हरि मृदुल की कहानी पटरी पर गाड़ी तो मुझे जैसे फ्लैश बैक में लेती चली गई। अरुण कमल से संवाद और विजेन्द्रजी के डायरी के पृष्ठ भी अंक की उपलब्धि है।

शशिभूषण बडोनी (उत्तरांचल) : वागर्थ का बदला रूप-रंग। दिसम्बर अंक की सभी रचनाएँ एक से बढ़कर एक पठनीय लगी। प्रख्यात कवि अरूण कमल से अंतरंग बातचीत उल्लेखनीय है। ऐसे ही विजेन्द्र जी की डायरी, नंद किशोर नवलजी का प्रिय, शेष बहुत है रात, ज्ञानरंजन की कहानी पिता, हरि मृदुल की पटरी पर गाड़ी सभी बहुत अच्छी रचनाएँ है।

संतोष खरे (मध्यप्रदेश) : नवम्बर, दिसम्बर अंक पसंद आया। संवाद स्तंभ के अंतर्गत लीलाधर जगूड़ी और अरूण कमल से की गई बातचीत सार्थक लगी। वैचारिकी में मैनेजर पांडेय और विजय कुमार के आलेख उल्लेखनीय है। पिछले पन्नों से स्तंभ अच्छा लगा। संपादकीय पढ़ने को नहीं मिला जो कि सामान्यतया हर पत्रिका का महत्वपूर्ण अंग होता है।

वीरेंद्र नारायण झा (पटना) : दिसम्बर 2006 अंक से रू-ब-रू हुआ। इसका रकवा कुछ छोटा जरूर है, मगर अंदर की लहलहाती फसलों को देखकर लगता है कि इसकी जमीन काफी उपजाऊ है। पत्रिका का बदला हुआ भूगोल तो अच्छा लगा लेकिन नहीं अच्छा लगा तो संपादकीय का न होना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुस्तकें मिलीं

1. जलती शाम (कविता संग्रह)-डॉ. सुधेश, अनुभव प्रकाशन, गाज़ियाबाद (उ.प्र.), मूल्य 100/-
2. कहानी का सातवाँ दशक-उद्भ्रांत, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, मूल्य 127/-
3. उद्भ्रांत की गजलों का यथार्थवादी दर्शन (आलोचना) - ले. अनिरूद्ध सिन्हा, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, मूल्य 127/-
4. सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ-चंद्रा सदायत, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, मूल्य 70/-
5. वासांसि जीर्णानि (नाटक) - महेश एलकुंचवार, अनु.-रमेश मेहता, दिल्ली, मूल्य 80/-
6. पूरा हँसता चेहरा (कविता-संग्रह) - रमेश प्रजापति, शिल्पायन, दिल्ली, मूल्य 125/-
7. अँधेरे में शब्द (कविता-संग्रह) - प्रो. (डॉ.) लखन लाल सिंह आरोही, आरोही प्रकाशन, खैरा, बांका, मूल्य 100/-
8. आत्मकथा : आत्मकथाओं से बाहर - डॉ. सुमन राजे, जनमेजय प्रकाशन, कानपुर, मूल्य अजिल्द 140/-, सजिल्द 280/-
9. आधुनिक समीक्षात्मक निबन्ध - डॉ. सुबोध चन्द्र सक्सेना, प्रखर प्रकाशन, हरदोई (उ.प्र.), मूल्य सजिल्द 100/-, अजिल्द 65/-
10. लोक कवि अब गाते नहीं (उपन्यास) - दयानंद पांडेय, जनवाणी प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, मूल्य 200/-
11. जिन्दगी दांव पर (कविता संग्रह) - प्रदीप गौतम सुमन, पत्रकार फाउंडेशन, रीवा (म.प्र.), मूल्य 51/-
12. बदनाम लड़की (कहानी संग्रह) - प्रमोद कुमार 'रंजना', अवसर प्रकाशन, पटना, सहयोग राशि 15/-
13. डायरी: अंतर्जीवन के साक्ष्य (दस लेखकों के डायरी अंश) - सं. हिमांशु जोशी, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली-110002, मूल्य 200/-
14. क्या लिखूँ : क्यों लिखूँ-गणेश शंकर शर्मा, विश्व भारती प्रकाशन, नागपुर, मूल्य 150/-
15. पतझड़ का स्थापत्य (कविता संग्रह) - शशि प्रकाश, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, मूल्य 75/-
16. कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना (कविता-संग्रह) - शशि प्रकाश, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, मूल्य 50/-
17. फुटपाथ पर कुर्सी (कविता-संग्रह)-कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, मूल्य 80/-
18. कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त (कविता संग्रह), कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, मूल्य 80/-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देशांतर

अपने-आपसे शत-प्रतिशत सहमति की स्थिति में मैं कभी कहानी या उपन्यास नहीं लिखता। जब मुझे लगता है कि किसी चीज को लेकर मेरे अन्तर्मन में एक से अधिक तर्क या कई सारी अलग-अलग आवाजें हैं, तो कभी-कभी ये आवाजें पात्रों में ढलने लगती हैं और मैं जान जाता हूँ कि मेरे भीतर कोई कहानी उमड़ रही है। कहानियाँ मैं तभी लिखता हूँ जब मैं अपने-आपको विपरीत नैतिक दृष्टिकोणों, बहुत से प्रतिकूल दावों या परस्पर विरोधी भावात्मक प्रक्रियाओं से घिरा पाता हूँ। पुराने यहूदी ग्रन्थों में एक रब्बी (धर्मोपदेशक) का दृष्टान्त आता है जिसे एक बकरी के दो दावेदारों के बीच झगड़े का फैसला करने को कहा जाता है। रब्बी फैसला देता है कि दोनों ही दावेदार सही हैं। बाद में घर पहुँचने पर उसकी पत्नी कहती है कि यह असम्भव है। जब दोनों दावेदार एक ही बकरी पर अपना दावा कर रहे हैं तो दोनों एक साथ सही कैसे हो सकते हैं? कुछ देर सोचने के बाद रब्बी उत्तरदेता है कि प्यारी बेगम, देखा जाए तो तुम भी सही हो!...

कहानी लिखते हुए कई बार मैं वही रब्बी होता हूँ!

- एमोस ओज़

सौजन्य

शांति निधि

3, लाउडन स्ट्रीट

कोलकाता 700 017

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Registered No. SSRM/KOL RMS/WB/RNP-118/2007-09
Licenced to post without prepayment No. MM&PO/SSRM-KOL.RMS\RNP-118/LPWP-034/2007-09
Vagarth February 2007 Regd.No. 61730/95
Date of Publication : 16th January 2007

तेजस्वी मन

अगली अर्धशती में भी
उत्कृष्टता की ओर

ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कॉरपोरेशन लिमिटेड

14 अगस्त, 1956 को स्थापित
भारत का सर्वाधिक मूल्यवान कॉरपोरेट

ओएनजीसी ONGC

बनाए शुभ्रतर भविष्य

equus red cell.869

प्रकाशक : कुसुम खेमानी द्वारा भारतीय भाषा परिषद 36ए शेक्सपियर सरणी कोलकाता 17 के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित
मुद्रक : सत्ययुग एम्प्लाइज को-ऑपरेटिव इण्डस्ट्रीयल सोसाइटी लि. 13 प्रफुल्ल सरकार स्ट्रीट, कोलकाता 700072
संपादक : एकान्त श्रीवास्तव कुसुम खेमानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant